

शमोऽत्यु र्णं समणस्स भगवओ महावीरस्स

॥ जैन-शास्त्र-माला-प. न्नम् ॥

जैनागमों में स्थाद्व-वाद

संपादक—

जैनधर्मदिवाकर, साहित्य-रत्न; नैनागमरत्नाकर,
श्रीमज्जैनाचार्य पूज्य श्री आत्मारामजी
महाराज.



प्रकाशक—

जैन-शास्त्रमाला-कार्यालय

जैनस्थानक, लुधियाना



प्रति १०००
प्रथम बार

वीर सं० २४७७
विक्रम सं० २००८

{ मुख्य
{ लगतमात्र १।)

साधुवादार्थ दो शब्द

स्थानकवासी जैन-संप्रदाय के अगमाभ्यासी विद्वानों में
 पूज्य आचार्य श्री आत्माराम जी महाराज का नाम विशेष
 उल्लेखनीय है आप आगमों के विशिष्ट अभ्यासी और गम्भीर
 पर्यालोचक हैं। तत्त्वार्थ सूत्र का जैनागम-समन्वय (जोकि आप
 के द्वारा संपादित हुआ है) आपके जैनागम-संबन्धि असाधारण
 चिन्तन और मनन का ही विशिष्ट फल है। इसके अनिरिक्त आप
 ने आगमों के विवेचनीय विषयों से सबन्ध रखने वाले कतिपय
 मौलिक और अनुवाद रूप ग्रंथों के निर्माण से स्थानकवासी
 संप्रदाय के प्रसुप्त कलेवर में अभूतपूर्व जागृति उत्पन्न करने का
 भी पर्याप्त श्रेय प्राप्त किया है। आजसे कुछ समय पहले मैंने आप
 से प्रार्थना की थी कि यदि आप जैनागमों में विभिन्न स्थानों पर
 विद्यमान मूल पाठों और खासकर स्याद-वाद अनेकान्त-वाद
 विषय के उल्लेखों को—उन पर की गई पूर्वाचार्यों की व्याख्या
 के साथ—एक जगह संगृहीत कर के एक पुस्तक के आकार में
 प्रकाशित करा दें तो जैनदर्शन का तुलनात्मक पद्धति से अभ्या-
 स करने वाले विद्यार्थियों और तात्त्विक तथा ऐतिहासिक दृष्टि से
 जैनधर्म के मौलिक स्वरूप की गवेषणा करने वाले विशिष्ट
 विद्वानों के लिये आप की यह अर्घ्य देन होगी। उन्हें इस
 के लिये अधिक परिश्रम न करना पड़ेगा और यत्न-साध्य वस्तु
 अनायास ही प्राप्त हो जायगी। इस के सिवाय आर्य संस्कृति
 के विशिष्ट अंग-भूत जैन-संस्कृति में विद्यमान दार्शनिक
 विचारों की प्राचीन प्रणाली से अज्ञात जैनेतर विद्वानों को उस क

विशिष्ट स्वरूप का ज्ञान भी सुलभ हो जायगा इत्यादि, मुझे यह कहते हुए अत्यन्त हर्ष होता है कि मेरी इस उचित प्रार्थना को आपने पूरे ध्यान से सुना और उसके लिये यथाशक्ति प्रयास करने का वचन दिया ॥

बड़ी प्रसन्नता की बात है कि जिस संग्रह के लिये मैंने आचार्य श्री जी से सानुरोध प्रार्थना की थी वह सुचारुरूप से सम्पन्न हुआ। और आज एक अच्छे रूप में मुद्रित होकर पाठकों के कर कमलों की शोभा बढ़ा रहा है। अतः मेरी और मेरे सहचारी अन्य विद्वन्मण्डल जोकि इस विषय से हार्दिक प्रेम रखता है की ओर से आप के इस साधुजनोचित समुचित कार्य के लिये अनेकानेक साधु-वाद्। मेरी दृष्टि में विद्वानों के लिये यह वस्तु बड़े काम की है। वे इस से यथाशक्ति यथा-मति लाभ उठाने का अवश्य यत्न करेंगे ऐसी मुझे पूर्ण आशा है ॥

निवेदक—

हंस राज शास्त्री

स्याद्-वाद

स्याद्-वाद की मौलिकता, महानता एवं उपादेयता को जानने से पूर्व उस के शाब्दिक अर्थ पर दृष्टिपात कर लेना उचित प्रतीत होता है।

स्याद्-वाद के निर्माण करने वाले स्याद् और वाद ये दो पद हैं। स्याद् यह अव्ययपद है, जो *अनेकान्त अर्थ का बांध कराता है, वाद का अर्थ है कथन अर्थात् अनेकान्त द्वारा कथन, वस्तुतत्त्व का प्रतिपादन स्याद्-वाद है। इस अर्थ-विचारणा से स्याद्-वाद का दूसरा नाम अनेकान्तवाद भी होता है।

एकान्त-वाद का अभाव अनेकान्तवाद है। एकान्त-वाद में किसी भी पदार्थ पर भिन्न दृष्टियों से विचार नहीं किया जाता प्रत्युत एक पदार्थ को एक ही दृष्टि से देखा जाता है जब कि अनेकान्त-वाद प्रत्येक वस्तु का भिन्न २ दृष्टिकोणों से विचार करता है, देखता है, और कहता है।

जैन-दर्शन अनेकान्त-वादी है। एकान्त-वाद उसे इष्ट नहीं है। एकान्त-वाद अपूर्ण है, सत्यता को पङ्गु बनाने वाला है और यह लोकव्यवहार का साधक न होकर बाधक बनता है। एकान्त-वाद की व्यवहार-बाधकता उदाहरण ये समझिए—

एक व्यक्ति दुकान पर बैठा है। एक ओर से एक बालक आता है, वह कहता है—पिता जी !, दूसरी ओर से एक बालिका आती है, वह कहती है—चाचा जी !, तीसरी ओर से एक वृद्धा आती है, वह कहती है—पुत्र !, चौथी ओर से उस का समवयस्क

*स्याद् इत्यव्ययम् अनेकान्त-व्योतकं, ततः स्याद्-वाद-अनेकान्त-वादः।
(स्याद्-वाद-मंजरी में मञ्जिषेणसूरि)

एक मनुष्य आता है, और कहता है—भाई !, इतने में एक बालक दुकान के भीतर में निहत्तता है वह कहता है—मामा जी !, मतलब यह है कोई उस व्यक्ति का चाचा, कोई ताऊ, कोई मामा और कोई पिता कहता है । प्रत्येक एक दूसरे की बात मानने को तैयार नहीं है । पुत्र कहता हैं—ये तो पिता ही हैं । बृद्धा कहती हैं—नहीं नहीं, यह तो पुत्र ही हैं । आदि आदि ।

सभी एकान्त-वादी बने हुए हैं—एक ही दृष्टि को लेकर बने हुए हैं । कोई अपना आग्रह छोड़ने को तैयार नहीं, कहिए इन का निर्णय कैसे हो ? कैसे उन के अशान्त मन को शान्त किया जाए ? एकान्त-वाद तो उस विवाद का मूल है, वह भला इस में निर्णायक कैसे बन सकता है ?

यहां अनेकान्त-वाद का आश्रयण करना होगा । अनेकान्त-वाद इस विवाद को बड़ी सुन्दरता से निपटा देता है । देखिए—अनेकान्त-वादी लड़के से कहता है—पुत्र ! तुम ठीक कहते हो—ये तुम्हारे पिता हैं, किन्तु यह ध्यान रहे यह तुम्हारे हैं न कि सबके, क्योंकि तुम इनके पुत्र हो । लड़की से कहता है—पुत्रि ! तुम भी शान्त नहीं कहती हो, ये तुम्हारे चाचा हैं, क्योंकि ये तुम्हारे पिता के छोटे भाई हैं, आदि आदि ।

अनेकान्तवाद कहता है—एक ही व्यक्ति में अनेक धर्म है, परन्तु वे भिन्न २ दृष्टियों से हैं, न कि केवल एक दृष्टि से, विवाद त होता है, जब एक ही दृष्टि का आदर होता है, और अन्य दृष्टियों का अनादर । देखा, अनेकान्त-वाद का अपूर्व निर्णय !, और देखी, एकान्त-वाद की लोक-व्यवहार-बाधकता !

स्याद-वाद के इस गूढ़ रहस्य को जानने वाले स्याद-वादी-

अनेकान्त-वादी की दृष्टि में बोर्ड पर खींची हुई तीन इंच की रेखा में अपेक्षाकृत बड़ापन तथा अपेक्षाकृत ही छोटापन रहा हुआ है। यदि तीन इंच की रेखा के नीचे पांच इंच की रेखा खींच दी जाए तो वह (तीन इंच की रेखा) पांच इंच की रेखा की अपेक्षा छोटी है और ऊपर दो इंच की रेखा खींच दी जाए तो वह ऊपर की अपेक्षा बड़ी है। एक ही रेखा में छोटापन तथा बड़ापन ये दोनों धर्म अपेक्षा से रह रहे हैं। स्याद्-वादी तीन इंच की रेखा को "यह छोटी ही है" अथवा "यह बड़ी ही है" इन शब्दों से नहीं कह सकेगा।

ऊपर के विवेचन में अभी तक स्थूल लौकिक उदाहरणों से स्याद्-वाद को समझाने का प्रयत्न किया गया है। अब जरा दार्शनिक उदाहरणों से स्याद्-वाद की उपादेयता को समझिए।

जैन दर्शन कहता है कि प्रत्येक पदार्थ नित्य भी है और अनित्य भी है। पाठक इस बात से अवश्य विस्मित होंगे और उन्हें सहसा यह ख्याल आएगा कि जो पदार्थ नित्य है, वह भला अनित्य कैसे हो सकता है !, और जो अनित्य है वह नित्य कैसे हो सकता है !, परन्तु पाठक जरा गंभीर चिन्तन करें और देखें स्याद्-वाद इस समस्या को कैसे सुलझाता है—

कल्पना कीजिये—एक सोने का कुण्डल है। हम देखते हैं कि जिस सुवर्ण से वह बना है, उसी से और भी कटक आदि कई प्रकार के आभूषण बन सकते हैं। यदि उस कुण्डल को तोड़ कर हम उसी कुण्डल के सुवर्ण से कोई दूसरा भूषण तैयार करते तो उसे कदापि कुण्डल नहीं कहा जा सकेगा। उसी सुवर्ण के होते हुए भी उस को

कुण्डल न कहने का कारण ? उत्तर स्पष्ट है, उस में अब कुण्डल का आकार नहीं रहा ।

इस से यह स्वतः सिद्ध है कि कुण्डल कोई स्वतन्त्र द्रव्य नहीं है, बल्कि सुवर्ण का एक आकार विशेष है । और यह आकार विशेष सुवर्ण से सर्वथा भिन्न नहीं है, उसी का एक रूप है । क्योंकि भिन्न २ आकारों में परिवर्तित सुवर्ण जब कुण्डल कटक आदि भिन्न नामों से सम्बोधित होता है, तो उस स्थिति में आकार सुवर्ण से सर्वथा भिन्न कैसे हो सकता है ? अब देखना है कि इन दोनों स्वरूपों में विनाशी-स्वरूप कौनसा है ? और नित्य कौनसा ? यह प्रत्यक्ष है कि कुण्डल का आकार स्वरूप विनाशी है क्योंकि वह बनता है और बिगड़ता है, पहले नहीं था बाद में भी नहीं रहेगा । और कुण्डल का जो दूसरा स्वरूप सुवर्ण है, वह अविनाशी है, क्योंकि उस का कभी नाश नहीं होता, कुण्डल की निर्मिति से पूर्व भी वह था, और उसके बनने पर भी वह मौजूद है, जब कुण्डल नष्ट हो जायगा तब भी वह मौजूद रहेगा । प्रत्येक दशा में सुवर्ण सुवर्ण ही रहेगा । सुवर्ण अपने आप में स्थायी तत्व है, उसे बनना बिगड़ना नहीं, इस विवेचन से यह स्पष्ट है कि कुण्डल का एक स्वरूप विनाशी है, और दूसरा अविनाशी । एक बनता है और नष्ट होता है, परन्तु दूसरा हमेशा बना रहता है, नित्य रहता है । अतः अनेकान्त-वाद की दृष्टि से—कुण्डल अपने आकार की दृष्टि से विनष्ट होने के कारण अनित्य है, और मूल सुवर्ण के रूप से अविनाशी रूप से नित्य । इस प्रकार एक ही पदार्थ में परस्पर विरोधी जैसे दीखने वाले नित्यता और अनित्यता रूप धर्मों को सिद्ध करने वाला सिद्धान्त अनेकान्तवाद ही है ।

संसार में जितने भी एकान्त-वादी विचारक हैं वे पदार्थ के एक २ अंश-धर्म को ही पूरा पदार्थ समझते हैं। इसी लिये उन का दूसरे धर्म-वालों से विवाद होता है, और कभी कभी तो वे इतने आग्रही होकर लड़ते-झगड़ते दिखाई पड़ते हैं कि मनुष्यता से भी हाथ धो बैठने हैं।

जिस समय राजगृहनगर के चौराहों पर पण्डितों के दल के दल घूमा करते थे, धर्म और सत्य के नाम पर कदाग्रह की पूजा हो रही थी, सभ्यता को मुंह छिपाने के लिये भी जाह नही मिल रही थी, असभ्यता विद्वत्ता के सिंहासन पर बैठी हुई थी, पण्डितों के दलों में जा आपस में अनेक तरह से भिड़ पड़ते थे, बोलाचाली के साथ २ हाथापाई मुक्कामुक्की तक की नौबत भी आजाती थी, ये पण्डित बड़ी तेजी से धर्म-रक्षा के लिये प्राण देते और लेने के लिये प्रतिक्षण तैयार रहते थे, कहीं नित्यवादी अनित्यवादी का मस्तक पत्थर मार कर इसलिये फोड़ देता कि जब पदार्थ अनित्य (स्थायी न रहने वाले) हैं तो मस्तक के फूटने से तुम्हारा क्या-बिगड़ा !, कहीं अनित्यवादी नित्यवादी के मस्तक को इसलिये फोड़ता कि तुम तो कहते हो पदार्थ नित्य (स्थायी ही रहने वाला) है तो फिर रोते क्यों हो !, इस तरह से एक दूसरे को पछाड़ता, वह दर्शनों का युग था, जहां जिस की टक्कर होती कहीं युद्ध का श्रीगणेश हो जाता, पण्डितों के इन भीषण धर्म-द्वन्द्वों से नगर में सर्वतोमुखी आतंक छाया हुआ था, जनता धर्मत्व से ऊब चुकी थी उस से घृणा करने लग गई थी। अब तो वहां किसी शान्ति के पथप्रदर्शक की प्रतीक्षा हो रही थी।

अहिंसा और सत्य के देवता भगवान महावीर स्वामी इसी युग में संसार में अवतारित हुए थे, जो कि एक विशिष्ट वैद्य के रूप में आधि, व्याधि और उपाधिरूप त्रिताप से संतप्त संसार को शान्ति का अमर सन्देश देने के लिये पधारे थे, उन्होंने ने देश के रोग के निदान-मूलकारण को टटोला और अनेकान्तवाद के दिव्य औपध से उस का उपचार कर उसे शान्त किया ।

भगवान महावीर ने संसार को अनेकान्त-वाद का अमर सन्देश दिया । प्रभु महावीर ने सिंह-गर्जना से कहा—हे आर्य्यो ! परस्पर में लड़ने से कभी शान्त नहीं होगी । पारस्परिक द्वन्द्वों से कभी किसी की उन्नति नहीं हो पाई है अतः परस्पर स्नेह स्थापित करो और परस्पर में भ्रातृभाव का पोषण करो । विवाद का मूल तुम्हारा एकान्तवादी होना है उसे छोड़ो और अनेकान्त-वादी बनो । किसी भी पदार्थ को एकदृष्टि से मत देखो, उस में स्थित सभी अंशों पर गंभीरता से विचार करो ।

जो कहता है कि आत्मा नित्य ही है, वह भूलता है और जो कहता है कि आत्मा अनित्य ही है, वह भी भूल करता है । वास्तव में आत्मा नित्यानित्य है—नित्य भी है, अनित्य भी है । संसारी आत्मा कभी मनुष्यपर्याय (अवस्था) में तथा कभी पशु आदि पर्यायों में यातायात करती रहती है, एक अवस्था में स्थिर नहीं रहती है, नट की भाँति अनेकविध नेपथ्य धारण करती है, इस दृष्टि से यह आत्मा अनित्य है । तथा आत्मा किसी भी मनुष्य आदि पर्याय में रहे किन्तु वह रहती आत्मा ही है, अनात्मा नहीं बन जाती, ज्ञान दर्शन की अतन्तता से शून्य नहीं हो पाती है, इस दृष्टि से आत्मा नित्य है । आत्मा को नित्यानित्य मानने पर

ही लोक व्यवहार सधता है आर पारस्परिक शांति स्थायी रह सकती है अस्तु । पृथिवी, अप्, तेजस्, वायु और आकाश किसीभी पदार्थ के सभी अंशों पर किये गये विचार को ही स्याद्-वाद या अनेकान्तवाद कहा जाता है, इसी स्याद्-वाद की दिव्य औषधी ने उस समय राष्ट्र के अन्तर-स्वास्थ्य को सुरक्षित रखा ।

स्याद्-वाद एक अमर विभूति है, जो अमरत्व की सन्देश-वाहिका है, तथा प्रेम और शान्ति की जनिका है । स्याद्-वादी कभी किसी दर्शन से घृणा नहीं करेगा, यदि संसार के समस्त दार्शनिक अपने एकान्त आग्रह को त्यागकर अनेकान्त से काम लेने लगे तो दर्शन-जीवन के सभी प्रश्न सहज में ही निपट सकते हैं । स्याद्-वाद की समन्वय-दृष्टि बड़ी विलक्षण है । जिस प्रकार जन्म के अन्धे कई मनुष्य किसी हाथी के भिन्न २ अवयवों को ही पूर्ण हाथी समझ कर परस्पर लड़ते हैं । पूंछ पकड़ने वाला कहता है—हाथी तो मोटे रस्से जैसा होता है । सूँड पकड़ने वाला कहता है भूँट कहते हो, हाथी तो मूसल जैसा होता है । कान पकड़ने वाला कहता है अरे भाई ! यदि आँखें नहीं, हाथ तो हैं ही, हाथी तो छाज जैसा होता है । पेट को छूने वाले अन्ध-देवता बोले—तुम सब भूँटे हो, बकवादी हो, व्यर्थ की गप्पें हाँकने वाले हो, हाथी को तो मैंने समझा है, हाथी तो अनाज भरने वाली कीठी जैसा होता है । मतलब यह है प्रत्येक अन्धा अपने २ पकड़ हुए हाथी के एकर अंग को हाथी समझता है, एक दूसरे को भूँटा कहता है, तथा एक दूसरे से लड़ने मरने के लिये तैयार हो जाता है ।

सद् भाग्य से वहाँ कोई शांतिप्रिय, आँखों वाला अजन

आगया, उन जन्मान्धों की तू तू मैं मैं को सुन तथा सारी स्थिति समझ कर, उन पर करुणा करता हुआ बोल उठता है—बन्धुओ ! क्यों लड़ २ कर मर रहे हो ? क्यों चर्म-चक्षु खो लेने पर भी आन्तरिक दिव्य चक्षुओं को विनष्ट करने में उद्यत हो रहे हो मुनो, मेरी बात मुनो ! मैं तुम्हारा विवाद निपटाए देता हूँ, तुम मन्चे होकर भी झूठे हो। तुम ने हाथी को समझा ही नहीं। हाथी के एक २ अवयव को ही तुम हाथी समझ रहे हो। एक दूम्बरे को झुठलावे की कोशिश मत करो। तुम अपनी २ दृष्टि का आग्रह छोड़ कर हाथी के समस्त अंगों को मिला डालो वस हाथी बन गया। यह ठीक है कि हाथी की पूंछ रस्ते जैसी मोटी होती है एवं हाथी के कान छाज जैसे होते हैं परन्तु केवल कान को या पूंछ आदि को हाथी समझना या कहना भूल है। सभी अंगों के समुदाय का नाम हाथी है, और यही सत्य है। अपना २ आग्रह छोड़ो और देखो झगड़ा अभी निपटा पड़ा है।

ठीक इसी प्रकार स्थाद-वाद भी परस्पर एक दूसरे पर आक्रमण करने वाले दर्शनों को सापेक्ष सत्य मान कर समन्वय कर देता है। उप.ध्याय यशोविजय जी ने कितने सुन्दर शब्दों में स्थाद-वाद का रहस्य प्रकट किया है—* 'सच्चा अनेकान्त वादी किसी भी दर्शन से द्वेष नहीं करता। वह सम्पूर्ण नयरूप दर्शनों को इस प्रकार वात्सल्य-दृष्टि से देखता है, जैसे कोई पिता अपने

* यस्य सर्वत्र समता नयेषु तनयेष्विव ।

तन्मानेकान्तवादस्य क न्यूनाधिकशेमुषी ॥

पुत्रों को देखता हो । क्योंकि अनेकान्त-वादी की न्यूनाधिक बुद्धि नहीं हो सकती । वास्तव में सच्चा शास्त्रज्ञ कहे जाने का अधिकारी वही है जो अनेकान्त-वाद का अवलम्बन लेकर सम्पूर्ण दर्शनों में समान भाव रखता है । माध्यस्थभाव ही शास्त्रों का गढ़ रहस्य है । यही धर्म-वाद है । माध्यस्थभाव रहने पर शास्त्रों के एव पद का ज्ञान भी सफल है । अन्यथा कोड़ों शास्त्रों के पद जाने से भी कोई लाभ नहीं ।

स्याद्-वाद की अव्याबाध गति है । कहीं पर भी उस की गति स्तम्भित नहीं होती । जहाँ देखो वहीं स्याद्-वाद आसन जमाए बैठा है । आचार्य-प्रवर श्री हेमचन्द्र तूरि तो यहाँ तक बोल उठे हैं—कि वैयाकरणों के जो विकल्प, बाहुलक आदि हैं वे सब के सब स्याद्-वाद के ही आश्रित हैं । उन का कहना है कि व्याकरण की सिद्धि ही स्याद्-वाद से होती है । स्याद्-वाद के बिना व्याकरण का कोई महत्त्व नहीं रहता ।

तेन स्याद्वादमालंभ्य, सर्वदर्शनतुल्यतां ।

मोक्षोद्देशाविशेषेण यः पश्यति स शास्त्रवित् ॥

माध्यस्थमेव शास्त्रार्थो येन तच्छास्त्रं सिध्यति ।

स एव धर्मवादः स्यादन्यद्वातिशयलानम् ॥

माध्यस्थसहितं त्वेकपद-ज्ञानमपि प्रमा ।

शास्त्रकोटिः वृथैवान्या, तथा चोक्तं महात्मना ॥

(अध्यात्मसार)

* सिद्धिः स्याद्वादात् । १।१।२ ॥

(हैमचूत्रम्)

स्याद्-वाद के इस अमर सिद्धान्त को दार्शनिक संसार ने बड़ा मान दिया है, महात्मा गांधी जैसे संसार के महान पुरुष ने भी इस की महान प्रशंसा की है। पाश्चात्य विद्वान् डा० थामस आदि ने भी कहा है कि—‘स्याद्-वाद का सिद्धान्त बड़ा ही गंभीर है। यह वस्तु की भिन्न २ स्थितियों पर अच्छा प्रकाश डालता है।’

आज चारों ओर, जो पारिवारिक, सामाजिक, राष्ट्रीय तथा धार्मिक विरोध दृष्टिगोचर हो रहे हैं तथा कलह, ईर्ष्या, अनुदारता, साम्प्रदायिकता और संकीर्णता आदि दोषों ने मानव-समाज को खोखला बना डाला है, इन सब को शान्त करने का एकमात्र यदि कोई उपाय है तो वह बस स्याद्-वाद ही है। विश्व में जब भी कभी शान्ति होगी तो वह स्याद्-वाद से ही होगी यह बात निःसंदेह सत्य है।

जिस स्याद्-वाद के सम्बन्ध में ऊपर कुछ कहा गया है। उस का उद्गम स्थान है—जैनागम। जैनागमों में स्याद्-वाद का बड़ी सुन्दरता ने विवेचन मिलता है। विवेचन का ढंग भी बड़ा निराला है। साधारण बुद्धि का धनी भी उसे पढ़ कर गद्गद हो उठता है। जानकारी के लिये एक उदाहरण देता हूँ—

भगवती सूत्र में लिखा है—भगवान् महावीर राजगृह नगरी में विराजमान थे। भगवान् के प्रधान शिष्य अनंगार गौतम भगवान् से एक प्रश्न पूछते हैं। अनंगार गौतम बोले—

अदन्त ! जीव शाश्वत (नित्य) हैं या अशाश्वत (अनित्य) हैं, भगवान् बोले—गौतम ! जीव कथञ्चित् शाश्वत हैं, कथञ्चित् अशाश्वत ।

गौतम,—अदन्त ! जीव कथञ्चित् शाश्वत हैं, तथा कथञ्चित् अशाश्वत हैं, यह कहने से अभिप्रेत क्या है ?

भगवान्, गौतम प्रत्येक पदार्थ को अनेक दृष्टियाँ से देखा जाता है। यदि जीव को द्रव्यत्वेव (द्रव्य की अपेक्षा में) देखते हैं तो वे शाश्वत हैं, क्योंकि वे किसी भी अवस्था में रहें, किन्तु रहेंगे द्रव्यत्व-विशिष्ट ही; द्रव्यत्व से च्युत नहीं होंगे। यदि अवस्था-परिवर्तन की दृष्टि से विचार करते हैं तो वे अशाश्वत हैं। क्योंकि कभी तो वे मनुष्य शरीर को त्याग कर पशु-देहधारी बन जाते हैं और कभी पशुदेह को छोड़ कर देवताओं के संसार में जा उत्पन्न होते हैं—उन में अवस्थाओं का परिवर्तन होता रहता है, वे एक अवस्था में नहीं रह पाते। इस प्रकार अनेक दृष्टियों से विचार करने पर जीव शाश्वत भी हैं तथा अशाश्वत भी हैं *।

इस प्रकार के अनेकों उदाहरण हैं जिन से श्री भगवती सूत्र, श्री सूत्रकृताङ्ग, और श्री जीवाभिगम आदिक *सूत्र भरे पड़े हैं। जोकि स्वतन्त्र अध्ययन से सम्यग्बोध रहते हैं।

* प्र० - जीवा एं भन्ते ! किं सासया असासया ।

उ०—गोयमा ! सिय सासया, सिय असासया ।

प्र०—से केणट्टेणं भन्ते ! एवं बुञ्चइ,—जीवा सिया सासया सिय असासया !

उ०—गोयमा ! दव्वट्ठयाए सासया, भावट्ठयाए असासया से तेणट्टेणं गोयमा ! एवं बुञ्चइ—जाव सिय सासया, सिय असासया । (भगवती सूत्र)

* प्रस्तुत “जैनागमों में स्याद्-वाद” नामक पुस्तक में श्री प्रज्ञापना सूत्र का पाँचवाँ पद तथा श्री सूत्र कृतं ग जी के द्वितीय श्रुतस्कन्ध का ५वाँ अध्याय भी सम्पूर्ण प्रकाशित है ताकि पाठक सुविधापूर्वक स्याद्-वाद के स्वरूप को अवगत कर सकें।

स्याद्-वाद प्रेमियों की यह चिरकाल से भावना तथा कामना चली आरही थी कि जैनागमों में जहाँ कहीं भी लोकापयोगी स्याद्-वाद प्रदर्शन करने वाले पाठ हैं उन का तथा साथ में उन पाठों पर की गई प्राचीन आचार्यों की संस्कृत टीकायों का भी संग्रह हो जाय । ताकि प्रत्येक जिज्ञासु अपनी जिज्ञासा को एक ही स्थान पर पूर्ण कर सकें । पर यह काम कोई साधारण काम नहीं था, इस काम के लिये आगमों के मन्थन करने वाले किसी आगमों के मार्मिक विद्वान की आवश्यकता थी । मैं यह बड़े गौरव से लिखने लगा हूँ कि मेरे गुरुदेव, जैनधर्म-दिवाकर, साहित्य-रत्न, जैनागमरत्नाकर श्रीमज्जैनाचार्य परमपूज्य, परमश्रद्धेय, श्री आत्मारामजी महाराज के आगमसम्बन्धी विशिष्ट अध्ययन, तथा तद्विषयक सततचिन्तन ने उस आवश्यकता को पूरा कर डाला है । पूज्य श्री जी म० ने अपने आगम-स्वाध्याय के बल में जहाँ कहीं भी स्याद्-वाद सम्बन्धी आगमों में पाठ थे उन को एक स्थान पर संकलित कर दिया और साथ में उन पाठों पर की गई प्राचीन आचार्यों की संस्कृत व्याख्या भी संगृहीत कर दी है । वही संकलन आज “जैनागमों में स्याद्-वाद” के रूप से पाठकों के कर कमलों में शोभा पा रहा है ।

इस ग्रन्थरत्न में प्रायः आवश्यक सभी स्याद्-वाद सम्बन्धी आगम पाठों का संग्रह है जो कि स्याद्-वाद प्रेमी पाठकों की कामना को पूर्ण करने में कल्प वृक्ष के समान पर्याप्त है । ऐसा मुझे पूर्ण विश्वास है ।

अन्त में मैं आशा करता हूँ कि विद्वद्धृन्द इस संग्रह से आवश्यक लाभ उठाने का यत्न करेंगे। यह अनमोल संग्रह है। एक पाठ टटोलने के लिये ग्रन्थ के सैकड़ों पृष्ठों को इधर उधर उलटाना पड़ता है। यहाँ तो आप को प्रायः सभी पाठ बिना परिश्रम के एक स्थान पर ही मिल सकेंगे, इसलिये इस संग्रह से अधिक से अधिक लाभ लेने का उद्योग करें ताकि जैनागमों के मार्मिक वेत्ता और प्राकृत भाषा के अद्वितीय विद्वान संग्राहक पूज्य श्री जी म० का कृत परिश्रम सफल हो सके।

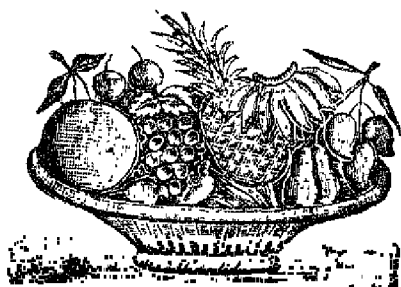
ॐ शान्तिः, शान्तिः, शान्तिः।

आवण कृष्णा ८, २००८, }

जैन स्थानक,
लुधियाना।

प्रार्थी—

ज्ञान मुनि



धन्य-वाद

जैनागमों में स्याद्-वाद के प्रकाशन में जिन दानी महानुभावों सहयोग दिया है उन का मैं समाज की ओर से सादर धन्यवाद ना हूँ, और अन्य धनिकों से भी जैन सिद्धान्तों के प्रचार में शक्ति यत्नपूर्वक सहयोग देकर पुण्योपार्जन कर लेने की ना करता हूँ।

दानी महानुभावों के नाम ये हैं—

१. श्रीमान् लाला ताराचन्द जी जैन जालन्धर छावनी ४००)
२. श्रीमान् लाला बली राम जी मालेरकोटला ३००)
३. श्रीमान् चौधरी लक्ष्मीचन्द जी अम्बाला शहर १००)
४. श्रीमान् लाला दिवान चन्द जी जगाधरी १००)
५. श्रीमान् लाला बालमुकुन्द जी रावलपिण्डी वाले देहली १००)
६. श्रीमान् लाला राम चन्द जी लुधियाना ११०)
७. श्रीमान् लाला कस्तूरी लाल मिल्खी राम जैन मालेरकोटला १०१)
८. श्रीमती भाग्यवन्ती देवी जैन जालन्धर छावनी १०१)
९. श्रीमान् लाला सोहन लाल जुगतकिशोर जैन लुधियाना १०१)
१०. श्रीमान् लाला प्रसन्ना मल वृषभान जैन दनौदा ५०)
११. श्रीमान् लाला सोहन लाल जैन हकीम लुधियाना ५०)

प्रार्थी—

सन्त्री—

जैन-शास्त्रमाला कार्यालय
लुधियाना



यस्य सर्वत्र समता नयेषु तनयेष्विव ।
तस्यानेकान्तवादस्य क्व न्यूनाधिकशेषमुषी ॥
तेन स्याद्वादमालम्ब्य, सर्वदर्शनतुल्यतां ।
मोक्षोद्देशाविशेषेण, यः पश्यति सः शास्त्रवित् ॥





नमोऽर्च्युणं समणस्स भगवच्चो महावीरस्स

जैनागमों में स्याद्वाद

श्री सूयगडाङ्ग सूत्र

एवमेयाणि जंपंता, बाला पंडिअमाणिणो ।

निययानिययं संतं अयाणंता अबुद्धिया ॥

—श्री सूयगडाङ्ग सूत्र ॥११॥२॥४॥

टीका— एवं श्लोकद्वयेन नियतिवादिमतमुपन्यस्यास्योत्तरदानयाह । एवमीत्यनन्तरोक्तस्योपप्रदर्शने । एतानि पूर्वोक्तानि नियतिवादाश्रितानि वचनानि जल्पन्तोऽभिदधतो बाला इव बाला अज्ञाः सदसद्विवेक-विकला अपि सन्तः पण्डितमानिन आत्मानं पण्डितं मन्तुं शीलं येषां ते तथा किमिति व एवमुच्यन्ते ? इति तदाह यतो 'निययानिययं संवमिति' सुखादिकं किञ्चिन्नियतिकृतम्—अवश्यंभाव्युदयप्रापितं तथा च नियतम्-आत्मपुरुषकारेश्वरादिप्रापितं सत् नियतिकृतमेवैकान्तेनाश्रयन्ति, अतोऽजानानाः सुखदुःखादिकारणमबुद्धिकाः बुद्धिरहिता भवन्तीति तथाहि—आर्हत्त्वानां किञ्चित्सुखदुःखादि नियतित एव भवति, तत्कारणस्य कर्मणः कस्मिञ्चिदवसरेऽवश्यंभाव्युदयसंज्ञावा-जयतिकृतमित्युच्यते, तथा किञ्चिदनियतिकृतञ्च-पुरुषकारकालेश्वर-

स्वभावकर्मादिकृतं, तत्र कथञ्चित् सुखदुःखादेः पुरुषकारसाध्यत्वम-
प्याश्रीयते, यतः क्रियातः फलं भवति क्रिया च पुरुषकारायना
प्रवर्तते, तथा चोक्तम्—

“न दैवमिति सञ्चित्य त्यजेदुद्यममात्मनः ।

अनुद्यमेन कस्तैलं तिलेभ्यः प्राप्नुमर्हति” ? ॥ १ ॥

यत्तु समाने पुरुषव्यापारे फलवैचित्र्यं दूषणत्वेनोपन्यस्तं
तददूषणमेव, यतस्तत्राऽपि पुरुषकारवैचित्र्यमपि फलवैचित्र्ये
कारणं भवति, समाने वा पुरुषकारे यः फलाभावः कस्यचिद्भवति
सोऽदृष्टकृतः तदपि चाऽस्माभिः कारणत्वेनाश्रितमेव । तथा कालोऽपि
कर्त्ता, यतो वकुलचम्पकाशोकपुन्नागनागसहकारादीनां विशिष्ट एव
काले पुष्पफलाद्युद्भवो न सर्वदेति, यच्चोक्तं—‘कालस्यैकरूपत्वा-
ज्जगद्वैचित्र्यं न घटत’ इति, तदस्मान् प्रति न दूषणं यतोऽस्माभिर्न
कालं सर्वैकः कर्तृत्वेनाऽभ्युपगम्यतेऽपितु कर्माऽपि, ततो जगद्वैचित्र्य-
मित्यदोषः । तथेश्वरोऽपि कर्त्ता, आत्मैव हि तत्र तत्रोत्पत्तिद्वारेण
सकलजगद्व्यापनादीश्वरः, तस्य सुखदुःखोत्पत्तिकर्तृत्वं सर्ववादिना-
मविगानेन सिद्धमेव । यच्चात्र मूर्त्तामूर्त्तादिकं दूषणमुपन्यस्तं तदैव—
भूतेश्वरसमाश्रयेण दूरोत्सादितमेवेति । स्वभावस्याऽपि कथञ्चित्
कर्तृत्वमेव, तथाहि आत्मन उपयोगलक्षणत्वमसंख्येयप्रदेशत्वं
पुद्गलानां च मूर्त्तत्वं धर्माधर्मास्तिकाययोर्गतिस्थित्युपष्टम्भकारित्वम-
मूर्त्तत्वञ्चैवमादि स्वभावापादितम् । यदपि चात्रात्मव्यतिरेकाव्यति-
रेकरूपं दूषणमुपन्यस्तं तददूषणमेव, यतः स्वभाव

आत्मिनोऽपि च कर्तृत्वमभ्युपगतमेतदपि स्वभावापादितमेवेति । तथा कर्माऽपि कर्तृभवत्येव, तद्धि जीवप्रदेशैः सहाऽन्योऽन्यानुवेध-
रूपतया व्यवस्थितं कथञ्चिच्चात्मनोऽभिन्नं, तद्वशाच्चचात्मा
नारकतिर्य्यङ्मनुष्यामरभवेषु पर्यटन् सुखदुःखादिकमनुभवतीति ।
तदेवं नियत्यनियत्योः कर्तृत्वे युक्त्युपपन्ने सति नियतिरेव कर्तृत्व-
मभ्युपगच्छन्तो निवृत्तद्विकाः भवन्तीत्यवसेयम् ॥४॥

मूलम्—उड्डं अहेयं तिरियं दिसासु,

तसा य जे थावर जे व पाणा ।

से णिच्चण्णिवेहि समिक्ख पन्ने,

दीवे व धम्मं समियं उदाहु ॥

—श्री सूयगडाङ्ग सूत्र ॥ १ । ६ । ४॥

टीका—ऊर्ध्वमधस्तिर्यक्षु सर्वत्रैव चतुर्दशरज्ज्वात्मके लोके ये केचन
वस्यन्तीति त्रसास्तेजोवायुरूपविकलेन्द्रियपञ्चेन्द्रियभेदात् त्रिधा,
तथा ये च 'स्थावराः' पृथिव्यम्बुवनस्पतिभेदात् त्रिविधा एते
उच्छ्रूवासादयः प्राणाः विद्यन्ते येषां ते प्राणिन इति, अनेन च
शाक्यादिमतनिरासेन पृथिव्याद्येकेन्द्रियाणामपि जीवत्वमावेदितं
भवति, स भगवांस्तान् प्राणिनः प्रकर्षेण केवलज्ञानित्वात् ज्ञाता-
तीति प्रज्ञः स एव प्राज्ञो, नित्यानित्याभ्यां द्रव्यार्थप्रचाराध्यायणात्
'समीक्ष्य' केवलज्ञानेनार्थान् परिज्ञाय प्रज्ञापनायोग्यनाहेत्युत्तरेण
सम्बन्धः, तथा स प्राणिनां पदार्थाविर्भावेन दीपवत् दीपः
यदिवा—संसारार्णवपतितानां सदुपदेशप्रदानत आदवासहेतुत्वात्
द्वीप इव द्वीपः स एवम्भूतः संसारोत्तरणसमर्थ 'धर्म' श्रुतचार्ित्राख्यं

सम्यक् इत-गर्तं सदनुष्ठानतया रागद्वेषरहितत्वेन समतया वा-
 तथा चोक्तिम्—*‘जहा पुण्यस्य कथंइ तथा तुच्छस्य कथंइ’
 इत्यादि, समं वा-धर्मम् उन्-प्राबल्येन आह-उक्तवान् प्राणिनां-
 नुप्रदार्थं न पूजासत्कारार्थमिति ॥४॥

मूलम्-संकेज्ज याऽसंकेतभाव भिक्खू,

विभज्जवायं च वियागरेज्ज।

भासादुयं धम्मसमुदितेहि,

वियागरेज्ज समया सुपन्ने ॥

—श्री सूयगडाङ्ग सूत्र ॥१॥ १४॥ २२ ॥

टीका-साम्प्रतं व्याख्यानविधिमधिकृत्याह-‘भिक्खुः’ साधुव्याख्यानं
 कुर्वन्नर्वादिर्दिवादर्थनिर्णयं प्रति अशंकितभावोऽपि ‘शंकेत’
 औद्धत्यं परिहरन्नहमेवार्थस्य वेत्ता नापरः कश्चिदित्येवं गर्वं न
 कुर्वीत किन्तु विषयमर्थं प्ररूपयन् साशङ्कमेव कथयेद्, यदिवा
 परिस्फुटमप्यशङ्कितभावमप्यर्थं न तथा कथयेत् यथा परः शंकेत,
 तथा विभज्यवाद-पृथगर्थनिर्णयवादं व्यागृणीयात् यदिवा विभज्य-
 वादः—स्याद्वादस्तं सर्वत्रास्खलितं लोकव्यवहाराविसंवादितया
 सर्वव्यापिनं स्वानुभवसिद्धं वदेत्, अथवा सम्यगर्थान् विभज्य-
 पृथक्कृत्वा तद्वादं वदेत्, तद्यथा—नित्यवादं द्रव्यार्थतया
 पर्यायार्थतया त्वनित्यवादं वदेत्, तथा स्वद्रव्यक्षेत्रकाल-
 भावैः सर्वेऽपि पदार्थाः सन्ति, परद्रव्यादिभिस्तु न
 सन्ति, तथा चोक्तिम्—“सदेव सर्वं को नेच्छेत्स्वरूपादि-

*‘जहा पुण्यस्य कथयते तथा तुच्छस्य कथयते ।

चतुष्टयात् ? असदेव विपर्यासान्नचेन्न व्यवतिष्ठते । ११॥
इत्यादिकं विभज्यवाहं वदेदिति । विभज्यवादमपि भाषाद्वितयेनैव
व्यादित्याह—भाषयोः—आद्यचरमयोः सत्यासत्यामृपयोद्विकं भाषाद्विकं
तद्भाषाद्वयं कचिरप्रष्टो वा धर्मकथावसरेऽन्यदा वा सदा वा 'व्यागृ-
णीयात्' भाषेत, किंभूतः सन् ? सम्यक्-सत्संयमानुष्ठानेनोत्थिताः
समुत्थिताः सत्साधव उद्युक्तविहारिणो न पुनरुदायिनृपमारकवत्क-
त्रिमास्तैः सम्यगुत्थितैः सह विहरन् चक्रवर्तिद्रमकयोः समतया
रोगद्वेषरहितो वा शोभनप्रज्ञो भाषाद्वयोपेतः सम्यग्धर्मं व्यागृणी-
यादिति ॥२२॥

मूलम्—अणादीयं परिन्नाय, अणवदगोति वा पुणो ।

सासयमसामए वा, इति दिट्ठिं न धारये ॥

एएहिं दोहिं ठाणेहिं, ववहारो न विज्जई ।

एएहिं दोहिं ठाणेहिं अणायारं तु जाणए ॥

—श्री सूयगडाङ्ग सूत्र ॥२॥१२,३॥

टीका—नास्य चतुर्दशरज्ज्वात्मकस्य लोकस्य वर्माधर्मादिकस्य वा
द्रव्यस्यादिः—प्रथमोत्पत्तिर्विद्यत इत्यनादिकस्तमेवंभूतं 'परिज्ञाय'
प्रमाणतः परिच्छिद्य तथा 'अणवदग्रम्' अपर्यवसानं च परिज्ञायो-
भयनयात्मकव्युदासेनैकनयदृष्टयाऽवधारणात्मकप्रत्ययमनाचारं
दर्शयति—राधद्वयतीति शाश्वतं—नित्यं सांख्याभिप्रायेणाप्रच्युतानु-
त्पन्नस्तिथिरैकस्वभावं स्वदर्शने चानुयायिनं सामान्यांशमवलम्ब्य
धर्माधर्माकाशादिध्वनादित्वमपर्यवसानत्वं चोपलभ्य सर्वमिदं शा-

श्वतमित्येवभूता इष्टि 'न धारयेदिति' एवं पक्षं न समाश्रयेत् ।
 तथा विशेषपक्षमाश्रित्य 'वर्त्तमाननारकाः समुच्छेत्स्यन्ती'
 त्येतच्च सूत्रमंगीकृत्य यत्सत्तत्सर्वमनित्यमित्येवभूतबौद्धदर्शनाभि-
 प्रायेण च सर्वमशाश्वतम्—अनित्यमित्येवभूतां च दृष्टिं न धारये-
 दिति ॥२॥ किमित्येकान्तेन शाश्वतमशाश्वतं वा वस्तित्येवभूतां
 दृष्टि न धारयेदित्याह—सर्वं नित्यमेवानित्यमेव वै ताभ्यां द्वाभ्यां
 स्थानाभ्यामभ्युपगम्यमानाभ्यामनयोर्वा पक्षयोर्व्यवहरणं व्यवहारो-
 लोकस्यैहिकामुष्मिकयोः कार्ययोः प्रवृत्तिनिवृत्तिलक्षणो न विद्यते,
 तथाहि—अप्रच्युतानुत्पन्नस्थिरैकस्वभावं सर्वं नित्यमित्येव न व्यव-
 ह्रियते, प्रत्यक्षेणैव नवपुराणादिभावेन प्रध्वंसाभावेन वा दर्शनान्,
 तथैव च लोकस्य प्रवृत्तेः, आमुष्मिकेऽपि नित्यत्वादात्मनो
 बन्धमोक्षादभावेन दीक्षायमनियमादिकमनर्थकमिति न
 व्यवह्रियते । तथैकान्तानित्यत्वेऽपि लोको धनधान्यघट-
 पटादिकमनागतभोगार्थं न संगृहीयान्, तथाऽऽमुष्मिकेऽपि क्षणिक-
 त्वादात्मनः प्रवृत्तिर्न स्यात्, तथा च दीक्षाविहारादिकमनर्थकं,
 तस्माद्वित्यात्मके एव स्याद्वादे सर्वव्यवहारप्रवृत्तिः, अतएव तयो-
 र्निर्त्यानित्ययोः स्थानगोरैकान्तत्वेन समाश्रियमाणगोरैहिकामुष्मि-
 काकारैर्विध्वंसरूपमनाचारं मीनीन्द्रागमवाक्षरूपं विजानीयात्, तु-
 शब्दो विशेषणार्थः, कथञ्चिन्नित्यानित्ये वस्तुति सति व्यवहारो यु-
 ज्यत इत्येतद्विशिनष्टि, तथाहि—सामान्यमन्त्रयित्तमंशमाश्रित्य स्यान्नित्य
 मिति भवति, विशेषांशं प्रतिक्षणमन्यथा च अन्यथा च नवपुराणा-
 दिदर्शनतः स्यादनित्य इति भवति, तयोत्पादक्ययप्रौव्याणि चार्ह-
 दर्शनाश्रितानि व्यवहाराङ्गं भवति तथा चोक्तम्— घटमौलिबुधर्मा-

थीं नाशत्वादभ्यतिष्ठयम् शोकप्रमोदमाध्यस्थ, जना याति
सहेतुकम् ॥ १ ॥' इत्यादि । तदेवं नित्यानित्यपक्षयोर्व्यवहारो न
विद्यते, तथाऽनयोरेवानाचारं विजानीयादिति स्थितम् ॥ ३ ॥ तथा-
ऽन्यमप्यनाचारं प्रतिषेद्धकाम आह—

मूलम्—समुच्छिद्दिति सत्थारो, सञ्चे पाणा अणोलिसा ।

गंठिगा वा भविस्संति सासयन्ति व णो वए ॥

एएहिं दोहिं ठाणेहिं, ववहारो ण विज्जइ ।

एएहिं दोहिं ठाणेहिं अणायारं तु जाणए ॥

—श्री सूयगडाङ्ग सूत्र ॥२११४,२१

टीका—अग्यक् निरवशेषतया 'उच्छेत्स्यन्ति' उच्छेदं यास्यन्ति-
क्षयं प्राप्स्यन्ति सामस्त्येनोत्—प्राप्त्येन सेत्स्यन्ति वा सिद्धं यास्य-
न्ति, के ते ? शास्तरः—तीर्थकृतः सर्वज्ञास्तच्छासनप्रतिपन्ना वा
'सर्वे' निरवशेषाः सिद्धिगमनयोग्या भव्याः, ततश्चोच्छिन्नभयं
जगत्त्यादिति, शुष्कतर्काभिमानग्रहगृहीता युक्तिं चाभिदधति—
जीवसद्भावे सत्यप्यपूर्वात्पादाभावादभव्यस्य च सिद्धिगमना-
संभवात्कालस्य चाऽऽनन्त्यादनारतं सिद्धिगमनसंभवेन तदव्ययो-
पपत्तेरपूर्वाभावादभव्योच्छेद इत्येवं नो वदेत्, तथा सर्वेऽपि 'प्रा-
णिनो' जन्तवः 'अनीदृशा' विसदृशाः सदा परस्परविलक्षणा एव, न
कथञ्चित्तेषां सादृश्यमस्तीत्येवमप्येकान्तेन नो वदेत्, यद्विवा सर्वे-
षां भव्यानां सिद्धिसद्भावेऽवशिष्टाः संसारे 'अनीदृशा' अभव्या
एव भवेयुरित्येवं च नो वदेत्, युक्तिं चोत्तरत्र वक्ष्यति । तथा कर्मा

त्मको ग्रन्थो येषां विद्यते ते ग्रन्थिकाः, सर्वेऽपि प्राणिनः कर्मग्रन्थो-
 पेता एव भविष्यन्तीत्येवमपि नो वदेत्, इदमुक्तं भवति—सर्वेऽपि
 प्राणिनः सेत्स्यन्त्येव कर्मावृता वा सर्वे भविष्यन्तीत्येवमेकमपि पक्ष-
 मेकान्तिकं नो वदेत् । यदिवा—‘ग्रन्थिका’ इति ग्रन्थिकसत्त्वा
 भविष्यन्तीति. ग्रन्थिभेदं कर्तुमसमर्था भविष्यन्तीत्येवं च नो वदेत्,
 तथा ‘शाश्वता’ इति शास्तरः ‘सदा’ सर्वकालं स्थायिनस्तीर्थकरा
 भविष्यन्ति ‘न समुच्छेत्स्यन्ति’ नोच्छेदं यास्यन्तीत्येवं नो
 वदेदिति ॥ ४ ॥ तदेवं दर्शनाचारवादनपेधं वाङ्म-
 मात्रेण प्रदर्श्याधुना युक्तिं दर्शयितुकाम आह ‘एतयोः’ अनन्त-
 रोक्तयोः स्थानयोः तद्यथा शास्तरः क्षयं यास्यन्तीति शाश्वता वा
 भविष्यन्तीति, यदिवा सर्वे शास्तरस्तद्दर्शनप्रतिपन्ना वा सेत्स्यन्ति
 शाश्वता वा भविष्यन्ति, यदिवा सर्वे प्राणिनो ह्यनीदृशाः—विस-
 दृशा सदृशा वा तथा ग्रन्थिकसत्त्वास्तद्रहिता भविष्यन्तीत्येवमन-
 योः स्थानयोर्व्यवहरणं व्यवहारस्तदस्तित्वे युक्तेरभावात् विद्यते,
 तथाहि—यत्तावदुक्तं ‘सर्वे शास्तरः क्षयं यास्यन्ती’ त्येतदयुक्तं, क्षयनि-
 बन्धनस्य कर्मणोऽभावात्सिद्धानां क्षयाभावः, अथ भवस्थकेवल्यपे-
 क्षयदमभिधीयते, तदप्यनुपपन्नं यतोऽनाद्यनन्तानां केवलिनां सद्-
 भावात् प्रवाहापेक्षया तदभावाभावः । यदप्युक्तम्—‘अपूर्वस्याभावे
 सिद्धिगमनसद्भावेन च व्यथसद्भावाद्भव्यशून्यं जगत् स्या’-
 दित्येतदपि सिद्धान्तपरमार्थावेदिनो वचनं, यतो भव्यराशे राद्धान-
 न्ते भविष्यत्कालस्यैवानन्त्यमुक्तम्, तच्चेवमुपपद्यते यदि क्षयो न
 भवति, सति च तस्मिन् आनन्दं न स्यात् नापि चाक्षर्यं सर्व-

स्यापि भव्यस्य सिद्धिगमनेन भाव्यमित्यानन्त्याद्भव्यानां तत्साम-
 अश्रभावाद्योग्यदलिकप्रतिभावत्तदनुपपत्तिरिति । तथा नापि शाश्व-
 ता एव भवस्थकेवलितनां शास्त्रीणां सिद्धिगमनसद्भावात्प्रवाहापेक्षया
 च शाश्वतत्वमतः कथञ्चिच्छाश्वता कथञ्चिदशाश्वता इति । तथा
 सर्वेऽपि प्राणिनो विचित्रकर्मसद्भावान्नानागतिजातिशरीराङ्गोपाङ्गादि-
 समन्वितत्वादनीदृशाः— विसदृशास्तथोपयोगासंख्येयप्रदेशत्वाभूत-
 त्यादिभिर्धर्मैः कथञ्चित्सदृशा इति, तथोल्लसितसद्वीर्यतया केचिद्वि-
 न्नग्रन्थयोऽपरे च तथाविधपरिणामाभावाद् अन्धिकसत्त्वा एव भव-
 न्तीत्येवं च व्यवस्थिते नैकान्तेनैकान्तपक्षो भवतीति प्रतिषिद्धः, तदे-
 वमेतयोरेव द्वयोः स्थानयोस्तुक्कनीत्याऽनाचारं विजानीयादिति स्थि-
 तम् । अपि च—आगमे अनन्तानन्तास्वप्युत्सर्पिण्यवसर्पिणीषु
 भव्यानामनन्तभाग एव सिद्धयतीत्ययमर्थः प्रतिपाद्यते, यदा चैवम्भूतं
 तदानन्त्यं तत्कथं तेषां क्षयः । युक्तिरप्यत्र—सम्बन्धशब्दावेतौ, मुक्तिः
 संसारं विना न भवति, संसारोऽपि न मुक्तिमन्तरेण, ततश्च भव्यो-
 च्छेदे संसारस्याप्यभावः स्यादतोऽभिधीयते नानयोर्व्यवहारो युज्यत
 इति ॥ ५ ॥ अधुना चारित्राचारमगीकृत्याह—

मूलम्—जे केइ खुद्दगा पाणा, अदुवा सन्ति महालया ।

सरिसं तेहिं वेरंति, असरिसन्ती य शो वदे ॥

एएहिं दोहिं ठाणेहिं, ववहारो न विज्जई ।

एएहिं दोहिं ठाणेहिं, अणायारं तु जाणएह

—श्री सूयगडाङ्ग सूत्र ॥२॥५॥६॥७॥

टीका वे केचन खुद्दका सत्त्वा—प्राणिन पकेन्द्रियद्वीन्द्रियादयो-

ऽल्पकाया वा पञ्चेन्द्रिया अथवा 'महालया' महाकायाः 'सन्ति' विद्यन्ते तेषां च क्षुद्रकाणामल्पकायानां कुण्डवादीनां महानालयः— शरीरं येषां ते महालया—हस्तयादयस्तेषां च व्यापादने सदृशं 'वैर' मिति वज्रं कर्म विरोधलक्षणं वा वैरं तत् 'सदृशं' समानं तुल्य-प्रदेशत्वात्सर्वजन्तूनामित्येवमेकान्तेन नो वदेत् तथा 'विसदृशम्'- असदृशं तद्व्यापत्तौ वैरं कर्मबन्धो विरोधो वा इन्द्रियविज्ञानका-यानां विसदृशत्वात् सत्यपि प्रदेशतुल्यत्वे न सदृशं वैरमित्येवम-पि नो वदेत्, यदि हि बध्यापेक्ष एव कर्मबन्धः स्यात्तदा तत्तद्वशा-त्कर्मणोऽपि सादृश्यमसादृश्यं वा वक्तुं युज्येत, न च तद्वशादेव बन्धः अपि स्वध्यवसायवशादपि, ततश्च तीव्राध्यवसायिनोऽल्प-कायसत्त्वव्यापादनेऽपि महद्वैरम्, अकामस्य तु महाकायसत्त्व-व्यापादनेऽपि स्वल्पमिति ॥ ६ ॥ एतदेव सूत्रेणैव दर्शयितुमाह— आभ्यामनन्तरोक्ताभ्यां स्थानाभ्यामनयोर्वा स्थानयोरल्पकायमहा-कायव्यापादनापादितकर्मबन्धसदृशत्वासदृशत्वयोर्व्यवहरणं व्यव-हारो नियुक्तिरुक्तवान्त युज्यते, तथाहि—न बध्यस्य सदृशत्वम-सदृशत्वं चैकमेव कर्मबन्धस्य कारणम्, अपितु वधकस्य तीव्रभावो मन्दभावो ज्ञानभावोऽज्ञानभावो महावीर्यत्वमल्पवीर्यत्वं चेत्येतदपि । तदेवं बध्यवधकयोर्विशेषात्कर्मबन्धविशेष इत्येव व्यवस्थिते बध्यमेवाश्रित्य सदृशत्वासदृशत्वव्यवहारो न विद्यत इति । तथाऽनयोरेव स्थानयोः प्रवृत्तस्यानाचारं विजानीयादिति, तथाहि—यज्जीवसान्यात्कर्मबन्धसदृशत्वमुच्यते, तद्युक्तं, यतो न हि जीवव्यापस्या हिंसोच्यते, तस्य शाश्वतत्वेन व्यापादयितुमश-

अथैवाद्, अपि त्रिविद्यादिगणपत्या, तथा चोक्तम्—“पंचेन्द्रिया-
णि त्रिविधं बलं च, उच्छ्वासाग्निःश्वासमयान्यदायुः। प्राणा दृशैते
भगवद्विरुक्तास्तेषां वियोजीकरणं तु हिंसा ॥१॥” इत्यादि । अपि
च भावसन्त्यपेक्षस्यैव कर्मबन्धोऽभ्युपेतुं युक्तः, तथाहि-वैद्यस्यागम-
सन्त्यपेक्षस्य सम्यक् क्रियां कुर्वतो यद्यप्यातुरविपत्तिर्भवति तथापि
न वै रानुगङ्गो भावदोषाभावाद्, अपरस्य तु सर्पबुद्ध्या रज्जुमपि
ज्ञतो भावदोषात्कर्मबन्धः, तद्वद्वितस्य तु न बन्ध इति, उक्तं चागमे
‘उच्छ्वालयामि पाप’, इत्यादि तण्डुलमत्स्याख्यानकं तु सुप्रसिद्धमेव
तदेवंविधवध्यवधकभावापेक्षया स्यात् सदृशत्वं स्यादसदृशत्वमिति
अन्यथाऽनाचार इति ॥७॥

पुनरपि चारित्र्यमाधकृत्याहारविषयानाचाराचारौ प्रतिपादयितु-
काम आह—

मूलम्—अहं कर्माणि भुञ्जंति, अणामणो सकम्पुणा ।

उचलितेति जाणिज्जा अणुवलितेति वा पुणो ॥

एण्हिं दोहिं ठाणेहिं, ववहारो ण विज्जई ।

एण्हिं दोहिं ठाणेहिं अणायारं तु जाणए ॥

— श्री सूयगडाङ्ग सूत्र ॥२॥८.६॥

टीका—साधुं प्रधानकारणमाधाय-आश्रित्य कर्माण्याधाकर्माणि
तानि च वस्त्रभोजनवस्त्यादीन्युच्यन्ते, एतान्याधाकर्माणि ये
भुञ्जन्ते — एतैरुपभोगं ये कुर्वन्ति ‘अन्योऽन्यं’ परस्परं
तान् स्वकीयेन कर्मणोपलिप्तान् विजानीयादित्येवं नो
वदेत् तथाऽनुपलिप्तमिति वा नो वदेत्, एतदुक्तं
मरुति—आधाकर्माणि श्रुतोपदेशेन शुद्धमतिकृत्वा सुखान-

कर्मणा नोपलिप्यते तदाधौकर्मोपभोगेनावश्यतया कर्मवन्धं
भवतीत्येवं नो वदेत्, तथा श्रुतोपदेशमन्तरेणाहारगृह्णाऽऽधाकर्म
भुञ्जानस्य तन्निमित्तकर्मबन्धसद्भावात् अतोऽनुलिप्तानपि नो
वदेत्, यथावस्थितमौनीन्द्रागमज्ञस्य त्वेवं युज्यते वक्तुम्—आधा-
कर्मोपभोगेन स्यात्कर्मबन्ध स्यान्नेति, यत उक्तम्—“किञ्चिच्छुद्ध
कल्प्यमकल्प्यं वा, स्यादकल्प्यमपि कल्प्यम्। पिरुडः शय्या चमत्रं
पात्रं वा भेषजाद्यं वा ॥१॥” तथान्यैरप्यभिहितम्—“उत्पद्येत हि
साऽवस्था, देशकालामयान्प्रति। यस्यामकार्यं, कार्यं
स्यात्कर्म कार्यं च वर्जयेद् ॥ १ ॥” इत्यादि ॥ ८ ॥
किमित्येवं स्याद्वादः प्रतिपाद्यत इत्याह—आभ्यां द्वाभ्यां स्थानाभ्या-
माश्रिताभ्यामनयोर्वा स्थानयोराधाकर्मोपभोगेन कर्मबन्धभावाभा-
वभूतयोर्व्यवहारो न विद्यते, तथाहि—यद्यवश्यमाधाकर्मोपभोगेनै-
कान्तेन कर्मबन्धोभ्युपगम्येत एवं चाहाराभावेनाऽपि क्वचित्सु-
तरामनर्थोदयः स्यात्, तथाहि—शुद्धपीडितो न सम्यगीर्योपथं
शोधयेत् ततश्च व्रजन् प्राण्युपमर्दमपि कुर्यात् मूर्च्छादिसद्भावतया
च देहपाते सत्यवश्यभावी व्रसादिव्याघातोऽकालमरणे चावि-
स्तिरङ्गीकृता भवत्यार्तध्यानापत्तौ च तिर्यग्गतिरिति, आगमश्च—
“सन्वत्थ संजम संजमाओ अप्पाणमेव रक्खेज्जा” इत्यादिनाऽपि
तदुपभोगे कर्मबन्धाभाव इति तथाहि—आधाकर्मस्यपि निष्पाद्यमाने
षड्जीवनिकायवधस्तद्वधे च प्रतीतः कर्मबन्ध इत्यतोऽनयोः स्था-
नयोरैकान्तेनाश्रीयमाणयोर्व्यवहरणं व्यवहारो न युज्यते,
तथाऽऽभ्यामेव स्थानाभ्यां समाश्रिताभ्यां सर्वमनाचारं विजानी-

यादिति स्थितम् ॥६॥

पुनरप्यन्यथा दर्शनं प्रति वागनाचारं दर्शयितुमाह—

मूलम्—जमिदं ओरालमाहारं, कम्मगं च तहेव य (तमेवतं)

सव्वत्थ वीरियं अत्थि, णत्थि सव्वत्थ वीरियं ॥

एणहिं दोहिं ठाणेहिं, ववहारो ण विज्जई ।

एणहिं दोहिं ठाणेहिं, अणायारं तु जाणए ॥

—श्री सूयगडाङ्ग सूत्र ॥२॥५॥१०,११॥

टीका—यदि वा योऽयमनन्तरमाहारः प्रदर्शितः स सति शरीरे भवति शरीरं च पञ्चधा तस्य चौदारिकादेः शरीरस्य भेदाभेदं प्रतिपादयितुकामः पूर्वपक्षद्वारेणाह—‘जमिदं’ मित्यादि, यदिदं— सर्वजनप्रत्यक्षमुदारैः पुद्गलैर्निवृत्तमौदारिकमेतेदेवोराळं विस्तारत्वाद् एतच्च तिर्यङ्मनुष्याणां भवति, तथा चतुर्दशपूर्वविदा कचित्संशया दावाह्नियत इत्याहारम्, एतद्ग्रहणाच्च वैक्रियापादानमपि द्रष्टव्यं, तथा कर्मणा निवृत्तं कर्मणम्, एतत्सहचरितं तैजसमपि ग्राह्यम् । औदारिकवैक्रियाहारकाणां प्रत्येकं तैजसकर्मणाभ्यां सह युगपदुपलब्धे कस्यचिदेकत्वाऽऽशङ्का स्यादतस्तदपनोदार्थं तदभिप्रायमाह—‘तदेवतदं’ यदेवौदारिकं शरीरं ते एव तैजसकर्मणे शरीरे, एवं वैक्रियाहारकयोरपि वार्यं, तदेवंभूतां संज्ञां नो निवेशयेदित्युत्तरश्लोके क्रिया, तथैतेषामात्यन्तिको भेद इत्येवंभूतामपि संज्ञां नो निवेशयेन् । युक्तिश्चात्र—यद्येकान्तेनाभेद एव तत् इदमौदारिकमुदारपुद्गलनिष्पन्नं तथैतत्कर्मणा निवर्त्तितं कर्मणं सर्वस्यैतस्य

ससारचक्रवालभ्रमणस्य कारणभूतं तेजोद्रव्यैर्निष्पन्नं तेज एव
तैजसं आहारपक्तिनिमित्तं तैजसलब्धिनिमित्तं चेत्येवं भेदेन
संज्ञानिरुक्तं कार्यं च न स्यात् अथात्यन्तिका भेद एव ततो
घटवद्विन्नयोर्देशकालयोरप्युपलब्धिः स्यात्, न नियता युगपदुलब्धि-
रिति एवं च व्यवस्थिते कथञ्चिदेकोपलब्धेरभेदः कथञ्चिच्च संज्ञा-
भेदाद्भेद इति गीतं । तदेवमौदारिकादीनां शरीराणां भेदाभेदौ
प्रदर्शयितुना सर्वस्यैव द्रव्यस्य भेदाभेदौ प्रदर्शयितुकामः पूर्वपक्ष-
श्लोकपश्चाद्धेन दर्शयितुमाह—‘सर्वव्यवस्थवीर्यमित्यादि, ‘सर्व-
सर्वत्र विद्यते’ इतिकृत्वा सांख्याभिप्रायेण सत्त्वरजस्त-
मोरूपस्य प्रधानस्यैकत्वात्तस्य च सर्वस्यैव कारणत्वात्
अतः सर्वं सर्वात्मकमित्येवं व्यवस्थिते ‘सर्वत्र’
घटपटादौ अपरस्य—व्यक्तस्य ‘वीर्यं’ शक्तिर्विद्यते, सर्वस्यैव हि
व्यक्तस्य प्रधानकार्यत्वात्कार्यकारणयोश्चैकत्वाद् अतः सर्वस्य
सर्वत्र वीर्यमस्तीत्येवं संज्ञां नो निवेशयेत्, तथा ‘सर्वे भावा स्वभावेन
स्वस्वभावव्यवस्थिता’ इति प्रतिनियतशक्तित्वान्न सर्वत्र सर्वस्य
‘वीर्यं’ शक्तिरित्येवमपि संज्ञां नो निवेशयेत् । युक्तिश्चात्र—यत्ताव-
दुच्यते ‘सांख्याभिप्रायेण सर्वं सर्वात्मकं देशकालाकारप्रतिबंधात्
न समानकालोपलब्धि’ रिति, तदयुक्तं, यतो भेदेन सुखदुःखजीवित-
मरणदूरासन्नसूक्ष्मबाहुरकुलमादिकं संसारवैचित्र्यमध्यक्षेणानु-
भूयते, न च दृष्टेऽनुपपन्नं नाम, न च सर्वं मिथ्येत्यभ्युपपत्तुं
युज्यते यतो दृष्टानिरदृष्टकल्पना च पापीयसी । किंच—सर्वं

थैक्येऽभ्युपगम्यमाने संसारमोक्षाभावतया कृतनाशोऽकृताभ्यागमश्च
बलादापनति, यच्चैतत् सत्त्वरजस्तमसां साम्यावस्था प्रकृति
प्रधानमित्येतत्सर्वभ्याम्य जगतः कारणं तन्निरन्तराः सुहृद
प्रत्येक्ष्यन्ति, निर्युक्तिकत्वाद्, अपिच—सर्वथा सर्वस्य वस्तुन
एकत्वेऽभ्युपगम्यमाने सत्त्वरजस्तमसामप्येकत्वं स्यात्, तद्भेदे च
सर्वस्य तद्वदेव भेद इति । तथा यदप्युच्यते—‘सर्वस्य व्यक्तस्य
प्रधानकार्यत्वात्सत्कार्यवादाच्च मयूराण्डकरणे चञ्चृपिच्छादीना
सतामोवोत्पादाभ्युपगमाद् असदुत्पादे चास्रफलादीनामप्युत्पत्ति-
प्रसङ्गा’ दित्येतद्वाङ्मात्रं, तथाहि—यदि सर्वथा कारणे कार्यमस्ति
न तर्ह्युत्पादो निष्पन्नघटस्यैव, अपि च मृत्पिण्डावस्था-
यामेव घटगताः कर्मगुणव्यपदेशा भवेयुः, न च
भवन्ति, ततो नास्ति कारणे कार्यम्, अथानभिव्यक्तमस्तीति चेन्न
तहि सर्वात्मना विद्यते, नाप्येकान्तेनासत्कार्यवाद एव, तद्भावे हि
व्योमारविन्दानामप्येकान्तेनासतां मृत्पिण्डादेर्घटादेरिवोत्पत्तिः स्यात्
न चैतद्दृष्टमिष्टं वा, अपि च—एवं सर्वस्य सर्वस्मादुत्पत्तः कार्य-
कारणभावानियमः स्याद्, एवं च न शाल्युङ्करार्थी शालीबीजमे-
वादद्यात् अपितु यत्किञ्चिदेवेति, नियमेन च प्रेक्षापूर्वकारिणामुपा-
दानकारणादौ प्रवृत्तिः, अतो नासत्कार्यवाद इति । तदेवं सर्वपदार्थानां
सत्त्वज्ञेयत्वप्रमेयत्वादिभिर्धर्मैः कथञ्चिदेकत्वं तथा प्रतिनियतार्थ-
कार्यतया यदेवार्थक्रियाकारि तदेव परमार्थतः सदितिकृत्वा कथञ्चि-
द्भेद इति सामान्यविशेषात्मकं वस्त्विति स्थितम् । अनेन च
भ्यादस्ति स्यान्नास्तीतिभङ्गकद्वयेन शेषभङ्गका अपि द्रष्टव्याः

ततश्च सर्वं वस्तु सप्तभङ्गीस्वभावं, ते चामो—स्वद्रव्यज्ञे त्रकाल-
भावापेक्षया स्यादस्ति, परद्रव्याद्यपेक्षया स्यान्नास्ति, अनयोरेव
धर्मयोर्योगपक्षेनाभिधातुमशक्यत्वात्स्यादवक्तव्यं, तथा कस्यचिद-
शस्य स्वद्रव्याद्यपेक्षया विवक्षितत्वात्कस्यचिच्चोशस्य परद्रव्याद्यपेक्ष-
या विवक्षितत्वात् स्यादस्ति च स्यान्नास्ति चेति, तथैकस्यांशस्य
स्वद्रव्याद्यपेक्षया परस्य तु सामस्त्येन स्वपरद्रव्याद्यपेक्षया विवक्षित-
त्वात्स्यादस्ति चावक्तव्यं चेति, तथैकस्यांशस्य परद्रव्याद्यपेक्षया परस्य
तु सामस्त्येन स्वपरद्रव्याद्यपेक्षया विवक्षितत्वात् स्यान्नास्ति
चावक्तव्यं चेति, तथैकस्यांशस्य स्वद्रव्याद्यपेक्षया परस्य तु
परद्रव्याद्यपेक्षयाऽन्यस्य तु योगपक्षेन स्वपरद्रव्याद्यपेक्षया विवक्षित-
त्वात्स्यादस्ति च नास्ति चावक्तव्यं चेति, इयं च सप्तभङ्गी यथा-
योगमुत्तरात्रापि योजनीयेति ॥१०॥११॥

तदेवं सामान्येन सर्वस्यैव वस्तुनो भेदाभेदौ
प्रतिपाद्याधुना सर्वशून्यवादिमतनिरासेन लोका-
लोकयोः प्रविभागेनास्तित्वं प्रतिपादयितुकाम आह—यदिवा सर्वत्र
'वीर्य' मित्यनेन सामान्येन वस्त्वस्तित्वमुक्तं, तथाहि—सर्वत्र
वस्तुनो 'वीर्य' शक्तिरर्थक्रियासामर्थ्यमन्तशः स्वविषयज्ञानोत्पादन,
तच्चैकान्तेनात्यन्ताभावाच्छशविषाणादेरप्यस्तीत्येवं संज्ञां न
निवेशयेत्, सर्वत्र वीर्यं नास्तीति नो एवं संज्ञां निवेशयेदिति,
अनेनावशिष्टं वस्त्वस्तित्वं प्रसाधितम्, इदानीं तस्यैव वस्तुन
ईषद्विशेषितत्वेन लोकालोकरूपतयाऽस्तित्वं प्रसाधयन्नाह—

मूलम्—अतिथि लोए अलोए वा, एवें सन्नं निवेसए ।

अतिथिलोए अलोए वा, एवं सन्नं निवेसए ॥

एतत्थि जीवा अजीवा वा, एवम् सन्नं निवेशेत् ।

अतत्थि जीवा अजीवा वा, एवं सन्नं निवेशेत् ॥

—श्री सूयगजसूत्र २ । ५ । १२, १३ ॥

टीका—‘लोकः’ चतुर्दशरज्ज्वात्मको धर्माधर्माकाशादिपञ्चा-
स्तिकायात्मको वा स नास्त्येव संज्ञां नो निवेशयेत् । तथा-
ऽऽकाशास्तिकायमात्ररुक्त्वलोकः स च न विद्यते एवेत्येवं संज्ञां
नो निवेशयेत् । तदभावप्रतिपत्तिनिवृत्त्यर्थं तद्वत् तद्यथा—प्रतिभास-
मानं वस्तुवयवद्वारेण वा प्रतिभासनेतावयवद्वारेण वा ? तत्र
न तावदवयवद्वारेण प्रतिभासनमुत्पद्यते, निरंशपरमाणूनां प्रति-
भासनासंभवात्, सर्वांशतीयभागस्य च परमाण्वात्मकत्वात्तेषां च
छद्मस्थविज्ञानेन द्रष्टुमशक्यत्वात्, तथा चोक्तम्—“यावद्दृश्यं
परस्तावद्भागः स च न दृश्यते । निरंशस्य च भागस्य,
नास्ति छद्मस्थदर्शनम्” ॥ १ ॥ इत्यादि नाप्यवयवद्वारेण,
विकल्पमातस्यावयविन एवाभावात्, तथाहि—असौ स्वावयवेषु
प्रत्येकं सामस्त्येन वा वर्त्तते ? अंशांशभावेन वा ? न सामस्त्येना-
वयविबहुत्वप्रसङ्गात्, नाप्यंशेन पूर्वविकल्पानितिक्रमेणानवस्था-
प्रसङ्गात्, तस्माद्विचार्यमाणं न कथञ्चिद्रुक्त्वात्मभावं लभते, ततः
सर्वमेव तन्मात्रास्त्वेनेन्द्रजालमरुमरीचिकाविज्ञानस्मृतिः, तथा
चोक्तं—“यथा यथाऽर्थाश्चिन्त्यन्ते, विविच्यन्ते तथा तथा । यद्येते
(तत्) स्वयमर्थेभ्यो, रोचन्ते (ते) तत्र के वयम् ? ॥ १ ॥” इत्यादि
तदेवं वस्तुभावे तद्विशेषलोकालोकाभावः सिद्ध एवेत्येवं नो संज्ञां

निवेशयेत् । किञ्चित्ति लोक ऊर्ध्वावस्तिर्यग्रूपो वैशाखस्थानस्थितकटि-
न्यस्तकरयुग्ममुखसदृशः पञ्चास्तिकायात्मको वा, तद्व्यतिरिक्तश्चालोकः
ऽप्यस्ति, संबन्धिशब्दत्वात्, लोकव्यवस्थाऽन्यथाऽनुपपत्तेरिति भावः
युक्तिश्चात्र—यदि सर्वं नास्ति ततः सर्वान्तःपातित्वात्प्रतिषेधकोऽपि
नास्तीत्यतस्तदभावात्प्रतिषेधाभावः, अपि च—सति परमार्थभूते
वस्तुनि मायात्वेनेन्द्रजालादिव्यवस्थाः अन्यथा किमाश्रित्य को वा
मायादिकं व्यवस्थापयेदिति ? । अपि च—“सर्वाभावो यथाभीष्टो,
युक्त्यभावे न सिद्धयति । साऽस्ति चेत्सैव नस्तत्त्वं, तत्सिद्धौ
सर्वमस्तु सद् ॥ १ ॥” इत्यादि । यदप्यवयवावयविविविभागकल्पनया
दूषणमभिधीयते तदप्यार्हतमतानभिज्ञेन, तन्मतं त्वेवंभूतं, तद्यथा—
नैकान्तेनावयवा एव नाप्यवयव्येव चेत्यतः स्याद्वादाश्रयणात्पूर्वोक्त-
विकल्पदोषानुपपत्तिरित्यतः कथञ्चिच्छ्लोकोऽस्त्येवमल्लोकोऽपीति
स्थितम् ॥ १२ ॥ तदेवं लोकालोकास्तित्वं प्रतिपाद्यायुना तद्विशेष-
भूतयोर्जीवाजीवयोरस्तित्वप्रतिपादनायाह—‘एतथिजीवा अजीवे’
त्यादि, जीवा उपयोगलक्षणाः संसारिणो, मुक्ता वा तेन विद्यन्ते,
तथा अजीवाश्च धर्माधर्माकाशपुद्गलकालात्मका गतिस्थित्यवगाह-
दानच्छायातपोद्योतादिवर्तमानलक्षणा न विद्यन्ते इत्येवं संज्ञां—
परिज्ञानं नो निवेशयेत्, नास्तित्वनिबन्धनं त्विदं—प्रत्यक्षेणानुप-
लभ्यमानत्वाज्जीवा न विद्यन्ते, कायाक्षरपरिणतानि भूतान्येव
धावनवरगन्तादिकां क्रियां कुर्वन्तीति । तथाऽऽत्माद्वैतवादमताभि-

प्रायेण पुरुष एवेद । अस्य यद्रूपं यच्च भाव्य' मित्यागमात्
तथा अजाया न विद्यन्ते सर्वस्यैव चेतनाचेतनरूपत्वात्ममात्र-
विवर्त्तत्वात् नो एवं संज्ञां निवेशयेत्, किन्त्वस्ति जीवः सर्वस्या-
स्य सुखदुःखादेर्निबन्धनभूतः स्वसंवित्तिसिद्धोऽहंप्रत्ययपाद्यः, तथा
तद्वर्त्तारिका जर्माकारादुद्भवाद्यश्च विद्यन्ते, सकलप्राणज्येष्ठेन
प्रत्यक्षानुभूयमानत्वात्तद्विरुद्धानां, भूतचैतन्यवादी च वाच्यः—
किं तानि भगवन्निप्रेतानि भूतानि नित्यान्युतानित्यानि ? यदि
नित्यानि ततोऽग्रच्युतानुत्पन्नहिरैकस्वभावत्वान्न कायाकारपरिणतिः,
नापि प्रागविद्यमानस्य चैतन्यस्य सद्भावो, नित्यत्वज्ञानेः । अथा-
नित्यानि किं तैवविद्यमानमेव चैतन्यमुत्पद्यते आहोस्विद्विद्यमानं ?
न तावदविद्यमानमतिप्रसङ्गाद्, अभ्युपेतागमलोपादा, अथ
विद्यमानमेव सिद्धं तर्हि जीवत्वम् । तथाऽऽत्माद्वैतवाद्यापि
वाच्यः—यदि पुरुषमात्रमेवेदं सर्वं कथं घटपटादिषु चैतन्यं
नोपलभ्यते ?, तथा तदैक्येऽभेदनिबन्धनानां पक्षहेतुदृष्टान्तानाम-
भावात्साध्यसाधनाभावः, तस्मान्नैकान्तेन जीवाजीवयोऽभावः,
अपितु सर्वपदार्थानां स्याद्वादाश्रयणाज्जीवः स्याज्जीवः स्यादजीवः,
अजीवोऽपि च स्यादजीवः स्याज्जीव इति, एतच्च स्याद्वादाश्रयणं
जीवपुद्गलयोरन्योऽन्यानुगतयोः शरीरप्रत्यक्षतयाऽध्यक्षेणैवोपलम्भा-
द्दृष्टव्यमिति ॥ १३ ॥

जीवास्तित्वे च सिद्धे तन्निबन्धनयोः सदसत्क्रियाद्वारायात-
योर्धर्माधर्मयोरतित्वप्रतिपादनायाहः—

मूलम्-शक्ति धर्म्ये अधर्म्ये वा, शेषं सन्नं निवेसए ।

अतिथि धर्म्ये अधर्म्ये व, एवं सन्नं निवेसए ॥

शक्ति बन्धे व मोक्षे वा, शेषं सन्नं निवेसए ।

अतिथि बन्धे व मोक्षे वा, एवं सन्नं निवेसए ॥

—श्री सूयगदाङ्ग सूत्र २।५।१४, १५॥

टीका—‘धर्मः’ श्रुतचास्त्रात्मको जीवस्यात्मपरिणामः कर्म-
चयकारणम् एवमधर्मोऽपि मिथ्यात्वाच्चिरस्तिप्रमादकत्राययोगरूपः
कर्मबन्धकारणमात्मपरिणाम एव, तावेवंभूतौ धर्माधर्मौ कालस्थभाव-
नित्यतीश्वरादिमतेन न विद्येते इत्येवं संज्ञां नो निवेशयेत्—
कालादय एवास्य सर्वस्य जगद्वैचित्र्यस्य धर्माधर्मव्यतिरेकेणैकान्ततः
कारणमित्येवमभिप्रायं न कुर्याद्, यतः त एवैकका न कारणमपि
तु समुदिता एवेति, तथा चोक्तम्—“न हि कालादीहितो केवलएहितो
जायए किंचि । इह मुगारं एणइवि ता सव्वे समुदिया हेऊ ॥१॥”
इत्यादि । यतो धर्माधर्मान्तरेण संसारवैचित्र्यं न घटामित्यतो-
ऽस्ति धर्मः—सम्यग्दर्शनादिकोऽधर्मश्च—मिथ्यात्वादिक इत्येवं
संज्ञां निवेशयेदिति ॥ १४ ॥ सतोश्च धर्माधर्मयोर्बन्धमोक्षसद्भाव
इत्येतद्दर्शयितुमाह—बन्धः—प्रकृतिस्थित्यनुभावप्रदेशात्मकतया
कर्मपुद्गलानां जीवेन स्वव्यापास्तः स्वीकरणं स चासूतस्यात्मनो
गगनस्येव न विद्यत इत्येवं नो संज्ञां निवेशयेत्, तथा तदभावाच्च
मोक्षस्याप्यभाव इत्येवमपि संज्ञां नो निवेशयेत् । कथं तर्हि संज्ञां
निवेशयेदित्युत्तरार्द्धेन दर्शयति—अस्ति बन्धः कर्म पुद्गलैर्जीवरयेवं संज्ञां

निवेशयेदिति यत्तूच्यते—अमूर्त्तस्य मूर्तिमता सम्बन्धो न युज्यत
इति तदयुक्तम्, आकाशस्य सर्वव्यापितया पुद्गलैरपि सम्बन्धो
दुर्निवार्यः, तद्भावे तद्व्यापित्वमेव न स्याद् अन्यच्च अस्य
विज्ञानस्य हृत्पूरमदिशदिना विकारः समुपलभ्यते न चासौ सम्बन्ध-
सृते अतो यत्किंचिदेतत् । अपि च—संसारिणाममुमतां सदा
तैजसकर्मणशरीरसद्भावादात्यन्तिकममूर्त्तत्वं न भवतीति । तथा
तत्प्रतिपक्षभूता मोक्षोऽप्यस्ति, तदभावे बन्धस्याप्यभावः स्यादित्यतो-
ऽशेषबन्धनापगमस्वभावो मोक्षोऽस्तीत्येवं च संज्ञां निवेशयेदिति
॥ १५ ॥

बन्धसद्भावे चावश्यं भावीपुण्यपापसद्भाव इत्यतस्तदभावं
निषेधद्वारेणाह—

मूलम्—अत्थि पुण्ये व पावे वा, शेषं सन्नं निवेशे ।

अत्थि पुण्ये व पावे वा, एवं सन्नं निवेशे ॥

अत्थि आसवे संवरे वा, शेषं सन्नं निवेशे ।

अत्थि आसवे संवरे वा, एवं सन्नं निवेशे ॥

—श्री सूयगडाङ्ग सूत्र ॥२॥१५॥१६॥१७॥

टीका—‘नास्ति’ न विद्यते पुण्यं, शुभकर्मप्रकृति-
लक्षणं तथा ‘पापं’ तद्विपर्ययलक्षणं ‘नास्ति’ न विद्यते इत्येवं संज्ञां
नो निवेशयेत् । तदभावप्रतिपात्तनिबन्धनं त्विदं—तत्र केषाञ्चि-
न्नास्ति पुण्यं, पापमेव ह्युत्कर्षार्थं सत्सुखदुःखतन्निवृत्तं, तथा
परेषां पापं नास्ति, पुण्यमेव ह्यपचीयमानं पापकार्यं कुर्यादिति,
अन्येषां तूभयमपि नास्ति, संसारवैचित्र्यं तु निर्यातस्वभावादिदृष्टं

तदतदयुक्तं, यतः पुण्यपापशब्दौ सम्बन्धिशब्दौ संबन्धिशब्दानामे-
कांशस्य सत्ताऽपरसत्तानान्तरीयका अतो नैकतरस्य सत्तेति, नाप्यु-
भयाभावः, शक्यते वक्तुं, निर्निवन्तस्य जगद्वैचित्र्यस्याभावात्,
न हि कारणमन्तरेण क्वाचित्कार्यस्यात्पत्तिर्दृष्टा, नियतिस्वभावादि-
वादस्तु नष्टोत्तराणां पादप्रसारकाप्रायः, आप च—तद्वादेऽभ्युप-
गम्यमाने सकलक्रियावैयर्थ्यं तत एव सकलकार्योत्पत्तोरित्यतो
ऽस्ति पुण्यं पापं चेत्येवं सङ्गां निवेशयेत् । पुण्यपापे चैवंरूपे,
तद्यथा—“पुद्गलकर्म शुभं यत्तत्पुण्यमिति जिनशासने दृष्टम् ।
यद्दशुभमथ तत्पापमिति प्रवृत्तिः सर्वज्ञनिर्दिष्टम् ॥१॥” इति ॥१६॥
न कारणमन्तरेण कार्यस्योत्पत्तिस्तः पुण्यपापयोः प्रागुक्तयोः कारण-
भूतावाश्रवसंबन्धे तत्प्रतिषेधनिषेधद्वारेण दर्शयितुकाम आह—
आश्रवति—प्रविशति कर्म येन स प्राणनिपातादिरूप आश्रवः—
कर्मोपादानकारणं, तथा तन्निरोधः संबन्धः एतौ द्वावपि न स्त इत्येवं
सङ्गां नो निवेशयेत्, तदभावप्रतिपत्त्याशङ्ककारणं त्वदं—काय-
वाङ्मनः कर्मयोगः स आश्रव इति, यथेदमुक्तं तथेदमप्युक्तमेव—
‘उच्चालियमि पाए’ इत्यादि, ततश्च कायादिव्यापारेण कर्मबन्धो न
भवतीति, युक्तिरपि—किमयमाश्रव आत्मनो भिन्न उताभिन्नः ?
चदि भिन्नो नासावाश्रवो घटादिवद्, अभेदेऽपि नाश्रवत्वम्,
सिद्धात्मनामपि आश्रव प्रसङ्गात्, तदभावे च तन्निरोधलक्षणस्य
संबन्धस्याप्यभावः सिद्ध एवेत्येवमात्मकमध्यवसायं न कुर्यात् । यतो
यत्तदनैकान्तिकत्वं कायव्यापारस्य ‘उच्चालियमि पाए’ इत्यादि.

नोक्त तदस्माकमपि सगतमेव, यतो नह्यस्माभिरप्युपयुक्तस्य कर्म-
बन्धोऽभ्युपगम्यते, निरुपयुक्तस्य त्वस्त्येव कर्मबन्धः, तथाभेदाभेदो-
भयपक्षसमाश्रयणात्तदेकपक्षाश्रितदोषाभाव इत्यस्त्याश्रवसद्भावः,
तन्निरोधश्च संवर इति, उक्तं च—“योगः शुद्धः पुण्याश्रवस्तु-
पापस्य तद्विपर्यासः । वाक्कायमनो गुप्तिर्निराश्रवः संवरस्तुक्तः ॥१॥
इत्यतोऽस्त्याश्रवस्तथा संवरश्चेत्येवं संज्ञां निवेशयेदिति ॥ १७ ॥

आश्रवसंवरसद्भावे चावश्यंभावी वेदनानिर्जरासद्भावः इत्य-
तस्तु (मान्) प्रतिषेधनिषेधद्वारेणाह—

मूर्तिरतिथि वेय्या शिञ्जरा वा, एव सन्नं निवेसेष्ट ।

अतिथि वेय्या शिञ्जरा वा, एवं सन्नं निवेसेष्ट ॥

एतिथि किरिया अकिरिया वा, एव सन्नं निवेसेष्ट ।

अतिथि किरिया अकिरिया वा, एवं सन्नं निवेसेष्ट ॥

—श्री सूयगडाङ्ग सूत्र ॥२॥१८, १९ ॥

टीका—वेदना—कर्मानुभवलक्षणा तथा निर्जरा—कर्म
पुद्गलशादनलक्षणा एते द्वे अपि न विद्येते इत्येवं नो संज्ञां निवेश-
येत् । तदभावं प्रत्याशंकाकारणमिदं, तद्यथा—पत्योपमसागरोपम-
शतानुभवनीयं कर्मान्तरमुद्धर्तेनैव क्षयमुपयातीत्यभ्युपगमात्,
तदुक्तम्—“जं अण्णाणी कम्मं खवेइ बहुयाहिं वासकोडीहि । तं
णाणी तिहि गुत्तो खवेइ ऊसासमित्तेणं ॥ १ ॥” इत्यादि । तथा
क्षपकश्रेण्यां च भूतित्येवं कर्मणो भस्मीकरणाद्यथाक्रमवद्धस्य
चानुभवनाभावे वेदनाया अभावः तदभावाच्च निर्जराया अपी-

इत्येवं नो संज्ञां निवेशयेत् । किमिति ? यतः कस्यचिदेव कर्मण
 एवमनन्तरोक्त्या नात्या क्षणान्तपसा प्रदेशानुभवेन च अपरस्य
 तूद्योर्द्वारणाभ्यामनुभवनमित्यतोऽस्ति वेदना, यत आगमोऽप्येवं-
 भूत एव, तद्यथा—“पुर्व्वि दुच्चिचरणारां दुष्पडिकंताणं कम्भारां
 वेदन्ता मोक्खो, एत्थि अवेदन्ता” इत्यादि, वेदना सिद्धौ च निर्जरा
 ऽपि सिद्धैवेत्यतोऽस्ति वेदना निर्जरा चेत्येवं संज्ञां निवेशयेदिति
 ॥ १८ ॥

वेदनानिर्जरे च क्रियाऽक्रियमयते, ततस्तत्संज्ञावं प्रतिषेधनिषेध-
 पूर्व्वकं दर्शयितुमाह—क्रियापरिस्पन्दलक्षणा तद्विपर्य्यस्ता त्वक्रिया,
 ते द्वे अपि ‘न स्तो’, न विद्यते,—तथाहि—सांख्यानां सर्वव्यापित्वा-
 दात्मन आकाशस्यैव परिस्पन्दात्मिका क्रिया न विद्यते, शाक्यानां
 तु क्षणिकत्वात्सर्वपदार्थानां प्रतिसमयमन्यथा चान्यथा चोत्पत्तेः
 पदार्थसत्तैव, न तद्व्यतिरिक्ता काचिक्रियाऽस्ति, तथा चोक्तम्—
 “भूतियैषां क्रिया सैव, कारकं सैव चोच्यते” इत्यादि, तथा सर्व-
 पदार्थानां प्रतिक्षणमवस्थान्तरगमनात्सक्रियत्वमतोऽक्रिया न विद्यते,
 इत्येवं संज्ञां नो निवेशयेत्, किं तर्हि, अस्ति क्रिया अक्रिया चेत्येवं
 संज्ञां निवेशयेत्, तथाहि—शरीरात्मनोर्देशाद्देशान्तरावाप्तिर्निमित्ता,
 परिस्पन्दात्मिका क्रिया प्रत्यक्षेणैवोपलभ्यते, सर्वथा निष्क्रियत्वे
 चात्मनोऽभ्युपगम्यमाने गगनस्येव बन्धमोक्षाद्यभावः, स च दृष्टेष्ट-
 बाधितः, तथा शाक्यानामपि प्रतिक्षणोत्पत्तिरेव क्रियेत्यतः कथं
 क्रियाया अभावः ? अपि च—एकान्तेन क्रियाऽभावे संसारमोक्षा-

अथ स्वादित्यतोऽस्ति क्रिया, तद्विपक्षभूता चाक्रियेत्येवं संज्ञां निवेशयेदिति ॥ १६ ॥

तदेवं सक्रियात्प्रति सति क्रोधादिसद्भाव इत्येतद्वर्शयितुमाह—

मूलम्—एतत्थि क्रोहे व माणे वा, एवमं सन्नं निवेशय ।

अतत्थि क्रोहे व माणे वा एवमं सन्नं निवेशय ॥

एतत्थि माया व लोभे वा, एवमं सन्नं निवेशय ।

अतत्थि माया व लोभे वा, एवमं सन्नं निवेशय ॥

एतत्थि पेज्जे व दोसे वा, एवमं सन्नं निवेशय ।

अतत्थि पेज्जे व दोसे वा, एवमं सन्नं निवेशय ॥

—श्री मूयगडाङ्ग सूत्र ॥ २१, २२, २३ ॥

टीका—स्वपरात्मनोरप्रतीतिलक्षणः क्रोधः, स चानन्तानु-

बन्धप्रत्याख्यानप्रत्याख्यानवरणसंज्वलनभेदेन चतुर्धाऽऽगमे पश्यते, तथैतावद्भेद एव मानो गर्वः, एतौ द्वावपि 'न स्तो' न विद्यते तथाहि—क्रोधः केषाञ्चिन्मतेन मानांश एव अभिमानग्रह-गृहीतस्य तत्कृतावत्यन्तक्रोधोदयदर्शनात्, क्षणकश्रेण्यां च भेदेन क्षणान्तभ्युपगमात्, तथा क्रियमात्मधर्म आहोस्वित्कर्मणा उतान्यस्येति ? तत्रात्मधर्मत्वे सिद्धानामपि क्रोधोदयप्रसङ्गः, अथ कर्मणस्तत्तदन्त्यकषायोदयेऽपि तदुदयप्रसङ्गात् मूर्तत्वाच्च कर्मणो घटस्येव तदाकारोपलब्धिः स्यात् अन्यधर्मत्वे त्वकिञ्चित्करत्त्वमतो नास्ति क्रोध इत्येवं मानाभावोऽपि वाच्य इत्येवं संज्ञां नो निवेशयेत्, यतः कषायकर्मोदयवर्ती दष्टोष्ठः कृतभ्रुकुटी-

भङ्गो रक्तवदनो गलतवेदविन्दुसमाकुलः क्रोधाध्मातः समुपल-
भ्यते, न चासौ मानांशः, तत्कार्यकरणात् यथा परनिमित्तोत्था-
पितत्वाच्चेति, तथा जीवकर्मणोरुभयोरप्ययं धर्मः, तद्धर्मत्वे च
प्रत्येकविकल्पदोषानुपपत्तिः, अनभ्युपगान्, संसार्यात्मनां कर्मणा
साद्धं पृथग्भवनाभावात्तदुभयस्य च नरसिंहवद्वस्त्वन्नरत्वादित्यतो-
ऽस्ति क्रोधो मानश्चेत्येवं संज्ञां निवेशयेत् ॥ २० ॥ साम्प्रतं
मायालोभयोरस्तित्वं दर्शयितुमाह—अत्रापि प्राग्वन्मायाजोभयोर-
भाववादिनं निराकृत्यास्तित्वं प्रतिपादनीयमिति ॥ २१ ॥

साम्प्रतमेवमेव क्रोधादीनां समासेनास्तित्वं प्रतिपादयन्नाह—
प्रीतिलक्षणं प्रेम—पुत्रकलत्रधनधान्यात्मीयेषु रागस्तद्विपरीतत्वा-
त्मीयोपधातकारिणि द्वेषः, तावेतौ द्वावेपि न विद्येते, तथाहि—
केषाञ्चिदभिप्रायो यदुक्त—मायालोभावेवावयवौ विद्येते, न
तत्समुदायरूपो रागोऽवयव्यस्ति, तथा क्रोधमानावेव स्तः, न
तत्समुदायरूपोऽवयवी द्वेष इति, तथाहि—अवयवेभ्यो यद्यभिन्नो-
ऽवयवी तर्हि तदभेदात्त एव नासौ अथ भिन्नः पृथगुपलम्भः स्याद्
घटपटवदित्येवमसद्विकल्पमूढतया नो संज्ञां निवेशयेत्, यतोऽवय-
वावयविनोः कथञ्चिद्भेद इत्येवं भेदाभेदाख्यतृतीयपक्षसमाश्र-
णात्प्रत्येकपक्षाश्रितदोषानुपपत्तिरिति, एवं चास्ति प्रीतिलक्षणं
प्रेमाप्रीतिलक्षणश्च द्वेष इत्येवं संज्ञां निवेशयेत् ॥ २२ ॥

साम्प्रतं कषायसद्भावे सिद्धे सति तत्कार्यभूतोऽवश्यभावी
संसारसद्भाव इत्येतत्प्रतिषेधनिषेधद्वारेण प्रतिपादयितुमाह—

मूलम्—अथि चाउरंते संसारे, शेवं सन्नं निवेसए ।
 अथि चाउरंते संसारे, एवं सन्नं निवेसए ॥
 अथि देवो व देवी वा, शेवं सन्नं निवेसए ।
 अथि देवो व देवी वा एवं सन्नं निवेसए ॥

—श्री सूयगडाङ्ग सूत्र ॥ २१२३, २४ ॥

टीका—चत्वारोऽन्ता—गतिभेदा नरकतिर्यङ्मनुरामर-

लक्षणा यस्य संसारस्यासौ चतुरन्तः संसार एव कान्तारो भयैकहेतु-
 त्वान्, स च चतुर्विधोऽपि न विद्यते, अपितु सर्वेषां संसृतिरूप-
 त्वात्कर्मबन्धात्मकतया च दुःखैकहेतुत्वादेकविध एव, अथवा
 नारकदेवयोरनुपलभ्यमानत्वात्तिर्यङ्मनुष्ययोरेव सुखदुःखोत्कर्षतया
 तद्व्यवस्थानाद् द्विविधः संसारः पर्यायनयाश्रयणात्त्वनेकविधः
 अतश्चातुर्विध्यं न कथञ्चिद् घटत इत्येवं संज्ञां नो निवेशयेद्,
 अपितु अस्ति चतुरन्तः संसार इत्येवं संज्ञां निवेशयेत् ।
 यत्तूक्तम्—एकविधः संसारः तन्नोपपद्यतं यतोऽध्यक्षेण तिर्यङ्मनुष्य-
 योर्भेदः समुपलभ्यते, न चासावेकविधत्वे संसारस्य घटते, तथा
 संभवानुमानेन नारकदेवानामप्यस्तित्वाभ्युपगमाद् द्वैविध्यमपि
 न विद्यते, संभवानुमानं तु—सन्ति पुण्यपापयोः प्रकृष्टफलभुजः,
 तन्मध्यफलभुजां तिर्यङ्मनुष्याणां दर्शनाद्, अतः सम्भाव्यन्ते
 प्रकृष्टफलभुजो, ज्योतिषां प्रत्यक्षेणैव दर्शनाद्, अथ तद्विमानाना-
 मुपलम्भः, एवमपि तदधिष्ठातृभिः कैश्चिद्भक्तित्वमित्यनुमानेन

गम्यन्ते, ग्रहगृहीतवरप्रदानादिना च तदस्तित्वानुमितिः, तद-
स्तित्वे तु प्रकृष्टपुण्यफलभुज इव प्रकृष्टपापफलभुग्निरपि भाव्य-
मित्यतोऽस्ति चातुर्विध्यं संसारस्य पर्यायनयाश्रयणे तु यदनेकविध-
त्वमुच्यते तदयुक्तं, यतः सप्तप्रथिव्याश्रिता अपि नारकाः
समानजातीयाश्रयणदेकप्रकारा एव, तथा तिर्यञ्चोऽपि
प्रथिव्यादयः स्थावरास्तथा द्वित्रिचतुःपञ्चेन्द्रियाश्च द्विषष्टि-
योनिक्षप्रमाणाः सर्वेऽप्येकविधा एव, तथा मनुष्या अपि कर्म-
भूमिजाकर्मभूमिजान्तरद्वीपकर्ममूर्च्छनजात्मकभेदमनादृत्यैकविध-
त्वेनैवाश्रिताः तथा देवा अपि भवनपतिव्यन्तरज्योतिष्क-
वैमानिकभेदेन भिन्ना एकविधत्वेनैव गृहीताः, तदेवं सामान्य-
विशेषाश्रयणाच्चातुर्विध्यं संसारस्य व्यवस्थितं नैकविधत्वं,
संसारवैचित्र्यदर्शनात्, नाप्यनेकविधत्वं सर्वेषां नारकादीनां
स्वजात्यनतिक्रमादिति ॥ २३ ॥ २४ ॥

सर्वभावनां सप्रतिपक्षत्वात्संसारसद्भावे सति अवश्यं
तद्विमुक्तिक्षणया सिद्ध्यापि भवितव्यमित्यतोऽधुना सप्रतिपक्षां
सिद्धिं दर्शयितुमाह—

मूलम्—एतत्सिद्धिं अमिद्धिं वा, एवमसन्नं निवेसण ।

अत्तिं सिद्धिं असिद्धिं वा, एवमसन्नं निवेसण ॥

एतत्सिद्धिं नियं ठाणं, एवमसन्नं निवेसण ।

अत्तिं सिद्धिं नियं ठाणं, एवमसन्नं निवेसण ॥

—श्री सूयगडाङ्ग सूत्र २५/२५, २६ ॥

टीका—सिद्धिः अशेषकर्मच्युतिलक्षणा तद्विपर्ययस्या
चासिद्धिर्नास्तीत्येवं नो संज्ञां निवेशयेद्, अपि त्वसिद्धेः—संसार-
लक्षणायाश्चातुर्विध्येनानन्तरमेव प्रसाधिताया अविगानेनास्तित्वं
प्रसिद्धं, तद्विपर्ययेण सिद्धेरप्यस्तित्वमनिवारितमित्यतोऽस्ति
सिद्धिरसिद्धिर्वेत्येवं संज्ञां निवेशयेदिति स्थितम्, इदमुक्तं
भवति—सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्र्यात्मकस्य मोक्षमार्गस्य सद्भावा-
त्कर्मक्षयस्य च पीडोपशमादिनाऽध्यक्षेण दर्शनादनः कस्यचिदा-
त्यन्तिककर्महानिसिद्धेरस्ति सिद्धिरिति, तथा चोक्तम्—
“दोषावरणयोर्द्वानिर्निरोधाऽस्यतिग्रायिनी । स्वचिग्रथा
स्वहेतुभ्यो, बहिरन्तर्मेकक्षयः ॥ १ ॥” इत्यादि, एवं सर्वज्ञसद्भावो-
ऽपि संभवानुमानाद्बुद्धव्ययः, तथाहि—अभ्यस्यमानायाः प्रज्ञायाः
व्याकरणादि[ना]शास्त्रसंस्कारेणोत्तरोत्तरवृद्ध्या प्रज्ञातिशयो
दृष्टः, तत्र कस्यचिदत्यन्तातिशयप्राप्तेः सर्वज्ञत्वं स्यादिति
संभवानुमानं, न चैतदाशङ्कनीयम्, तद्यथा—ताप्यमानमुदकम-
त्यन्तोष्णतामियाग्निनाद्भवेत्, तथा “दशहस्तान्तरं व्योम्नि यो
नामोत्प्लुत्य गच्छति । न योजनमस्मै गन्तुं शक्तोऽभ्यासशतैरपि
॥ १ ॥” इति, दृष्टान्तदर्शान्तयोरसम्भवात्, तथाहि—ताप्यमानं
जलं प्रतिकूलं क्षयं गच्छेत् प्रज्ञा तु चिद्वर्ते, यदिवा प्लोषोपज्जवे-
रव्याहृतमग्नित्वं, तथा प्लव्नविषयेऽपि पूर्वमर्थादाया अनति-
क्रमाद्योजनोत्प्लवनाभावः, तत्पारित्यगो चोत्तरोत्तरं वृद्ध्या

प्रज्ञाप्रकर्षगमनवद्योजनशतमपि गच्छेदित्यतो दृष्टान्तदार्ष्टान्तिक-
योरसाम्यादेतन्नाशंकनीयमिति स्थितम्, प्रज्ञावृद्धेश्च बाधक-
प्रमाणाभावादस्ति सर्वज्ञत्वप्राप्तिरिति । यदिवा अञ्जनभृतसम-
द्रकदृष्टान्तेन जीवकुलत्वाज्जगतो हिंसाया दुर्निवारत्वात्सिद्ध्या-
भावः, तथा चोक्तम्—

“जले जीवाः स्थले जीवा, आकाशे जीवमालिनि ।

जीवमालाकुले लोके, कथं भिन्नुरहिसकः ? ॥ १ ॥”

इत्यादि, तदेवं सर्वस्यैव हिंसकत्वात्सिद्धयभाव इति, तदेतद-
युक्तं, तथाहि—सदोपयुक्तस्य पिहिताश्रवद्वारस्य पंचसमिति-
समितस्य त्रिगुप्तिगुप्तस्य सर्वथा निरवद्यानुष्ठायिनो द्विचत्वारिंश-
दोषरहितभिन्नाभुज ईर्यासमितस्य कदंचिद्द्रव्यतः प्राणिव्यपरोप-
णोऽपि तत्कृतबन्धाभावः, सर्वथा तस्यानवद्यत्वात्, तथा चोक्तम्—
“उच्चालियंमि पाए” इत्यादि प्रतीतं, तदेवं कर्मभावत्सिद्ध-
सद्भावोऽव्याहतः, सामप्रत्यभावादसिद्धिसद्भावोऽपीति ॥ २५ ॥
साम्प्रतं सिद्धानां स्थाननिरूपणायाह—‘एतत्थि सिद्धी’ इत्यादि
सिद्धेः—अशेषकर्मच्युतिलक्षणाया निजं स्थानं—ईषत्प्राग्भाराख्यं
व्यवहास्तो, निश्चयस्तु तदुपरि योजनक्रोशषड्भागः, तत्प्रतिषादक-
प्रमाणाभावात्स नास्तीत्येवं संज्ञां नो निवेशयेत्, यतो बाधक-
प्रमाणाभावात् साधकस्य चागमस्य सद्भावात्तत्सत्ता दुर्निवार्येति ।
अत्रिच—अवगता शेषकल्पषाणां सिद्धानां केनचित्त्रिशिष्टेन
स्थानेन भाव्यम्, तच्चतुर्दशरज्ज्वात्मकस्य लोकस्याग्रभूतं

द्रष्टव्यं, न च शक्यते वक्तुमाकाशवत्सर्वव्यापिनः सिद्धा इति,
 तस्याकाशमात्ररूपत्वात् लोकमात्रव्यापित्वमपि नास्ति, विकल्पानु-
 पपत्तेः, तथाहि—सिद्धावस्थायां तेषां व्यापित्वमभ्युपगतमुत
 प्रागपि ?, न तावत्सिद्धावस्थायां, तद्व्यापित्वभवने निमित्ता-
 भावात्, नापि प्रागवस्थायां, तद्भावे सर्वसंसारिणां प्रतिनियत-
 सुखदुःखानुभवो न स्यात्, न च शरीराद्वहिरवस्थितमवस्थान-
 मस्ति, तत्सत्तानिबन्धनस्य प्रमाणस्याभावात्, अतः सर्वव्यापित्वं
 विचार्यमाणं न कथञ्चिद् घटते, तद्भावे च लोकाग्रमेव
 सिद्धानां स्थानं, तद्वतिश्च 'कर्मविमुक्तस्योर्ध्वं गति' रितिकृत्वा
 भवति तथा चोक्तम्—

“लाङ् एरंडफले अङ्गी धूमे य उषु धणुविमुक्के ।

गङ् पुष्पपञ्चोगैरां एवं सिद्धाणवि गङ्गो ॥ १ ॥”

इत्यादि । तदेवमस्ति सिद्धिस्तस्याश्च निर्जं स्थानमित्येवं संज्ञां
 निवेशयेदिति ॥ २६ ॥

साम्प्रतं सिद्धेः साधकानां साधूनां तत्प्रतिपक्षभूतानाम-
 साधूनां चास्तित्वं प्रतिपादयिषुः पूर्वपक्षमाह—

मूलम्—अस्थिं साहू असाहू वा, एवं सन्नं निवेशे ॥

अस्थिं साहू असाहू वा, एवं सन्नं निवेशे ॥

अस्थि कल्हाण पावे वा, शेषं सन्नं निवेशे ।

अस्थि कल्हाण पावे वा, एवं सन्नं निवेशे ॥

—श्री नृयगडाङ्ग सूत्र रा१२७, २८ ॥

टीका—‘नास्ति’ न विद्यते ज्ञानदर्शनचारित्रक्रियोपेतो

मोक्षमार्गव्यवस्थितः साधुः, सम्पूर्णस्य रत्नत्रयानुष्ठानस्या-
भावात्, तदभावाच्च तत्प्रतिपक्षत्वादेतद्व्यवस्थानस्यैकतराभावे
द्वितीयस्याप्यभाव इत्येवं संज्ञां नो निवेशयेत्, अपि तु अस्ति
साधुः, सिद्धेः प्राक्संयुतत्वात्, सिद्धिसत्ता च न साधुमन्तरण,
अतः साधुः सिद्धिः तत्प्रतिपक्षभूतस्य चासाधोरिति । यश्च
सम्पूर्णरत्नत्रयानुष्ठानाभावः प्रागाशङ्कितः स सिद्धान्ताभिप्राय-
मनुद्धवैव, तथाहि—सम्यग्दृष्टेरुपयुक्तस्य सत्संयमवतः श्रुतानुसारेणा-
ऽऽहारादिकं शुद्धदुद्ध्या गृह्यतः कचिदज्ञानादनेषणीयग्रहण-
सम्भवेऽपि संततोपयुक्ततया सम्पूर्णमेव रत्नत्रयानुष्ठानमिति,
यश्च भक्ष्यमिदमिदं चाभक्ष्यं गम्यमिदमिदं चागम्यं प्रासुकमेषणी-
यमिदमिदं च विपरीतमित्येवं रागद्वेषसंभवेन समभाव-
रूपस्य सामयिकस्याभावः कैश्चिच्चोच्यते तत्तेषां चोदनमज्ञान-
विजृम्भणात्, तथाहि—न तेषां सामायिकवतां साधूनां रागद्वेष-
तया भक्ष्याभक्ष्यादिविवेकः अपितु प्रधानमोक्षाङ्गस्य सच्चा-
रित्रस्य साधनार्थम्, अपि च—उपकारापकारयोः समभावतया
सामायिकं न पुनर्भक्ष्याभक्ष्ययोः समप्रवृत्त्येति ॥ २७ ॥ तदेवं मुक्ति-

मार्गप्रवृत्तस्य साधुत्वमितरस्य चासाधुत्वं प्रदर्श्याधुना च सामान्येन कल्याणपापवतोः सद्भावं प्रतिषेधनिषेधद्वारेणाह—‘एस्थि कल्याण पावे वा’ इत्यादि, यथेष्टार्थफलसम्प्राप्तिः कल्याणं तन्न विद्यते, सर्वाशुचितया निरात्मकत्वाच्च सर्वपदार्थानां बौद्धाभिप्रायेण, तथा तदभावे कल्याणवांश्च न कश्चिद्विद्यते, तथाऽऽत्माद्वैतवाद्यभिप्रायेण ‘पुरुष एवेदं सर्व’ मिति कृत्वा पापं पापवान् वा न कश्चिद् विद्यते तदेवमभयोरप्यभावः, तथा चोक्तम्—

“विद्याविनयसम्पन्ने, ब्राह्मणे गवि हस्तिनि ।

शुनि चैव श्वपाके च, पण्डिताः समदर्शिनः ॥ १ ॥”

इत्येवमेव कल्याणपापकाभावरूपां संज्ञां नो निवेशयेद्, अथि त्वस्ति कल्याणं कल्याणवांश्च विद्यते, तद्विपर्यस्तं पापं तद्वांश्च विद्यते, इत्येवं संज्ञां निवेशयेत्, तथाहि—चैकान्तेन कल्याणाभावो यो बौद्धैरभिहितः, सर्वपदार्थानामशुचित्वासम्भवात्, सर्वाशुचित्वे च बुद्धस्याप्यशुचित्वप्राप्तेः, नापि निरात्मानः स्वद्रव्यक्षेत्रकालभावापेक्षया सर्वपदार्थानां विद्यमानत्वात् परद्रव्यादिभिस्तु न विद्यन्ते, सदसदात्मकत्वाद्वस्तुनः तदुक्तम्—“स्वपरसत्ताव्युदासोपादानापाद्यं हि वस्तुनो वस्तुत्व” मिति तथाऽऽत्माद्वैतभावाभावात्पाषाभावोऽपि नास्ति, अद्वैतभावे हि सुखी दुःखी सारोगो नीरोगः सुरूपः कुरूपो दुर्भगः सुभगोऽर्थवान् दरिद्रस्तथाऽयमन्तिकोऽयं तु दवीयान् इत्येवमादिको जगद्वैचित्र्यभावोऽध्यक्षसिद्धो-

ऽपि न स्यात् । यच्च समदर्शित्वमुच्यते ब्राह्मणचाण्डालादिषु तदपि समानपीडोत्पादनतो द्रष्टव्यं न पुनः कर्मापादितवैचित्र्य-भावोऽपि तेषां ब्राह्मणचाण्डालादीनां नास्तीति, तदेवं कथंचि-त्कल्याणमस्ति तद्विपर्यस्तं तु पापकमिति । न चैकान्तेन कल्याणं कल्याणमेव, यतः केवलिनां प्रक्षीणघनघातिकर्मचतुष्टयानां सातासातोदयसद्भावात्तथा नारकाणामपि पंचेन्द्रियत्वविशिष्ट-ज्ञानादिसद्भावाच्चैकान्तेन तेऽपि पापवन्त इति तस्मात्कश्चित्क-ल्याणं कश्चित्पापमिति स्थितम् ॥ २८ ॥

तदेवं कल्याणपापयोरनेकान्तरूपत्वं प्रसाध्यैकान्तं दूषयितुमाह—

मूलम्—कल्लाणे वावए वावि, ववहारो ण विज्जइ ।
जं वेरं तं न जाणन्ति, समणा बाल पंडिया ॥
असेसं अक्खयं वावि, सच्चदुक्खेति वा पुणो ।
वज्झा पाणा न वज्झत्ति, इति वायं न नीसरे ॥
दीसंति समियायारा, भिक्खुणो साहुजीविणो ।
एए मिच्छोवजीवंति, इति दिट्ठिं न धारए ॥

—श्री सूयगढाङ्ग सूत्र २।५।२६, ३०, ३१ ॥

टीका—कल्यं—सुखमारोग्यं शोभनत्वं वा तद्वर्णयतीति कल्याणं तदस्यास्तीति कल्याणो मत्वर्थीयाच्प्रत्ययान्तोऽर्शआदिभ्योऽजित्यनेन, कल्याणवानिति यावत् । एवं पापकशब्दोऽपि मत्वर्थीयाच्प्रत्ययान्तो द्रष्टव्यः । तदेवं सर्वथा कल्याणवानेवायं तथा पापवानेवायमित्येवंभूतो

व्यवहारो न विद्यते, तदेकान्तभूतस्यैवाभावात्, तदभावस्य च सर्ववस्तूनामनेकान्ताश्रयेण प्राक्प्रसाधितत्वादिति । एतच्च व्यवहाराभावाश्रयणं सर्वत्र प्रागपि योजनीयम्, तद्यथा—सर्वत्र वीर्यमस्ति नास्ति वा सर्वत्रवीर्यमित्येवंभूत एकान्तिको व्यवहारो न विद्यते, तथा नास्ति लोकोऽलोको वा तथा न सन्ति जीवा अजीवा इति चेत्येवंभूतो व्यवहारो न विद्यत इति सर्वत्र सम्बन्धनीयम् । तथा वैरं—प्रज्जं तद्वत्कर्म वैरं विरोधो वा वैरं तद्येन परोपघातादिनैकान्तपक्षसमाश्रयणेन वा भवति ततो 'श्रमणा' तीर्थिका बाला इव रागद्वेषकलिताः 'पण्डिताः' पण्डिताभिमानिनः शुक्लकर्कदुर्पाधमाता न जानन्ति, परमार्थभूतस्याहिंसा लक्षणस्य धर्मस्यानेकान्तपक्षस्य वाऽनाश्रयणादिति । यदिवा यद्वैरं तत्ते श्रमणा बालाः पण्डिता वा न जानन्तीत्येवं वाचं न निसृजेदित्युत्तरेण सम्बन्धः, किमिति न निसृजेत् ? यतस्तेऽपि किञ्चिज्जानन्त्येव । अपि च तेषां तन्निमित्तकोपोत्पन्नोः, यच्चैवंभूतं वचस्तन्न वाच्यं, यत् उक्तम्—“अप्पत्तियं जेण सिया, आसु कुप्पिज्ज वा परो । सव्वसो तं ण भासेज्जा, भासं अहियगामिणिं ॥ १ ॥” इत्यादि ॥ २६ ॥

अपरमपि वाक्संयममधिकृत्याह—“असेस” मित्यादि, अशेषं कृत्स्नं तत्सांख्याभिप्रायेण अक्षतं नित्यमित्येवं न ब्रूयात्, प्रत्यर्थं प्रतिसमर्थं चान्यथाऽन्यथाभावदर्शनात् स एवायमित्येवंभूतस्यैकत्वसाधकस्य प्रत्यभिज्ञानस्य लूनयुतजानेषु केरानखादि-

अपि प्रदर्शनात्, तथा अपिशब्दादेकान्तेन क्षणिकमित्येवमपि वाचं न निस्तृजेत्, सर्वथा क्षणिकत्वे पूर्वस्य सर्वथा विनष्टत्वादुत्तरस्य निर्हेतुक उत्पादः स्यात्, तथा च सति 'नित्यं सत्त्वमसत्त्वं वाऽहेतोस्तन्यानपेक्षणा' इति । तथा सर्वं जगद्दुःखात्मकमित्येवमपि न ब्रूयात् सुखात्मकस्यापि सम्यग्दर्शनादिभावेन दर्शनात् तथा चोक्तम्—“तणसंधारनिसण्णोऽपि मुणिवरो भट्टरागमय-मोहो । जं पावइ मुत्तिसुहं कत्तो तं चक्खवीवि ? ॥ १॥ ” इत्यादि तथा बव्याश्चौरपारदारिकादयोऽबव्या वा तत्कर्मानुमतिप्रसङ्गादित्येवंमूर्ता वाचं स्वानुष्ठानपरायणः साधुः परव्यापारनिरपेक्षो न निस्तृजेत्, तथाहि सिंहव्याघ्रमार्जारदीन्परसत्त्वव्यापादनपरायणान् दृष्ट्वा माध्यस्थ्यमवलम्बयेत्, तथा चोक्तम्—“मैत्रीप्रमोदकारण्य-माध्यस्थ्यानि सत्त्वगुणाधिकक्लिश्यमानाविनेयेष्विति,” (तत्त्वा० अ०७, सू०६) एवमन्योऽपि वाक्संयमो द्रष्टव्यः तद्यथा—अमी गवादयो बाह्या न बाह्या वा तथाऽमी वृक्षादयश्छेद्या न छेद्या वेत्यादिकं वचो न वाच्यं साधुनेति ॥ ३०॥ अयमपरो वाक्संयमप्रकारोऽन्तःकरणशुद्धिसमाश्रितः प्रदर्श्यते—‘दीसन्ती’ त्यादि, ‘दृश्यन्ते’ समुपलभ्यन्ते स्वशास्त्रोक्तेन विधिना निभृतः—संयत आत्मा येषां ते निभृतात्मानः कचित्पाठः ‘समियाचार’ इति सम्यक्—स्वशास्त्र-विहितानुष्ठानादविपरीत आचारः—अनष्टानं येषां ते सम्यगाचाराः, सम्यग्वा—इतो व्यवस्थित आचारी येषां ते समिताचाराः, के ते ?—भिक्षणशीला भिक्षवो भिक्षामात्रवृत्तयः, तथा साधुना विधिना जीवितुं शीलं येषां ते साधुजीविनः, तथा हि—ते न कस्यचिदुपरोधविधानेन जीवन्ति तथा क्षान्ता दान्ता

जितक्रोधाः सत्यसंधा इदमवता युगान्तरमात्रहन्तः परिमितोदक-
पायिनो मौनिनः सदा तायिनो विविक्तैकान्तध्यानाध्यासिन-
अमौक्त्यव्यास्तानेवंभूतानवधार्यापि 'सरागा अपि वीतरागा इव
चेष्टन्ते' इति मत्त्वैते मिथ्यात्वोपजीविन इत्येवं दृष्टिं न धारयेत्—
नैवंभूतमध्यवसायं कुर्यान्नप्येवंभूतां वार्चं निसृजेद् यथैते मि-
थ्योपचारप्रवृत्ता मायाविन इति, छद्मस्येन छद्मगद्गिशिनैवंभूतस्य
निश्चयश्च कर्तुमशक्यत्वादित्यभिप्रायः, ते च स्वयूथ्या वा भवे-
युस्तीर्थान्तरीया वा तावुभावपि न वक्तव्यो साधुना यत उक्तम्—
“यावत्परगुणपरदोषकीर्तने व्याघृतं मनो भवति । तावद्धरं
विशुद्धे ध्याने व्यग्रं मनः कर्तुम् ॥ १॥ ” इत्यादि ॥ ३१ ॥
किञ्च न्यत—

मृतम्-दक्षिणाए पडिलभो अतिथि वा णतिथि वा पुणो ।
न विथागरेज्ज मेधावी संतिमग्गं च बूहए ।
इच्छेएहिं ठाणेहिं, जिणदिद्वेहिं संजए ।
धारयन्ते उ अप्पाणं, आमोक्खाए परिवएज्जासि ॥

चि वेमि ॥

—श्री सूर्यगङ्गा सूत्र २।१।२२, २३ ॥

टीका—दानं दक्षिणा तस्याः प्रतिलभः—प्राप्तिः स दान-
लाभोऽस्माद्गृहस्थादेः सकाशादस्ति नास्ति वेत्येवं न व्यागृणीयात्
मेधावी—नर्यादाव्यवस्थितः । यदिवा स्वयूथ्यस्य तीर्थान्तरीयस्य
वा दानं ग्रहणं वा प्राप्तिं यो लाभः स एकास्तेनास्ति संभवति

नास्ति वेत्येवं न ब्रूयादेकान्तेन. तद्दानप्रवृत्तिनिषेधे दोषोत्पत्ति-
सम्भवात्. तथाहि तद्दाननिषेधेऽन्तरायसंभवस्तद्वैचित्र्यं च,
तद्दानानुमतावश्यकतरणोद्भव इत्यतोऽस्त दानं नास्ति वेत्येवमेका-
न्तेन न ब्रूयात्. कथं तर्हि ब्रूयादिति दर्शयान्ति—शान्तिः—
मोक्षस्तस्य मार्गः—संयमदर्शनज्ञानचारित्र्यात्मकस्तमुपवृद्धयेद्
वर्धयेत्. यथा मोक्षमार्गाभिवृद्धिर्भवति तथा ब्रूयादित्यर्थः,
एतदुक्तं भवति पृष्ठः केनचिद्विधिव्रतपेधमन्तरेण देयप्रतिग्राहक-
विषयं निरवग्रमेव ब्रूयादित्येवमादिकमन्यद् यं विविधधर्मदेशनाव-
सरे वाच्यं. तथा चोक्तम्—सावजाणवजाणं वयणाणं ज्ञो न
जाणइ धिसेल” इत्यादि साम्प्रतमध्ययनार्थमुपसंजिघृक्षुराह—
‘इच्च’ ‘एहि’, मित्यादि, इत्ये तैरेकान्तनिषेधद्वारेणानेकान्तविधायिभिः
स्थानैर्वाक्यमप्रधानैः समस्ताध्ययनोक्तै रागद्वेषरहितैर्जिनैर्दृष्टैः
—उपलब्धैर्न स्वमतिर्विकल्पोत्थापितैः संयत —सत्संयमवानात्मा-
नं धारयन्—एभिः स्थानैरात्मानं वर्तयन्नामोक्षाय—अशेषकम-
क्षयाख्यं मोक्षं यावत्परिः—समन्तात्संयमालुष्ठाने ब्रजेः गच्छे-
स्त्वमिति विधेयस्योपदेशः । इति परिसमाप्त्यर्थे, ब्रवीमीति पूर्ववत् ।
नया अभिहिताः अभिधास्यमानलक्षणाश्चेति ॥ ३३ ॥



श्री ठाणांग सूत्र

मृतम्-जदत्थि णं लोणे तं सव्वं दुपओआरं तंजहा—
जावच्चेव अजीवच्चेव । तसे चेव थावरे चेव १,
सजाणियच्चेव अजोणियच्चेव २, साउयच्चेव
अणाउयच्चेव ३, सडंदिउयच्चेव, अणिदिण्च्चेव ४,
सवेयगा चेव, अवेयगा चेव ५, सरूवि चेव
अरूवि चेव ६, सपोगत्ता चेव अपोगत्ता चेव ७,
संसारसमावत्तगा चेव असंसारसमावत्तगा चेव ८,
सासया चेव असासया चेव ९ ॥

—श्री स्थानाङ्ग सूत्र स्थान २ उद्देश १ सूत्र ५७ ॥

टीका—अस्य च पूर्वसूत्रेण सहायं सम्बन्धः—पूर्वं ह्युक्तम्

‘एक गुणरूक्षाः पुद्गलाः अनन्ताः’ तत्र किमनेकगुणरूक्षा अपि
पुद्गलाः भवन्ति चेन ते एकगुणा रूक्षतया विशिष्यन्त इति ?
उच्यते, भवन्त्येव, यतो ‘जदत्थी’ त्यादि, परम्परसूत्रसम्बन्धस्तु—
‘श्रुतं मयाऽऽयुष्यमता भगवतैवमाख्यातमेक आत्मे’ त्यादि, तथे-
दमपरमाख्यातं ‘जदत्थी’ त्यादि, संहितादिचर्चः पूववत्,
‘यद्’ जीवादिकं वस्तु ‘अस्ति’ विद्यते, एमितिवाक्यालंकारे, क्व-
चित्पाठो ‘जदत्थि’ चर्णेत, तत्रानुस्वार आगासिकअशब्दः पुनरर्थः

एवं चास्य प्रयोगः—अस्त्यात्मादिवस्तु, पूर्वाध्ययनप्ररूपितत्वात् ,
यच्चास्ति 'लोके' पञ्चास्तिकायात्मके लोक्यते—प्रमीयत इति
लोक इति व्युत्पत्त्या लोकालोकरूपे वा तन् 'सर्व' निरवशेषं द्वयोः
पदयोः—स्थानयोः प नृयोर्विगतिरप्यस्तुनद्विपदप्रयोजन एयोरवतारो
यस्य तन् द्विपदावतारमिति, 'दुपडोयारं' ति क्वचिन् पठ्यते,
तत्र द्वयोः प्रत्यवतारो यस्य तन् द्विप्रत्यवतारमिति, स्वरूपवन् प्रति-
पक्षवच्चेत्यर्थः, 'तद्यथे' त्युदाहरणोपन्यासे, जीवच्चेव अजीव-
च्चेति, जीवाश्चैवाजीवाश्चैव, प्राकृतत्वात् संयुक्तपरत्वेन ह्रस्वः,
चकारौ सञ्चयायौ, एवकाराववधारणे, तेन च राश्यन्तरापोह-
माह, नो जीवाख्यं राश्यन्तरमस्तीति चेत्, नैवम्, सर्वानिषेधकत्वे
नोशब्दस्य नोजीवशब्देनाजीव एव प्रतीयते, देशनिषेधकत्वे तु
जीवदेश एव प्रतीयते, न च देशो देशिनोऽत्यन्तव्यतिरिक्त इति
जीव एवासाविति, 'अचेय' इति वा एवकारार्थः 'चिय चैय एवार्थ'
इति वचनात्, ततश्च जीवा एवेति विवक्षितवस्तु अजीवा एवेति
च तत्प्रतिपक्ष इति, एवं सर्वत्र, अथवा 'यदस्ति' अस्तीति यत्
सन्मात्रं यदित्यर्थः तद् द्विपदावतारं—द्विविधं, जीवाजीवभेदा-
दिति, शेषं तथैव । अथ त्रसेत्यादिकया नवसूत्र्या जीवतत्त्वस्यैव
भेदान् संप्रतिपक्षानुपदर्शयति—'तसे चेवे' त्यादि, तत्र त्रस-
नामकर्मोदयस्त्रस्यन्तीति त्रसाः—द्वीन्द्रियादयः स्थावरनामकर्मो-
दयात् तिष्ठन्तीत्येवंशीलाः स्थावराः—पृथिव्यादयः, सह योन्या-
उत्पत्तिस्थानेन सयोनिकाः—संसारिणस्तद्विपर्यासभूताः अयोनि-
का—सिद्धाः, सहायुषा वर्तन्ते इति सायुषस्तदन्येऽनायुषः—
सिद्धाः, एवं सेन्द्रियाः—संसारिणः, अनिन्द्रियाः—सिद्धादयः,

सवेदकाः—स्त्रीवेदाद्युदयवन्तः, अवेदकाः सिद्धादयः, सहरूपेण —
मूर्त्या वर्तन्त इति समासान्ते इन्द्रप्रत्यये सति सारूपिणः संस्थान-
वर्णादिमन्तः सशरीरा इत्यर्थः न रूपिणो अरूपिणो—मुक्ता
सपुद्गलाः कर्मादिपुद्गलवन्तो जीवाः अपुद्गलाः—सिद्धाः संसारं भवं
समापन्नकाः—आश्रिताः संसारसमापन्नकाः—संसारिणः,
तदितरे सिद्धाः शाश्वताः—सिद्धा जन्ममरणादिरहितत्वात्,
अशाश्वताः—संसारिणस्तच्चुक्त्वादिति ॥

एवं जीवतत्त्वस्य द्विषावतारं निरूप्याजीवतत्त्वस्य तं
निरूपयन्नाह—

मूलम्-अग्निं गासा चैव, नो अग्निं गासा चैव ।

धर्मे चैव अधर्मे चैव ॥ (सूत्र ५८)

बन्धे चैव, मोक्षे चैव १ पुन्ने चैव पापे चैव ॥ २ ॥

आसवे चैव संवरे चैव ॥ ३ ॥

वेयणा चैव निज्जरा चैव ॥ ४ ॥ (सूत्र ५९)

—श्री स्थानाङ्ग सूत्र स्थान २ उद्देश १ ॥

टीका—आकाशं व्योम नोआकाशं—तदन्यद्वर्मास्तिकायादि,

धर्मः—धर्मास्तिकायो गत्युपष्टम्भगुणः तदन्योऽधर्म—अधर्मास्ति-
कायः स्थित्युपष्टम्भगुणः । सविपक्षकधादितत्त्वसूत्राणि चत्वारि
प्राग्वदिति ।

मूलम्-सत्त मूलनयां प० त०—नेगमे संगहे बबहारे

उज्जुमुते सदे सममिरुढे एवंभूते ॥

—श्री स्थानाङ्ग सूत्र स्थान ७, उद्देश ३, सूत्र ५५२ ॥

टीका—‘सत्त मूले’त्यादि, मूलभूता नया मूलनयाः, ते च सप्त
उत्तरनया हि सप्तशतानि, यदाह—‘एकैको य सयवेहो
सत्तनयसया इवन्ति एवं तु । अन्नोऽवि यः आसो पंचेव सया
नयाणं तु ॥१॥’ [एकैकः शतविधः एवं सप्तनयशतानि भवन्ति
अन्योऽपि चादेशो नयानां पंचैव शतानि ॥१॥] तथा—‘जावइया
वयणपहा तावइया चेव हुंति नयवाया । जावइया नयवाया तावइया
चेव परसमय ॥२॥’ त्ति, [यावन्तो वचनपन्थानः तावन्तश्चैव
भवन्ति नयवादाः यावन्तो नयवादास्तावन्तश्चैव परसमया
इति ॥ १ ॥] तत्रानन्तधर्माध्यासिते वस्तुन्येकधर्मसमर्थनप्रवणो
बोधविशेषो नय इति, तत्र ‘रोगमे’ त्ति नैकैर्मानैर्महासत्तासामान्य-
विशेषविशेषज्ञानैर्मिमीते मिनोति वा नैकमः, आह च—‘रोगाई
माणाइ’ सामन्नोभयविसेसनाणाइ’ । जं तेहिं मिणइ तो रोगमा
णयो रोगमाणोत्ति ॥ १ ॥’ [नैकानि भानानि सामान्योभय-
विशेषज्ञानानि यत्तैर्मिनोति ततो नैगमो नयो नैकमान इति ॥१॥]
इति निगमेषु वा-अर्थबोधेषु कुशलो भवो वा नैगमः, अथवा
नैके गमाः—पन्थानो यस्य स नैकगमः, आह च—‘लोगत्य-
निबोहा वा निगमा तेसु कुसलो भवो वाऽयं । अहवा जं रोगगमो
रोगपहा रोगमो तेणं ॥ १ ॥’ इति ॥ [लोकार्थनिबोधा वा निग-
मास्तेषु कुशलो भवो वाऽयं । अथवा यत् नैकगमोऽनेकपयो
नैगमस्तेन ॥ १ ॥] तत्रायं सर्वत्र सदित्येवमनुगताकारावबोधहेतु-
भूतां महासत्तामिच्छति अनुवृत्तव्यावृत्तावबोधहेतुभूतं च सामान्य-

विशेषं द्रव्यत्वादि व्यावृत्तावबोधहेतुभूतं च नित्यद्रव्यवृत्तिमन्त्यं विशेषमिति, आह—इत्थं तर्ह्ययं नैगमः सम्यग्दृष्टिरेवास्तु सामान्यविशेषाभ्युपगमपरत्वात् साधुवदिति, नैतदेवं, सामान्यविशेषवस्तूनामत्यन्तभेदाभ्युपगमपरत्वात्तस्येति, आह च भाष्यकारः—“जं सामन्नविसेसे परोष्परं वत्थुओ य सो भिन्ने । मन्नइ अच्चंतमओ मिच्छादिट्ठी कणादोव्व ॥ १ ॥ दोहिवि नएहि नीयं सत्थमुलूएण तहवि मिच्छत्तं । जं सविसयपहाणत्तणेण अन्नोन्ननिरवेक्खा ॥ २ ॥” इति [यत्परस्परं वस्तुनश्च सामान्यविशेषौ भिन्नौ अत्यन्तं मनुतेऽतो मिथ्यादृष्टिः कणाद इव ॥ १ ॥ उलूकेन शास्त्रं द्वाभ्यां नयाभ्यां नीतमपि मिथ्यात्वं यत्स्वविषयप्रधानत्वेनान्योऽन्यनिरपेक्षौ (अङ्गीकृतौ) ॥२॥] इति १, तथा संग्रहणं भेदानां संगृह्णाति वा भेदान् संगृह्यन्ते वा भेदा येन स संग्रहः, उक्तञ्च—संग्रहणं संगेणहइ संगेण्भन्ते व तेण जं भेया । तो संगहोत्ति”[संग्रहणं संगृह्णाति संगृह्यते वा तेन यस्माद्भेदास्ततः संग्रहः ॥] एतदुक्तं भवति—सामान्यप्रतिपादनपरः खल्वयं सदित्युक्ते सामान्यमेव प्रतिपद्यते न विशेषं, तथा च मन्यते—विशेषाः सामान्यतोऽर्थान्तरभूताः स्थिरनर्थान्तरभूता वा ?, यद्यर्थान्तरभूता न सन्ति ते, सामान्यादर्थान्तरत्वात् खपुष्पवत्, अथानर्थान्तरभूताः सामान्यमात्रं ते, तदव्यतिरिक्तत्वात्, तत्स्वरूपवदिति, आह च—“सदिति भणियंमि जम्हा सव्वत्थाणुण्वत्तए बुद्धी । तो सव्वं तम्मत्तं नत्थि तदत्थंतरं किंचि ॥ १ ॥ कुम्भो भावाऽएन्ना जइ तो भावो अइऽन्नहाऽभावो । एवं पडादओऽविहु भावाऽनन्नत्ति तम्मत्तं ॥ २ ॥” इति, [सदिति भणिते यस्मात्सर्वत्रानुप्रवर्तते बुद्धिः ततः सर्वं तन्मात्रं नास्ति

तदर्थान्तरं किंचित् ॥ १ ॥ कुम्भो भावादनन्यो यदि ततो भावो-
 स्थान्यथाऽभावः एवं पटादयोऽपि भावादनन्या इति तन्मात्रं
 (सर्वं) । २॥] इति २, तथा व्यवहरणं व्यवहरतीति वा व्यवह्रियते
 वा—अपलप्यते सामान्यमनेन विशेषान् वाऽऽश्रित्य व्यवहारपरो
 व्यवहारः आह च—“व्यवहरणं व्यवहरणं स तेण व्यवहारी व
 सामन्नं । व्यवहारपरो य जज्जो विसेज्जो तेण व्यवहारो ॥ १ ॥”
 इति, [व्यवहरणं व्यवहरति व्यवहरति वा सामान्यं व्यवहारपरो
 यतश्च विशेषतस्तेन व्यवहारः ॥ १ ॥] अयं हि विशेषप्रतिपादन-
 परः सदित्युक्ते विशेषानेव घटादीन् प्रतिपद्यते, तेषामेव व्यवहार-
 हेतुत्वात्, न तदतिरिक्तं सामान्यं, तस्य व्यवहारापेक्षत्वात्, तथा
 च—सामान्यं विशेषेभ्यो भिन्नमभिन्नं वा स्यात्?, यदि भिन्नं
 विशेषव्यतिरेकेणोपजभ्येत, न चोपजभ्यते, अथाभिन्नं विशेषमात्रं
 तत्तद्व्यतिरेकत्वात्स्वलप्यदिति, आह च—“उपलम्भव्यवहारा-
 भावाज्जो त(नि)विसेसभावाज्जो । तं नत्थि खपुष्पमिव सन्ति
 विसेसां सख्खं ॥ १ ॥” इति, [उपलम्भव्यवहाराभावात्तद्वि-
 (भिर्विशेषभावात् तज्जास्ति खपुष्पमिव विशेषाः सन्ति
 स्वप्रत्यक्षां ॥ १ ॥] तथा लोकसंव्यवहारपरो व्यवहारः, तथाहि—
 असौ पञ्चवर्णोऽपि । भ्रमरादिवस्तुनि बहुतरत्वात् कृष्णत्वमेव
 मन्यते, आह च—“बहुतरज्जोत्थितं तं जिय गमेइ संतेवि सेसण
 सुयइ । संव्यवहारपरतया व्यवहारो लोकाभिच्छेन्तो ॥ १ ॥” [संव्यवहार-
 परतया लोकमिच्छन् व्यवहारो बहुतरत्वादेव तं गमयति सतोऽपि

शेषकान्मुञ्चत्येव ॥ १ ॥] इति ३, तथा ऋजु—वक्रविपर्ययादिभि-
मुखं श्रुतं—ज्ञानं यस्यासौ ऋजुश्रुतः, ऋजु वा—वर्तमानमतीतानागत-
वक्रपरित्यागाद्वस्तु सूत्रयति—गमयतीति ऋजुसूत्रः, उक्तं च—“ऋजुं
रितुं सुयं नाणमुज्जुसुयमस्स सोऽयमुज्जुसुओ । सुत्तायइ वा
जमुज्जुं वत्थुं तेणुज्जुमुत्तोत्ति ॥ १ ॥” [ऋजु—अवक्रं श्रुतं—
ज्ञानं ऋजुश्रुतमस्य सोऽयमृजुश्रुतः सूत्रयति वा यदृजु वस्तु
तेन ऋजुसूत्र इति ॥ १ ॥] अयं हि वर्तमानं निजकं लिंगवचन-
नामादिभिन्नमप्येकं वस्तु प्रतिपद्यते, शेषमवस्त्विति, तथाहि—
अतीतभेष्यद्वा न भावो, विनष्टानुत्पन्नत्वाददृश्यत्वात्खण्ड्यवत्,
तथा परकीयमप्यवस्तु निष्फलत्वात् खकुमुपवत्, तस्माद्वर्तमानं
स्वं वस्तु, तच्च न लिङ्गादिभिन्नमपि स्वरूपमुष्कति, लिङ्गभिन्नं
तदस्तटी तदमिति वचनभिन्नमापो जज्ञं नामादिभिन्नं नामस्थापना-
द्रव्यभावभिन्नं, आह च—“तम्हा निजगं संपयकालीयं लिंगवयण-
मिन्नंपि । नामादिभेयविहियं पडिवज्जइ वत्थुमुज्जुसुय ॥ १ ॥”
ति [तस्मान्निजकं साम्प्रतकालीनं लिंगवचनभिन्नमपि नामा-
दिभेदवदपि प्रतिपद्यते ऋजुसूत्रो वस्तु ॥ १ ॥] इति ४, तथा शपनं
शपति वा असी शप्यते वा तेन वस्त्विति शब्दस्तरथार्थपरिग्रहा-
दभेदोपचांसन्नयोऽपि शब्द एव, यथा कृतकत्वादितक्षणहेत्वर्थ-
प्रतिपादकं पदं हेतुरेवोच्यत इति, आह च—
“सवणं सवइ स तेणं व सण्ण वत्थु जं तओ सदो । तस्स-
उत्थपरिगाहओ नओवि सदोत्ति हेतुव्व ॥ १ ॥” इति, [शपनं

श.प.ति स तेन वा शप्यते वस्तु यत्ततः शब्दः । तस्यार्थपरिग्रहान्
नयोऽपि शब्द इति हेतुरिव हेत्वर्थप्रतिपादकः ॥ १ ॥] अयं च
नामस्थापनाद्रव्यकुम्भा न सन्त्येवेति मन्यते, तत्कार्याकरणात्
खपुष्पवत्, न च भिन्नलिंगवचनमेकं, लिंग-
वचनभेदादेव, स्त्रीपुरुषवत् कदा वृक्ष इत्यादिवत्, अतो
घटः कुटः कुम्भ इति स्वपर्यायध्वनिवाच्यमेकमेवेति, आह च—“तं
चिय रिउमुत्तमयं पञ्चुपन्नं विसेसियतरं सो । इच्छइ भावघटं
चिय जं न उ नामादओ तिन्नि ॥ १ ॥” [तदेव ऋजुसूत्रमतं
प्रयुत्पन्नं विशेषिततरं स इच्छति भावघटमेव (मनुते) नैव
नामादीस्त्रीन् यत् ॥ १ ॥] इति ५, तथा नानार्थेषु नानासंज्ञासम-
भिरोहणात् समभिरूढः, उक्तं च—“जं जं सन्नं भासइ तं तं
चिय सभभिरोहण जम्हा । सन्नंतरत्थविमुद्धो तओ क(न)ओ
समभिरूढोत्ति ॥ १ ॥” [यां यां संज्ञां भाषते तां तां समभिरोह-
त्येव यस्मात् संज्ञान्तरार्थविमुखस्ततो नयः समभिरूढ
इति ॥ १ ॥] अयं हि मन्त्रे—घटकुटादयः शब्दा भिन्नप्रवृत्ति-
निमित्तत्वाद्भिन्नार्थगोचराः, घटपटादिशब्दवत्, तथा च
घटनान् घटो विशिष्टवैश्रावानर्थो घट इति, तथा ‘कुटः कौटिल्ये
कुटनान् कुटः, कौटिल्ययोग्यात् कुट इति, घटोऽन्यः कुटीऽप्यन्य
एवेति ६, तथा यथा शब्दार्थ एवं पदार्थो भूतः सन्नित्यर्थोऽन्यथा-
भूतोऽसन्निति प्रतिपत्तेपर एवभूतो नयः, आह च—“एवं जहसइत्यो
संतो भूओ तयऽन्नदाऽभूओ । तेणोवंभूयन्नओ सदत्थपरो

विसरण ॥ १ ॥” इति, [एवं यथाशब्दाथ स्तथा भूतः सन्नन्यथा-
ऽभूतः ततः (असन्) तेनैवंभूतनयः विशेषेण शब्दार्थपरः ॥१॥]
अयं हि योषिन्मस्तकव्यवस्थितं चेष्टावन्तमेवार्थं
घटशब्दवाच्यं मन्यते, न स्थानभरणादिक्रियान्तरापन्नमिति,
भवन्ति चात्र श्लोकाः—“शुद्धं द्रव्यं समाश्रित्य, संग्रहस्तद-
शुद्धितः । नैगमव्यवहारौ स्तः, शेषाः पर्यायमाश्रिताः ॥ १ ॥
अन्यदेव हि सामान्यमभिन्नज्ञानकारणम् । विशेषोऽप्यन्यमेवेति,
मन्यते नैगमो नयः ॥ २ ॥ सद्रूपतानतिक्रान्तस्वस्वभावमिदं
जगत् । सत्तारूपतया सर्वं संगृह्य संग्रहो मतः ॥ ३ ॥ व्यवहार-
स्तु तामेव, प्रतिवस्तु व्यवस्थिताम् । तथैव दृश्यमानत्वात्, व्यवहार-
यति देहिनिः ॥ ४ ॥ तत्रजुसूत्रनीतिः स्यात्, शुद्धपर्यायसंस्थिता ।
नश्वरस्यैव भावस्य, भावात् स्थितिर्वियोगतः ॥ ५ ॥ अतीताना-
गताकारकालसंस्पर्शवर्जितम् । वर्त्तमानतया सर्वमृजुसूत्रेण सूच्यते
॥ ६ ॥ विरोधिलिङ्गसंख्यादिभेदाद्धि स्वभावताम् । तस्यैव मन्य-
मानोऽयं, शब्दः प्रत्यवतिष्ठते ॥ ७ ॥ तथाविधस्य तस्यापि, वस्तुनः
क्षणवृत्तिनः ब्रूते समभिरुद्धस्तु, संज्ञाभेदेन भिन्नताम् ॥ ८ ॥
एकस्यापि ध्वनेर्वाच्यं, सदा तन्नोपपद्यते । क्रियाभेदेन भिन्नत्वादेवं-
भूतोऽभिमन्यते ॥ ९ ॥”



श्री भगवती सूत्र

[—रायगिहे नगरे समोसरणं, परिसा निगया जाव
 एवं वयासी—जीवे णं भन्ते ! सयंकडं दुक्खं
 वेदेइ ?, गोयमा ! अत्थेगइयं वेएइ अत्थेगइयं ना
 वेएइ, से केणहेण भन्ते ! एवं बुच्चइ—अत्थेगइयं
 वेदेइ अत्थेगइयं नो वेएइ ?, गोयमा ! उदिन्न
 वेएइ अनुदिन्नं नो वेएइ, से तेणहेणं एवं बुच्चइ—
 अत्थेगइयं वेएइ अत्थेगतियं नो वेएइ, एवं
 चउव्वीसदंडएणं जाव वेमाणिए ॥ जीवा णं
 भन्ते । सयंकडं दुक्खं वेएन्ति ?, गोयमा ! अत्थेगइयं
 वेयन्ति अत्थेगइयं णो वेयन्ति, से केणहेणं ?, गोयमा !
 उदिन्नं वेयन्ति नो अणुदिन्नं वेयन्ति, से तेणहेणं, एवं
 जाव वेमाणिया ॥ जीवे णं भन्ते ! सयंकडं आउयं
 वेएइ ? गोयमा ! अत्थेगइयं वेएइ अत्थेगइयं
 नो वेएइ जहा दुक्खेणं दो दंडगा तहा आउएणवि
 दो दंडगा एगत्तपुहुत्तिया, एगत्तेणं जाव वेमाणि-
 या पुहुत्तेणवि तहेव ॥

—श्री भगवती सूत्र शतक १, उद्देश २, सूत्र २० ॥

टीका-- 'रायगिहे' इत्यादि पूर्ववन्, 'जीवेण' मित्यादि-
 सत्र 'सयंकडं दुक्खं'ति यत्परकृतं तत्र वेदयतीति प्रतीतमेवातः
 स्वयंकृतमिति पृच्छति स्म 'दुक्खं'ति सांसारिकं सुखमापि वास्तुतो
 दुःखमिति दुःखहेतुत्वाद् 'दुःखं' कर्म वेदयतीति, काकुपाठान्
 अभः, निर्वचनं तु यदुदीर्णं तद्वेदयति, अनुदीर्णस्य हि कर्मणो
 वेदनमेव नास्ति तस्मादुदीर्णं वेदयति, नानुदीर्णं, न च बन्धा-
 नन्तरमेवेति अतोऽवश्यं वेदामप्येकं न वेदयति इत्येवं व्यप-
 दिश्यते, अचश्यं वेदमेव च कर्म "कडण कम्माण ण मोक्खो
 अत्थि" इति वचनादिति । एवं 'जाव वेमाणिण' इत्यनेन चतु-
 विंशतिदण्डकः सूचितः, स चैवम्--'नेरइण ण भन्ते ! सयंकडं'
 मित्यादि । एवमेकत्वेन दण्डकः, तथा बहुत्वेनान्यः, स चैवम्--
 'जीवा ण भन्ते ! सयंकडं दुक्खं वेदंती'त्यादि तथा 'नेरइयाणं
 भन्ते ! सयंकडं दुक्खं'मित्यादि, नन्वेकार्थं योऽर्थो बहुत्वेऽपि
 स एवेति किं बहुत्वप्रश्नेन ? इति, अत्रोच्यते, कचिद्वस्तुनि
 एकत्वबहुत्वयोरर्थविशेषो दृष्टो यथा सन्न्यक्तत्वादेः एकं जीवमा-
 श्रित्य षट्षष्टिसागरोपमणि साधिकानि स्थितिकाल उक्तो नाना-
 जीवानाश्रित्य पुनः सर्वाद्वा इति, एवमत्रापि संभवेदिति शङ्कायां
 बहुत्वप्रश्नो न दुष्टः अव्युत्पन्नमतिशिष्यव्युत्पादनार्थत्वाद्देति ॥
 अथायुःप्रधानत्वान्नारकादिव्यपदेशस्यायुराश्रित्य दण्डकद्वयम्--
 एतस्य चेयं वृद्धोक्तभावना--यदा सप्तमक्षितावायुर्दृष्टं पुनश्च

हालान्तरे परिणामविशेषात्तृतीयधरणीप्रायोग्यं निर्वर्तितं
 रासुदेवेनेव तत्तादृशमङ्गीकृत्योच्यते—पूर्ववद्धं कश्चिन्न वेदयति,
 अनुदीर्णत्वात्तस्य, यदा पुनर्यत्रैव वद्धं तत्रैवोत्पद्यते तदा वेदयती-
 युच्यते, तथैव तस्योदितत्वादिति ॥

लम्-से नृणं भंते ! अत्थितं अत्थिते परिणमइ नत्थितं
 नत्थिते परिणमइ ?, हंता गोयमा ! जाव परिणमइ ॥
 जण्णं भंते ! अत्थितं अत्थिते परिणमइ नत्थितं
 नत्थिते परिणमइ तं किं पयोगसा वीससा ?,
 गोयमा ! पयोगसावि तं, वीससावि तं । जहा ते
 भंते ! अत्थितं अत्थिते परिणमइ तहा ते नत्थितं
 नत्थिते परिणमइ ? जहा ते नत्थितं नत्थिते
 परिणमइ, तहा ते अत्थितं अत्थिते परिणमइ ?,
 हंता गोयमा ! जहा मे अत्थितं अत्थिते परिणमइ
 तहा मे नत्थितं नत्थिते परिणमइ, जहा मे नत्थितं
 नत्थिते परिणमइ तहा मे अत्थितं अत्थिते
 परिणमइ ॥ से नृणं भंते ! अत्थितं अत्थिते
 गमणिज्जं ?, जहा परिणमइ दो आलावणा तहा
 ते इह गमणिज्जेणवि दो आलावणा भाणिमत्वा
 जाव जहा मे अत्थितं अत्थिते समणिज्जं ॥

टीका—‘से शूणमि’त्यादि ‘अस्थितं अस्थिते परिणमइ’
 त्ति, अस्तित्वं—अंगुल्यादेः अङ्गुल्यादिभावेन सत्त्वम्,
 उक्तञ्च—“सर्वमस्ति स्वरूपेण, पररूपेण नास्ति च । अन्यथा
 सर्वभावानामेकत्वं सम्प्रसज्यते ॥ १ ॥” तच्चवेह ऋजुत्वादिपर्याय-
 रूपमवसेयम्, अङ्गुल्यादिद्रव्यास्तित्वस्य कथञ्चिदृजुत्वादिपर्या-
 यान्वयतिरिक्तत्वात् अस्तित्वे—अङ्गुल्यादेरेवांगुल्यादिभावेन
 सत्त्वे वक्रत्वादिपर्याय इत्यर्थः ‘परिणमति’ तथा भवति, इदमुक्तं
 भवति—द्रव्यस्य प्रकारान्तरेण सत्ता प्रकारान्तरसत्तायां वर्तते
 यथा मृदूद्रव्यस्य पिण्डप्रकारेण सत्ता घटप्रकारसत्तायामिति ।
 ‘नस्थितं नस्थितो परिणमइ’त्ति नास्तित्वं—अंगुल्यादेरंगुष्ठादि-
 भावेनासत्त्वं तच्चांगुष्ठादिभाव एव, ततश्चांगुल्यादेर्नास्तित्वमंगुष्ठा-
 दस्तित्वरूपमंगुल्यादेर्नास्तित्वे अंगुष्ठादेः पर्यायान्तरेणास्तित्वरूपे
 परिणमति, यथा मृदो नास्तित्वं तन्त्वादिरूपं मृन्नास्तित्वरूपे पदे
 इति, अथवाऽस्तित्वमिति—धर्मधर्मिणोरभेदात् सद्वस्तु अस्तित्वे—
 सत्त्वे परिणमति, तत्सदेव भवति, नात्यन्तं विनाशि स्याद् विना-
 शस्य पर्यायान्तरगमनमात्ररूपत्वात्, दीपादिविनाशस्यापि तमि-
 स्सारदिरूपतया परिणामात् तथा ‘नास्तित्वं’ अत्यन्ताभावरूपं यत्
 खरविषाणदि तत् ‘नास्तित्वे’ अत्यन्ताभाव एव वर्तते, नात्यन्त-
 मसतः सत्त्वमस्ति, खरविषाणस्येवेति, उक्तं च—“नासतो
 जायते भवो, नाभवो जायते सतः ।” अथवाऽस्तित्वमिति

धर्मभेदात् सद् 'अस्तित्वे' सत्त्वे वर्तते, यथा षट् पठत्वं एव नास्तित्वं चासत् 'नास्तित्वे' वर्तते, यथा अपटोऽपठत्वं एवेति ॥ अथ परिणामहेतुदर्शनायाह—'जं एण'मित्यादि अतिथिं अतिथिं परिणामइ' ति पर्यायः पर्यायान्तरतां यातीत्यर्थः 'नत्थिं नत्थिं परिणामइ' ति वस्त्वन्तरस्य पर्यायस्तत्पर्यायान्तरतां यातीत्यर्थः, 'प्रयोगस' ति सकारस्यागमिकत्वात् 'प्रयोगेण' जीवव्यापारेण 'वीसस' ति यद्यपि लोके विश्रसाशब्दो जरापर्यायतया रूढस्तथाऽपीह स्वभावाधो दृश्यः, इह प्राकृतत्वाद् 'वीससा' ति वाच्ये 'वीससा' इत्युक्तमिति, अत्रोत्तरम्—'प्रयोगसावि तं' ति, यथा शुभ्राभ्रमशुभ्राभ्रतया, नास्तित्वस्यापि नास्तित्वपरिणामे प्रयोगविश्रसयोरेतान्येवोदाहरणानि, वस्त्वन्तरापेक्षया मृत्पिण्डादेरस्तित्वस्य नास्तित्वात्, सत्सदेव स्यादिति व्याख्यानान्तरेऽप्येतान्येवोदाहरणानि पूर्वोत्तरावस्थयोः सद्गुणत्वादिति, यदपि—'अभावोऽभाव एव स्याद्' इति व्याख्यातं तत्रापि प्रयोगेणापि तथा विस्त्रसयाऽपि अभावोऽभाव एव स्यान् न प्रयोगादेः सफल्यमिति व्याख्येयमिति ॥ अथोक्तहेत्वोरुभयत्र समतां भगवदभिमततां च दर्शयन्नाह—'जहा ते' इत्यादि, 'यथा' प्रयोगविश्रसाभ्यामित्यर्थः 'ते' इति तत्र भतेन अथवा सामान्येनास्तित्वपरिणामः प्रयोगावस्थसाजन्य उक्तः सामान्यश्च विधिः क्वचिदतिशयवति वस्तुन्यन्यथाऽपि स्याद् अतिशयवाञ्छ भगवानिति तमाश्रित्य परिणामान्यथात्वमाशङ्कमान आह—'जहा ते' इत्यादि 'ते' इति तत्र

सम्बन्धि अस्तित्वं, शेषं तथैवेति ॥ अथोक्तस्वरूपस्यैवास्य सत्यत्वेन प्रज्ञापनीयतां दर्शयितुमाह—‘से शूणं’मित्यादि, अस्तित्वमस्तित्वे गमनीयं सद्वस्तु सत्यत्वेनैव प्रज्ञापनीयमित्यर्थः, ‘दो आलावरा’ त्ति ‘से शूणं भते ! अत्थित्तं अत्थित्ते गमणिज्ज’मित्यादि ‘पओगसा वि तं वीससावि तं’ इत्येतदन्त एकः, परिणामभेदाभिधानात्, ‘जहा ते भते ! अत्थित्तं अत्थित्ते गमणिज्ज’मित्यादि ‘तदा मे अत्थित्तं अत्थित्ते गमणिज्ज’मित्येवदन्तस्तु द्वितीयोऽस्तित्वनास्तित्वपरिणामयोः संसताऽभिधायीति ॥

मूलम्- जीवे शं भन्ते गब्भं वक्कममाणे किं सइंदिए वक्कमइ अणिंदिए वक्कमइ ? गोयमा ! सिय सइंदिए वक्कमइ, सिय अणिंदिए वक्कमइ, से केणद्वेणं० ? गोयमा ! दव्विदियाइं पडुच्च अणिंदिए वक्कमइ, भाविदियाइं पडुच्च सइंदिए वक्कमइ, से तेणद्वेणं० । जीवे शं भन्ते ! गब्भं वक्कममाणे किं ससरीरी वक्कमइ असरीरी वक्कमइ ? गोयमा ! सिय ससरीरी व० सिय असरीरी वक्कमइ, से केणद्वेणं ? गोयमा ! ओरा— सियवेउव्वियआहारयाइं पडुच्च असरीरी व० तेयाकम्मा० प० सस० वक्क० से तेणद्वेणं गोयमा !० ।

—व्याख्या प्रज्ञप्ति प्रथम शतक, उद्देश्य ७, सूत्र ६१ ॥

टीका—‘गच्छं वैक्कममाणो’ ति. गर्भं व्युत्क्रामन् गर्भं उत्पद्यमान इत्यर्थः ‘दव्विदियाइ’ ति निर्वृत्युपकरणलक्षणानि, तानि हीन्द्रियपर्याप्तौ सत्यां भविष्यन्तीत्यनिन्द्रियः उत्पद्यते, ‘भविदियाइ’ त लब्ध्युपयोगलक्षणानि, तानि च संसारिणः सर्वावस्थ भावीनीति। ‘ससरीरि’ति सह शरीरेणेति सशरीरी इन्समासान्तभावान्, ‘असरीरि’ति शरीरेवान् शरीरी, तन्निषेधा-दशरीरी ‘वक्कमइ’ ति, व्युत्क्रामति—उत्पद्यत इत्यर्थः।

मूलम्—पुरिसे शां भंते ! कच्छंसि वा १ दहंसि वा २ उदगंसि

वा ३ दवियंसि वा ४ वल्लयंसि वा ५ नूसंसि वा ६ गहणंसि वा ७ गहणविदुग्गंसि वा ८ पव्वयंसि वा ९ पव्वयविदुग्गंसि वा १० वणंसि वा ११ वण-विदुग्गंसि वा १२ मिथवित्तीए मियसंकप्पे मिय-पणिहाणे मियवहाए गंता एए मिएत्तिकाउं अन्नयरस्स मिथस्स वहाएकूडपासं उद्दाइ, ततो शां भंते ! से पुरिसे कतिकिरिए पणत्ते !, गोयमा ! जाव च शां से पुरिसे कच्छंसि वा १२ जाव कूडपासं उद्दाइ ताव च शां से पुरिसे सिय तिकि० मिय चउ० सिय पंव०। से केण्ह्णे शां सिय ति० सिय च० सिय प० ? गोयमा ! जे भविए उदवणयाए खो बंधणयाए खो मारणयाए ताव च शां से पुरिसे काइयाए अहि-गरणियाए पाउमियाए तिहिं किरियाहिं पुट्ठे, जे भविए उदवणयाएवि बंधणयाएवि खो मार-

श्याए ताव च शं से पुरिसे कोइय ए अहिगरणि-
याए पाउमियाए परियावणियाए चउहिं किरि-
याहिं पुट्ठे, जे भविए उदवणयाएवि वंघणयाए
वि मारणयाए वि तावं च शं से पुग्गिसे काइयाए
अहिगरणियाए पाउसियाए जाव पंचहिं पुट्ठे, से
तेशट्ठेणं जाव पंचकिरिए, (सू० ६५) पुरिसे शं
भंते ! कच्छसि वा जाव वणविदुग्गंसि वा तण इं
ऊसवियं २ अगणिकायं निस्सरइ तावं च शं से
भंते ! से पुरिसे कति किरिए ?, गोयमा ! मिय
ति किरिए, सिय चउ कि० मिय पंच०, से
केणट्ठेणं ? गोयमा ! जे भविए उस्सवणयाए
तिहिं, उस्सवणयाए विनिस्सिरणयाएवि नो
दहणयाए चउहिं, जे भविए उस्सवणयाए वि
निस्सिरणयाए वि दहणयाए वि तावं च शं से
पुरिसे काइयाए जाव पंचहिं किरियाहिं पुट्ठे, से
तेश० गोयमा ! ० ॥ ६६ ॥

पुरिसेणं भंते, कच्छंसि वा जाव वणविदुग्गंसि
वा, मियविज्जीए मिएस कप्पे, मियपणिहारो
मियवहाय, गंता एए, मिएज्जिकाउं अन्नयरस्स
मियस्स वहाय उस्सं निस्सिरइ, ततो शं भंते ! से

पुरिसे कह किरिए ? गोयमा ! सिय ति किरिए,
 मिय चउ किरिए सिय पंच किरिए, से केष-
 टठेणं ? गोयमा ! जे भविए निस्सिरणयाए नो
 विद्धं सणयाए वि नो मारणयाए तिहिं, जे भविए
 निस्सिरणयाए वि विद्धं सणयाए वि नो मारणयाए
 चउहिं, जे भविए निस्सिरणयाए वि विद्धं सणयाए
 वि मारणयाए वि तावं च णं से पुरिसे जाव
 पंचहिं किरियाहिं पुट्ठे, से तेणं गोयमा ! सिय ति
 किरिए मिय चउ किरिए सिय पंच किरिए ॥६७॥
 पुरिसेणं भंते ! कच्छंरि वा जाव अन्नयरस्स
 मियस्स बहाए आययकन्नाययं उसु आयामेत्ता
 चिट्ठज्जा, अन्नयरे पुरिसे मग्गओ आगम्म
 सयपाणिणा असिणा सीसं छिन्देज्जा से य उसु
 ताए चेव पुब्बायामणयाए तं विंधेज्जा सेणं
 भंते ! पुरिसे किं मियवेरेणं पुट्ठे पुरिसवेरेणं
 पुट्ठे ? गोयमा ! जेमियं मारेइ से मियवेरेणं
 पुट्ठे, जे पुरिसं मारेइ से पुरिसवेरेणं पुट्ठे, से
 केषट्ठेणं भंते ! एव वुच्चइ जाव से पुरिसे वेरेणं
 पुट्ठे ? से नूण गोयमा ! कज्जमाणे कडे संधिज्ज-
 माणे संधिए निवत्तिज्जमाणे निवत्तिए निसिरिज्ज-

आणो निसिद्धेति वत्तव्वं सिया ? , हंता भगवं कज्ज-
माणं कडे जाव निसिद्धत्ति वत्तव्वं सिया, से तेणद्धेणं
गोयमा ! जे मियं मारेइ से मियवेरेणं पुढे, जे पुरिसं
मारेइ से पुरिसवेरेणं पुढे, । अंतो छएहं मासाणं
मरइ काइयाए जाव पंचहिं किरियाहिं पुट्ठे, बाहिं
छएहं मासाणं मरइ काइयाए जाव परियावणियाए
चउहिं किरियाहिं पुट्ठे ॥

—श्री भगवती सूत्र, शतक प्रथम, उद्देश ८ सूत्र द्व ॥

टीका—‘कच्छंसि व’त्ति ‘कच्छे’ नदीजलपरिवेष्टिते वृक्षादि-

मति प्रदेशे ‘दहंसि व’त्ति ह्रदे प्रतीते ‘उदगंसि व’त्ति उदके—
जलाश्रयमात्रे ‘दवियंसि व’त्ति ‘द्रविके’ तृणादिद्रव्यसमुदाये
वलयंसि व’त्ति ‘वलये’ वृत्ताकारनद्याद्युदककुटिलगतियुक्तप्रदेशे
‘नूमंसि व’त्ति ‘नूमे’ अवतमसे ‘गहणंसि व’त्ति ‘गहने’ वृक्ष-
वल्लीलतावितानवीरुत्समुदाये ‘गहण विदुगंसि व’त्ति गहन-
विदुर्गे, पर्वतैकदेशावस्थितवृक्षवल्त्यादिसमुदाये ‘पव्वयंसि व’
त्ति पर्वते ‘पव्वय विदुगंसि व’त्ति पर्वतसमुदाये ‘वणंसि व’त्ति
‘वने’ एकजातीयवृक्षसमुदाये ‘वणविदुगंसि व’त्ति नाना-
विधवृक्षसमूहे ‘मिगवित्तीए’त्ति मृगैः—हरिणैर्वृत्तिः—जीविका
यस्य स मृगवृत्तिकः, स च मृगरक्षकोऽपि स्यादिति अत आह—
‘मियसंकप्पे’त्ति मृगेषु संकल्पो—बधाध्यवसायः छेदनं वा

यस्यासौ मृगसंकल्पः, स च चलचित्ततयाऽपि भवतीत्यत
 आह—‘मियपरिहाणे’ति मृगवधैकाग्रचित्तः ‘मिगवहाए’
 ति मृगवधाय ‘गंत’ति गत्वा कच्छादाविति योगः ‘कूटपासं’
 ति कूटं च—मृगग्रहणकारणं गत्तादि पाशश्च—तद्वन्धनमिति
 कूटपाशम् ‘उद्दाइ’ति मृगवधायोद्दाति, रचयतीत्यर्थः, ‘तत्रो णं’
 ति ततः कूटपाशकरणान् ‘कइकिरिए’ति कर्तृक्रियः ?, क्रियाश्च
 कायिक्यादिकाः, ‘जे भविए’ति यो भव्यो योग्यः कर्तेति यावत्
 ‘जावं च णं’ति त शेषः, यावन्तं कालमित्यर्थः कस्या कर्ता इत्याह—
 ‘उद्दवणयाए’ति कूटपाशधारणतायाः, ताप्रत्ययश्चेह स्वार्थिकः,
 ‘तावं च णं’ति तावन्तं कालं ‘काइयाय’ति गमनादिकायचेष्टा-
 रूपया ‘अहिगरणयाए’ति, अधिकरणेन—कूटपाशरूपेण
 निवृत्ता या सा तथा तथा ‘पाउसियाए’ति प्रद्वेषो—मृगेषु दुष्ट-
 भावस्तेन निवृत्ता प्राद्वेषिकी तथा ‘तिहिं किरियाहिं’ति क्रियन्त
 इति क्रियाः—चेष्टाविशेषाः, ‘पारितावणयाए’ति परित्यापन-
 प्रयोजना पारित्यापनिकी, सा च बद्धे सति मृगे भवति प्राणाति-
 पातक्रिया च घातिते इति १ ॥ ‘ऊत्तविए’ति उत्सर्गः उत्सर्ग-
 उणेत्यर्थः ऊर्ध्वीकृत्येति वा ‘निसिरइ’ति निसृजति—क्षिपति
 यावदिति शेषः २ ॥ ‘उसु’ति बाणम् ‘आययकरणायत्तं’ति
 कर्णं यावदायतः—आकृष्टः कर्णायतः आयतं प्रयत्नवद् यथा भवती
 त्येवं कर्णायत आयतकर्णायतस्तम् ‘आयामेत्तं’ति ‘आयम्य’

आकृष्य 'मग्नाओ'ति प्रष्टतः 'सयपाणिण'ति 'स्वकपाणिना'
 स्वकहस्तेन 'पुठ्वायामण्याए'ति पूर्वाकर्षणेन, 'से णं भंते ।
 पुरिसे'ति 'सः' शिरच्छेत्ता पुरुषः 'मियवेरेण'ति इह वैरं
 वैरहेतुत्वाद् वधः पापं वा वैरं वैरहेतुत्वादिति, अथ शिरच्छेत्-
 पुरुषहेतुकत्वादिषु निपातस्य कथं धनुर्द्धरपुरुषो मृगवधेन स्पृष्ट
 इत्याकृतवतो गौतमस्य तदभ्युपगतमेवार्थमुत्तरतया ग्राह—
 क्रियमाणं धनुःकाण्डादि कृतमिति व्यपदिश्यते ?, युक्तिस्तु प्राग्वत्
 तथा सन्धीयमानं—प्रत्यञ्चायामारोप्यमाणं काण्डं धनुर्वाऽऽरोप्य-
 मानप्रत्यञ्चं 'सन्धितं' कृतसन्धानं भवति ?, तथा 'निवृत्त्यमानं'
 नितरां वर्तुलोकियमाणं प्रत्यञ्चाकर्षणेन निवृत्तितं—वृत्तीकृतं मण्ड
 लाकारं कृतं भवति ?, तथा 'निसृज्यमाणं' निक्षिप्यमाणं काण्डं
 निसृष्टं भवति ?, यदा च निसृष्टं तदा 'निसृज्यमानताया' धनुर्द्धरेण
 कृतत्वात् तेन काण्डं निसृष्टं भवति, काण्डनिसर्गाच्च मृगस्तेनैव
 मारितः, तद्विशोच्यते—'जे मियं मारेइ' इत्यादीति ॥ ३ ॥ इह च
 क्रियाः प्रक्रान्ता, ताश्चानन्तरोक्ते मृगादिवधे यावत्यो यत्र काल-
 विभागे भवन्ति तावतीस्तत्र दर्शयन्नाह—'अन्तो छण्ह'मित्यादि,
 षण्मासान् यावत् प्रहारहेतुकं मरणं परतस्तु परिणामान्तरापादित-
 मितिकृत्वा षण्मासादूर्ध्वं प्राणातिपातक्रिया न स्यादिति हृदयम्,
 एतच्च व्यवहारनयापेक्षया प्राणातिपातक्रियाव्यपदेशसात्रोप-
 दर्शनार्थमुक्तम्, अन्यथा यदा कदाऽप्यधिकृतं प्रहारहेतुकं
 मरणं भवति तदैव प्राणातिपातक्रिया, इति ४ ॥

दो भते । पुरिसा मरिसया मरित्तया मरिव्वया
 मरिसभंडमत्तोवगरणा अन्नमन्नेणं सद्धि संगामं
 संगामेन्ति, तत्थ गं एगे पुरिसे पराइणइ एगे
 पुरिसे पराइज्जइ, से कहमयं भंते ! एवं ?
 गोयमा सवीरिए पराइणइ अवीरिए पराइज्जइ,
 से केणट्ठेणं जाव पराइज्जइ ? गोयमा ! जस्स
 णं वीरियवज्झाई कम्माई णो वद्धाई णो
 पुढाई जाव नो अभिसमन्नागयाई नो उदिन्नाई
 उवसंताई भवन्ति से णं पराइणइ, जस्स णं
 वीरियवज्झाई कम्माई वद्धाई जाव उदिन्नाई
 नो उवसंताई भवन्ति से णं पुरिसे पराइज्जइ
 से तेणट्ठेणं गोयमा ! एवं बुच्चइ सवीरिए
 पराइणइ अवीरिए पराइज्जइ ॥

—श्री भगवती सूत्र १।८।७०॥

टीका—‘सरिसय’त्ति सदृशकौ कौशलप्रमाणादिना ‘सरि-
 त्ति ‘सदृक्त्वचौ, सदृशच्छवी मरिव्वय’ त्ति सदृग्वयसौ
 त्रयौवजाद्यवस्थौ ‘सरिसभंडमत्तोवगरणा’त्ति भाण्डं-भाजनं
 आदि सात्रो—सात्रया युक्त उपधिः स च कांस्यभाजनादि-
 नभाण्डका भाण्डमात्रा वा—गणिमादिद्रव्यरूपः परिच्छेदः
 एणानि—अनेकधाऽऽवरणप्रहरणादीनि ततः सदृशानि
 सात्रोपकरणानि ययोस्तौ तथा, अनेन च समानविभूतिकत

महितं, 'सर्वीरिण्यं सर्वीर्यः 'वीरियवज्झाङ्ग' इति वीर्य-
षां तानि तथा ॥

जीवा खं भन्ते ! किं सर्वीरिया अवीरिया ?
गोयमा ! सर्वीरियावि अवीरियावि, से केणट्ठेण ?
गोयमा ! जीवा दुविहा पणत्ता, तंजहा—संसार-
समावन्नगा य असंसारसमावन्नगा य, तत्थ ण
जे ते असंसारसमावन्नगा ते णं सिद्धा, सिद्धा ण
अवीरिया, तत्थ णं जे ते संसारसमावन्नगा ते दुपि-
पणत्ता, तंजहा—सेलेसिपडिवन्नगा य असेलेसिपडि-
वन्नगा य, तत्थ णं जे ते सेलेसिपडिवन्नगा ते णं
लद्धिवीरिण्यं सर्वीरिया करणवीरिण्यं अवीरिया,
तत्थ णं जे ते असेलेसिपडिवन्नगा ते णं लद्धि-
वीरिण्यं सर्वीरिया करणवीरिण्यं सर्वीरियावि
अवीरियावि, से तेणट्ठेणं गोयमा ! एव
वुच्चइ—जीवा दुविहा पणत्ता, तंजहा—
सर्वीरियावि अवीरियावि । नेरइया खं भन्ते ! किं
सर्वीरिया अवीरिया ? गोयमा ! नेरइया लद्धिवी-
रिण्यवि सर्वीरिया करणवीरिण्यं सर्वीरियावि
अवीरियावि ! से केणट्ठेणं ? गोयमा ! जेसि णं
नेरइयाणं अत्थि उट्ठाणे कम्मे बले वीरिण्यं पुरि-
सक्कारपरक्कमे ते णं नेरइया लद्धिवीरिण्यवि

सवीरिया करणवीरिएणवि सवीरिया, जेसि शं
 नेरइया शं नत्थि उट्ठाणं जाव परक्कमे
 ते शं नेरइया लद्धिवीरिएणं सवारिया
 करणवीरिएणं अवीरिया, से तेणट्ठेणं०,
 जहा नेरइया एव जाव पंचिदियतिरिक्खज्जीणिया
 मणुस्सा जहा ओहिया जीवा, नवरं सिद्धवज्जा
 भाणियव्वा, वाणमंतरज इसवेमाणिया जहा नेरइया
 सेवं भंते ! सेवं भंते ! ति ॥

—श्री भगवती सूत्र १।न।७१॥

टीका—सिद्धाणं 'अवीरिय'ति सकरणवीर्याभावादवीर्याः
 सिद्धाः 'सेलेसियडिवन्नगा य' ति शीलेशः—सर्वसंवररूपचरण-
 प्रभुस्तस्येयमवस्था, शीलेशो वा—मेरुस्तस्येव याऽवस्था स्थिरतासा-
 धर्म्यात्सा शीलेशी, सा च सर्वथा योगनिरोधे पंचद्वस्वाक्षरो-
 च्चारकालमाना तां प्रतिपन्नका ये ते तथा, 'लद्धिवीरिएणं सवीरिय'
 ति वीर्यान्तरायक्षयक्षयोपशमतो या वीर्यस्य लब्धिः सैव तद्धे-
 तुत्वाद्दीर्यं लब्धिवीर्येतेन सवीर्याः, एतेषां च क्षायिकमेव लब्धि-
 वीर्यं 'करणवीरिएणं' ति लब्धिवीर्यकार्यभूता क्रिया करणं तद्रूपं
 करणवीर्यम्, 'करणवीरिएणं सवीरियावि अवीरियावि' ति तत्र
 'सवीर्याः' उत्थानादिक्रियावन्तः अवीर्यास्तूत्थानादिक्रियाविकलाः,
 ते चापर्याप्त्यादिकालेऽवगन्तव्या इति । 'नवरं सिद्धवज्जा भाणि-
 यव्व'ति, औघिकजीवेषु सिद्धाः सन्ति मनुष्येषु तु नेति,
 मनुष्यदण्डके वीर्यं प्रति सिद्धस्वरूपं नाध्येयमिति ॥

खंदयाति समशे भगवं महावीरे खंदयं कच्चाय०
 एवं वयासी--से नूणं तुम खंदया ! सावत्थीए
 नयरीए पिगलएणं शियंठेणं वेसालियसावएण
 इणमक्खेवं पुच्छिए मागहा ! किं सअंते लोए
 अणंते लोए एवं तं जेणेव मम अंतिए तेषेव
 हव्वमागए, से नूणं खंदया ! अयमट्ठे समट्ठे ?
 हंता अत्थि, जेविय ते खंदया ! अयमेयारूवे
 अब्भत्थिए चिन्तिए पत्थिए मशोगए संकप्पे
 समुपज्झित्था-- किं सअंते लोए अणंते लोए ?
 तस्सविय णं अयमट्ठे-- एवं खलु मए खंदया !
 चउच्चिहे लोए पन्नत्ते, तंजहा--दव्वओ खेत्तओ
 कालओ भावओ । दव्वओ णं एगे लोए सअंते ?,
 खेत्तओ णं लोए असंखेज्जाओ जोयणकोडा-
 कोडीओ आयामविकखंभेणं, असंखेज्जाओ जोयण-
 कोडाकोडीओ परिकखेवेण पं० अत्थि पुण सअन्ते?,
 कालओ णं लोए ण कयावि न आसी न कयावि
 न भवति न कयावि न भविस्सति अविंसु य
 भवति य भविस्सइ य धुवे शितिए सासते, अक्खए
 अव्वए अवट्ठिण्णए शिच्चे, शत्थि पुण से अन्ते ३,
 भावओ णं लोए अणंता वएण पज्जवा गंध० रस०

फासपज्जवा, अणता सोठाणपज्जवा अणता गरुय-
लहुयपज्जवा, अणता अगरुयलहुयपज्जवा, नत्थि
पुण से अन्ते ४, सेचं खदगा ! दव्वओ लोए
सअन्ते खेतओ लोए सअन्ते कालतो लोए अणते
भावओ लोए अणते । जेवि य ते खंदया ! जाव
सअन्ते जीवे अणते जीवे, तस्सवि य ण अयमट्ठे
—एवं खलु जाव दव्वओ णं एगे जीवे सअन्ते,
खेत्तओ णं जीवे असंखेज्जवएसिए असंखेज्ज-
पदेसोगाढे अत्थि पुण से अन्ते,, कालओ णं जीवे
न कयावि न आमि जाव निच्चे नत्थि पुण से अन्ते,
भावओ णं जीवे अणता णाणपज्जवा अणता
दंयणप० अणता चरिणप० अणता अगुरुलहुयप०
नत्थि पुण से अन्ते, सेचं दव्वयो जीवे सअन्ते
खेत्तओ जीवे सअन्ते कालओ जीवे अणते, भावओ
जीवे अणते । जेवि य ते खंदया ! पुच्छो० (इमेयाख्वे
चिंतिए जाव सअन्ता सिद्धि अणता सिद्धी) तस्स
वि य ण अयमट्ठे खंदया ! मए एवं खलु चउव्विहा
सिद्धी पणण०, तं०—दव्वओ ४, दव्वओ णं एगा
सिद्धी खेत्तओ णं सिद्धी पणयालीसं जोयणसय-
सहस्साइं आयामविकखंभेण एगा जोयणकोडी
वायालीसं च जोयणसयसहस्साइं तीसं च जोयण

सहस्साहं दोन्नि य अउणापन्नजोयणसए किञ्चि
विसेसाहिए परिक्षेवेणं अत्थि पुण से अन्ते, कालओ
णं सिद्धी न कयावि न आसि, भावओ य जहा
लोयस्स तहा भाणियच्चा, तत्थ दच्चओ सिद्धी
सअन्ता खे० सिद्धी सअन्ता का० सिद्धी अणंता
भावओ सिद्धी अणंता । जैवि य ते खंदया ! जाव
किं अणते सिद्धे तं चेव जाव दच्चओ णं एगे सिद्धे
सअन्ते, खे० सिद्धे असंखेज्जपएसिए असंखेज्ज-
पदेसोगाढे, अत्थि पुण से अन्ते, कालओ णं सिद्धे
सादीए अपज्जवसिए नत्थि पुण से अन्ते, भा० सिद्धे
अणंता शाणपज्जवा, अणंता दंसणपज्जवा जाव
अणंता अगुरुलहुयप० नत्थि पुण से अन्ते, सेत्तं
देषओ सिद्धे सअन्ते खेत्तओ सिद्धे सअन्ते का०
सिद्धे अणंते भा० सिद्धे अणंते । जैवि य ते खंदया !
इमेयारूवे अब्भत्थिए चितिए जाव समुपज्जित्था—
केण वा मरणेणं मरमाणे जीवे वड्ढति वा हायति
चा ?, तस्सवि य णं अयमद्वे एवं खलु खंदया !
मए दुविहे मरणे परणत्ते, तंजहा—बालमरणे
य पंडियमरणे य, से किं तं बालमरणे ?, २
दुवालसविहे प०, तं० वलयमरणे वसहमरणे अंतो-

जैनागमां में स्याद्वाद

सत्त्वमरणे नब्बवमरणे गिरिपडणे तरुपडणे जल-
 प्वेसे जलणप्प० विसम्भक्खणे सत्थोवाडणे वेहोणसे
 गिद्धपट्ठे ! इच्चेतेणं खंदया ! दुवालसविहेणं बाल-
 मरणेणं मरमाणे जीवे अणंतेहिं नेरइयभवग्गहणेहिं
 अप्पोणं संजोएइं तिरियमणुदेव० अणाइयं च णं
 अणवदग्गं दीहमद्धं चाउरंतसंसारकंतारं अणुपरि-
 यट्ठइ, सेत्तं मरमाणे वड्ढइ २, सेत्तं बालमरणे ।
 से किं तं पंडियमरणे ?, २, दुविहे प० तं०—
 पाओवगमणे य भत्तपच्चक्खवाणे य । से किं त
 पाओवगमणे ?, २ दुविहे प० तं०— नीहारिमे
 य अनीहारिमे य नियमा अप्पडिकमे सेत्तं
 पाओवगमणे । से किं तं भत्तपच्चक्खवाणे ?,
 २ दुविहे प० तं०—नीहारिमे य अनीहारिमे य
 नियमा सपडिकमे, सेत्तं भत्तपच्चक्खवाणं । इच्चेते
 खंदया ! दुविहेणं पंडियमरणेणं मरमाणे जीवे
 अणंतेहिं नेरइयभवग्गहणेहिं अप्पोणं विसंजोएइ
 जाय बीईवयति, सेत्तं मरमाणे हायइ, सेत्तं पंडिय-
 मरणे । इच्चेएणं खंदया ! दुविहेणं मरणेणं
 मरमाणे जीवे वड्ढइ वा हायति वा ॥

—श्री भगवती सूत्र २।१।६१॥

टीका—‘द्वयो एणं एगो लोए सअन्ते’ति पञ्चास्तिकायमयै-
कव्यत्वान्नोक्तस्य सान्तोऽसौ, ‘आयामविकल्पेणं’ ति आयामो—
दैर्घ्यं विष्कम्भो—विस्तारः ‘परिक्रमेवेणं’ति परिधिना ‘भुविमु-
यं’ति अभवन् इत्यादिभिश्च पदैः पूर्वोक्तपदानामेव तात्पर्यमुक्तं
‘ध्रुवे’ ति ध्रुवोऽचतुर्त्वात् स चानियतरूपोऽपि स्यादत आह—
‘णियए’ति नियत एकस्वरूपत्वात्, नियतरूपः कादाचित्कोऽपि
स्यादत आह—‘सासए’ति आह—‘अकखए’ति अक्षयोऽविना-
शित्वात् अयं च बहुतरप्रदेशापेक्षयाऽपि स्यादित्यत आह—
‘अव्वए’ति अव्ययस्तत्प्रदेशानामव्ययत्वात्, अयं च
द्रव्यतयाऽपि स्यादित्याह—‘अवट्ठिए’ति अवस्थितः पर्यायाणा-
मनन्ततयाऽवस्थितत्वात्, किमुक्तं भवति ?—नित्य इति,
वण्णपज्जव’ति वर्णविशेषा एकगुणकालत्वादयः, एवमन्येऽपि
गुरुतधुपर्यवास्तद्विशेषा वादरस्कन्धानाम्, अणुरुलधुपर्यवा
अणूनां सूक्ष्मस्कन्धानाममूर्तानां च, ‘नाणपज्जव’ति
ज्ञानपर्याया ज्ञानविशेषा बुद्धिकृता वाऽविभागवारच्छेदाः,
अनन्ता गुह्यलधुपर्यावा औदारिकादिशरीराण्याश्रित्य, इतरे तु
कार्मणादिद्रव्याणि जीवस्वरूपं चाश्रित्येति। ‘जेवि’ य ते
खंदया ! पुच्छ’ति अनेन समग्रं सिद्धिप्रश्नसूत्रमुपलक्षणत्वा-
च्चोत्तरसूत्रांशश्च सूचितः तच्च द्वयमप्येवम्—‘जेवि य ते खंदया
इमेयारूवे जाव किं सअन्ता सिद्धी तस्सवि य एणं अयमट्ठे, एवं

खलु मए खंदया ! चउव्विहा, सिद्धी परणत्ता, तंजहा—दव्वञ्चो
 खेत्तञ्चो कालञ्चो भावञ्चोत्ति, दव्वञ्चोणं एग्गा सिद्धि'त्ति, इह
 सिद्धिर्यद्यपि परमार्थतः सकलकर्मक्षयरूपा सिद्धाधाराऽऽकाश-
 देशरूपा वा तथाऽपि सिद्धाधाराकाशदेशप्रत्यासन्नत्वेनेपत्त्याभारा
 पृथिवी सिद्धिरुक्ता, 'किञ्चिविसेसाहिए परिक्खेवेण' ति किञ्चि-
 न्नन्यूनगव्यूतद्वयाधिके द्वे योजनशते एकोनपञ्चाशदुत्तरे भवत
 इति । 'वल्लयमरणे'त्ति वल्लतो—बुभुक्षपरिगतत्वेन वल्लवल्गयमा-
 नस्य—संयमाद्वा भ्रश्यतो (यत्) मरणं तद्वल्लन्मरणं, तथा
 वशेन—इन्द्रियवशेन ऋतस्य—पीडिताय दीपकलिकारूपाक्षिप्त-
 चक्षुषः शलभस्येव यन्मरणं तद् वशार्तमरणं, तथाऽन्तःशल्यस्य
 द्रव्यतोऽनुद्धृततोमरादेः भावतः सातिचारस्य यन्मरणं तदन्त-
 शल्यमरणं, तथा तस्म भवाय मनुष्यादेः सतो मनुष्यादावेव
 बद्धायुषो यन्मरणं तत्तद्भवमरणं, इहं च तरतिरश्चामेवेति,
 'स्तथोवाडणे'त्ति शस्त्रेण—क्षुरिकादिना अवपाटनं—विदारणं
 देहस्य यस्मिन्मरणे तच्छस्त्रावपाटनम्, 'वेहाणप्पे'त्ति विहायसि
 —आकाशे भवं वृक्षशाखाद्युद्धन्धनेन यत्तन्निरुक्तिवशाद्वैहानसं,
 गिद्धपट्टे'त्ति गृध्रैः पक्षिविशेषैर्गृध्रैर्वा—मांसलुब्धैः शृगालादिभिः
 स्पृष्टस्य यत्तद्गृध्रस्पृष्टं वा गृध्रैर्वा भक्षितस्य—स्पृष्टस्य यत्तद्गृध्रस्पृ-
 ष्टम् । 'दुवालसंविहेणं बालमरणे ण'त्ति उपलक्षणत्वादन्यानपि
 बालमरणान्तःपातिना मरणेन म्रियमाण इति 'वड्ढइ वड्ढइ'त्ति

संसारवर्द्धनेन भृशं वर्धते जीवः, इदं हि द्विर्वचनं भृशार्थे इति । 'पाओवगमणे'ति पादपस्येवोपगमनम्—अस्पन्दतयाऽवस्थानं पादपोमगमनं, इदं च चतुर्विधा-हारपरिहारनिष्पन्नमेव भवतीति । 'नीहारिमेय'ति निहारिण विवृत्तं यतन्निर्हारिमं प्रतिश्रये यो म्रियते तस्यैतत्, तत्कडेवरस्य निर्हारणात्, अनिर्हारिमं तु योऽटव्यां म्रियते इति । यच्चान्यत्रेह स्थाने इंगितमरणमभिधीयते तद्वक्तृप्रत्याख्यानस्यैव विशेष इति नेह भेदेन दर्शितमिति ।

मूलम्—अह भंते ! ओदणे कुम्मासे सुरा एए शं किंसरी-राति वत्तव्वं सिया ?, गोयमा ! ओदणे कुम्मासे सुराए य जे वणे दव्वे एए शं पुव्वभावपन्नवणं पडुच्च वणस्सइजीवसरीरा तओ पच्छा सत्थातीया सत्थपरिणामिआ अगणिज्झामिआ अगणिज्झूसिया अगणिसेविया अगणिपरिणामिया अगणिजीव-सरीरा वत्तव्वं सिया, सुराए य जे दवे एए शं पुव्वभावपन्नवणं पडुच्च आउजीवसरीरा, तओ पच्छा सत्थातीया जाव अगणिकायसरीराति वत्तव्वं सिया । अहन्नं भंते ! अए तंवे तउए सीसए उवले कसड्डिया एए शं किंसरीराइ वत्तव्वं सिया ?, गोयमा ! अए तंवे तउए सीसए उवले कसड्डिया,

जैनागमो मे स्याद्वाद

एए ण पुव्वभावपन्नवणं पडुच्च पुढविजीवसरीर
तओ पच्छा, सत्थातीया जाव अगणिजीवसरीराति
वत्तव्वं सिया । अहणं भंते ! अदी अट्टिज्झामे
चम्मो चम्मज्झामे रंमे २ सिंमे २ खुरे २ नखे २
एते णं किंसरीराति वत्तव्वं सिया ? गोयमा !
अदी चंमे रोमे सिंमे खुरे नहे एए णं तसपाण-
जीवसरीरा अट्टिज्झामे चम्मज्झामे रंमज्झामे
सिंम० खुर० णहज्झामे एए णं पुव्वभावपण-
वणं पडुच्च तसपाणजीवसरीरा तओ पच्छा
सत्थातीया जाव अगणिजीवत्ति वत्तव्वं सिया ।
अह भंते ! इंगाले छारिए भुसे गोमए एस णं
किंसरीरा वत्तव्वं सिया ? गोयमा ! इंगाले
छारिए भुसे गोमए एए णं पुव्वभावपणवणं
पडुच्च एगिंदियजीवसरीरप्पओगपरिणमियावि
जाव पंचिंदियजीवसरीरप्पओगपरिणमियावि तओ
पच्छा सत्थातीया जाव अगणिजीवसरीराति
वत्तव्वं सिया ॥

—श्री भगवती सूत्र ५।२।१८१ ॥

टीका—‘अहे’ त्यादि, ‘एए ण’ ति एतानि एमित्यलंकारे
‘र’ति केषां शरीराणि किंसरीराणि ? ‘सुराप य जे घणो’

सुराया द्वे द्रव्ये स्याता घनद्रव्य द्रवद्रव्य च तत्र अद् घनद्रव्य
 'पुव्वभावपन्नवणं पडुच्च'ति अतीतपर्यायप्ररूपणामङ्गीकृत्य
 वनस्पतिशरीराणि, पूर्व हि ओदनादयो वनस्पतयः. 'तद्यो पन्छ'ति
 वनस्पतिजीवशरीरवान्यत्वानन्तरमग्निजीवशरीराणीति वक्तव्यं
 स्यादिति सम्बन्धः, किम्भूतानि सन्ति ? इत्याह—'सत्थातीय'ति
 शस्त्रेण—उद्धूखलमुशल्यन्त्रकादिना करणभूतेनातीतानि—अति-
 क्रान्तानि पूर्वपर्यायमिति शस्त्रातीतानि 'सत्थपरिणामिय'ति
 शस्त्रेण परिणामितानि—कृतानि नवपर्यायाणि शस्त्रपरिणा-
 मितानि, ततश्च 'अगणिष्मामिय'ति बन्दिना ध्यामितानि—
 श्यामीकृतानि स्वकीयवर्णत्याजनात्, तथा 'अगणिष्मूसिय'ति
 अग्निना शोषिताति पूर्वस्वभावक्षयणात् अग्निना सेवितानि
 वा 'जुपी प्रीतिसेवनयोः' इत्यस्य धातोः प्रयोगात् 'अगणि-
 परिणामियाइ'ति संजाताग्निपरिणामानि उष्णयोगादिति,
 अथवा 'सत्थातीता' इत्यादौ शस्त्रमग्निरेव 'अगणिष्मामिया'
 इत्यादि तु तद् व्याख्यानमेवेति 'उवले'ति इह दग्धपाषाणः.
 'कसट्टिय'ति क(षप)ट्टः, 'अट्टिष्मामि'ति अस्थि च तद्ध्या-
 मं च—अग्निना ध्यामलीकृतम्—आपादितपर्यायान्तरमित्यर्थः,
 'इंगाले' इत्यादि, 'अङ्गारः' निर्व्वलितेन्धनम्; 'छारिए'ति
 क्षारकं—भस्म, 'भुसे'ति वुसं 'गोमय'ति छगणम्, इह च
 वुसगोमयौ भूतपर्यायानुवृत्त्या दग्धावस्थौ ग्राह्यौ अन्यथाऽग्नि-
 ध्यामितादिवक्ष्यमाणविशेषाणामनुपपत्तिः स्यादिति । एते

पूषभावप्रज्ञापनां प्रतीत्यैकेन्द्रियजीवैः शरीरतया प्रयोगेण—
 स्वव्यापारेण परिणामिता ये ते तथा एकेन्द्रियशरीराणीत्यर्थः,
 'अपि समुच्चये, यावत्करणाद् द्वीन्द्रियजीवशरीरपरिणामिता
 अपीत्यादि दृश्यं, द्वीन्द्रियादिजीवशरीरपरिणतत्वं च— यथासम्भ-
 वमेव न तु सर्वपदेतिवर्तित, तत्र पूर्वमङ्गारो भस्म चैकेन्द्रिया दश-
 रीररूपं भवति, एकेन्द्रियादिशरीराणामिन्धनत्वात्, बुधं तु
 यवगोधूमहरितावस्थायामेकेन्द्रियशरीरम्, गोमयस्तु तृणाद्यव-
 स्थायामेकेन्द्रियशरीरम्, द्वीन्द्रियादीनां तु गवादिभिर्भक्षणे
 द्वीन्द्रियादिशरीरमिति ॥

मूलम्—अन्नउत्थिया णं भंते ! एवमातिक्खंति जाव परुवेति
 सव्वे पाणा सव्वे भूया सव्वे जीवा सव्वे सत्ता
 एवंभूयं वेदणं वेदेति से कहमेयं भंते ! एव ?
 गोयमा ! जएणं ते अन्नउत्थिया एवमातिक्खंति
 जाव वेदेति जे ते एवमाहंसु मिच्छा ते एव-
 माहंसु, अहं पुण गोयमा ! एवमातिक्खामि जाव
 परुवेमि अत्थेगइया पाणा भूया जीवा सत्ता एवंभूयं
 वेदणं वेदेति अत्थेगइया पाण भूया जीवा सत्ता
 अनेवंभूयं वेदणं वेदेति, से केणट्ठेण अत्थेगतिया ?
 तं चेव उच्चारयेय्व्वं, गोयमा ! जे णं पाणा भूया
 जीवा सत्ता जहा कडा कम्मा तहा वेदणं वेदेति ते णं

पाशा भूया जीवा सत्ता एवंभूयं वेदणं वेदेति,
 जे णं पाशा भूया जीवा सत्ता जहा कडा कम्मा
 तो तहा वेदणं वेदेति तेणं पाशा भूया जीवा सत्ता
 अनेवंभूयं वेदणं वेदेति स तेणट्ठेणं तहेव ।
 नेरइया णं मते ! किं एवंभूयं वेदणं वेदेति अनेवं-
 भूयं वेदणं वेदेति ? गोयमा ! नेरइया णं एवं-
 भूयं वेदणं वेदेति अनेवंभूयंपि वेदणं वेदेति ।
 से केणट्ठेणं तं चेव ? गोयमा ! जे णं नेरइया
 जहा कडा कम्मा तहा वेयणं वेदेति ते णं
 नेरइया एवंभूयं वेदणं वेदेति जे णं नेरइया
 जहा कडा कम्मा तो तहा वेदणं वेदेति ते णं
 नेरइया, अनेवंभूयं वेदणं वेदेति, से तेणट्ठेणं, एवं
 जाव वेमाणिआ संसारमंडलं नेयव्वं ॥

—श्री भगवता सूत्र १।१।२०२ ।।

टीका—तत्र च 'एवंभूयं वेयणं'ति यथाविधं कर्म निबद्ध-
 वप्रकारतयोत्पन्नां 'वेदनां' असात्तादिकर्मोदयं 'वेदयंति' अनु-
 वन्ति, मिथ्यात्वं चैतद्वादिनामेवं—न हि यथा बद्धं तथैव सर्वं
 स्मिन्नुभूयते, आयुः कर्मणोः व्यभिचारात्, तथाहि—दीर्घकाला-
 भवनीयस्याप्यायुः कर्मणोऽल्पीयसाऽपि कालेनानुभवो भवति,
 अल्पमन्यथाऽपमृत्युव्यपदेशः सर्वजनप्रसिद्धः स्यात् ? अथ वा

महासयुगादौ जीवलक्षणाभ्येकदैव मृत्युरूपपदोतेति ?; 'अणोर्वं भूयपि'स्ति यथा बद्धं कर्म नैवंभूता अनेवंभूता अतस्तां, श्रूयन्ते ह्यागमे कर्मणाः स्थितिविधातरसधातादय इति, 'एव जाव वेमाणिया संसारमंडलं नेयव्वं'स्ति 'एवं' उक्तक्रमेण वैमानिकावसानं संसारिजीवचक्रवालं नेतव्यमित्यर्थः ॥

मूलम्—जीवा णं भंते ! किं महावेयणा महानिज्जरा ? महा वेदणा अप्प निज्जरा २ अप्पवेदणा महानिज्जरा ३ अप्पवेदणा अप्पनिज्जरा ४ ? गोयमा ! अत्थेमइया जीवा महावेदणा महानिज्जरा ? अत्थेमगतिया जीवा महावेदणा अप्पनिज्जरा २ अत्थेमगतिया जीवा अप्पवेदणा महानिज्जरा ३ अत्थेमगतिया जीवा अप्पवेदणा अप्पनिज्जरा ४ । से केशट्ठेणं ० ? गोयमा ! पडिमापडिवन्नए अणुगारे महावेदणे महानिज्जरे, छट्ठसत्तमासु पुढवीसु नेरइया महावेदणा अप्पनिज्जरा, सेलेसिं पडिवन्नए अणुगारे अप्पवेदणे महानिज्जरे, अपुत्तरोववाइया देवा अप्पवेदणा अप्पनिज्जरा, सेवं भंते २ त्ति ॥

—श्री भगवती सूत्र ६।१।२३॥

लम्—वत्थस्स णं भंते ! पोग्गलोवचए किं सादीए सपज्जवसिए ? सादीए अपज्जवसिते २ अणादीए

सपञ्ज० ३ अणा० अपञ्ज० ४ ?, गोयमा !
 वत्थस्स णं योग्गलोवचए सादीए सपञ्जवसिए
 नो सादीए अप० नो अणा० स० नो अणा० अप०।
 जहा णं भंते ! वत्थस्स योग्गलोवचए सादीए
 सपञ्ज० नो सादीए अप० तो अणा० सप० नो
 अणा० अप० तहा णं जीवाणं कम्मोवचए पुच्छा,
 गोयमा ! अत्थेगतिवाण जीवाणं कम्मोवचए
 सादाए सपञ्जवसिए अत्थे० अणादीए सपञ्जव-
 सिए अत्थे० अणादीए अपञ्जवसिए नो चेव णं
 जीवाणं कम्मोवचए सादीए अप० । से केण० ?,
 गोयमा ! ईरियावहियावंधयस्स कम्मोवचए सादीए
 सप० भवसिद्धियस्स कम्मोवचए अणादीए सप-
 ञ्जवसिए अभवसिद्धियस्स कम्मोवचए अणादीए
 अपञ्जवसिए, से तेणहणं गोयमा ! एवं वुच्चति
 अत्थे० जीवाणं कम्मोवचए सादीए नो चेव णं
 जीवाणं कम्मोवचए सादीए अपञ्जवसिए, वत्थे णं
 भंते ! किं सादीए सपञ्जवसिए चउभंगो ?, गोयमा !
 वत्थे सादीए सपञ्जवसिए अवसेसा तिनिवि एडि-
 सेहेयव्वा । जहा णं भंते ! वत्थे सादीए सपञ्जव-
 सिए नो सादीए अपञ्ज० नो अणादीए सप० नो

अनादीया अपञ्जवसिया तहा एं जीवाणं किं
 सादीया सपञ्जवसिया ? चउभंगो पुच्छो, गोयमा !
 अत्थेगतिया सादीया सपञ्जवसिया चत्तारिवि
 भाणियव्वा । से कैणद्वेणं ० ? गोयमा ! नेरतिया
 तिरिक्खजोणिया मनुस्सा देवा गतिरामति पडुच्च
 सादीया सपञ्जवसिया सिद्धि द्वा गतिं पडुच्च
 सादीया अपञ्जवसिया, भवसिद्धिया लद्धि पडुच्च
 अणादीया सपञ्जवसिया अभवसिद्धिया संसारं
 पडुच्च अणादीया अपञ्जवसिया, से तेणद्वेणं ॥

—श्री भागवती सूत्र ६२।२३५ ॥

टीका—साविद्वारे 'ईरिवावहिंयवंचयस्से' त्यदि, ईर्वापयो—
 गमनमार्गस्तत्रभवमैर्यापथिकं, 'केवलयोगप्रयोजित्ययं कर्मत्वर्थः
 तद्वन्धकस्योपशान्तमोहस्य क्षीणमोहस्य सयोगिकेवनिश्चेत्यर्थः,
 ऐर्यापथिककर्मणोः हि ? अत्रद्वयस्य बन्धनात् सादित्वं, अयोग्य-
 वस्थायां श्रेणिप्रतिपातौ वाऽबन्धनात् सपर्यवसितत्वं, 'गतिरागहं
 पडुच्च'ति नामकादिगतौ गमनमश्रित्य सादयः आगमनमाश्रित्य
 सपर्यवसिता इत्यर्थः 'सिद्धा गइं पडुच्च साइया अपञ्जवसिया'ति,
 इहाक्षेपपरिहारावेवम्—'सईअपञ्जवसिया सिद्धा नं य नाम
 तीयकालमि । असिं कयाइवि सुण्णा सिद्धी सिद्धेहिं सिद्धति ॥१॥
 सब्बं सइ सरीरं न य नामादि मय देहसब्बभावो । कालाणाइ-

साण्यो जहा वं राइ'दियाईणं ॥ २ ॥ सच्चो साई सिद्धो न
यादिमो विजई तहा तं च । सिद्धी सिद्धा सया निदिद्धा रोह-
पुच्छाए ॥ ३ ॥"सि, 'तं च'त्ता तच्च सिद्धानादित्वमिष्यते.
यतः 'सिद्धी सिद्धा ये'त्यादीति । 'भवसिद्धिया लद्धिमित्यादि,
भवसिद्धिकानां भव्यवत्तन्धिः सिद्धत्वेऽपैतीतिकृत्वाऽनादि-
सपर्यवसिता चेति ॥

मूलप्र-समणोवासयस्स णं भंते ! पुब्बामेव तसपाणसमा-
रंमे पच्चक्खाए भवति । पुढविममारंमे अपच्चक्खाए
भवइ से ण पुढविं स्वणमाणेऽणणधरं तस्मां पाणं
विहिंसेज्जा से णं भंते ! तं वयं अतिचरति ?,
णो तिण्ढे समट्ठे, नो खलु से तस्स अतिवायाए
आउड्ढति ॥ समणोवासयस्स णं भंते ! पुब्बामेव
वणस्सइममारंमे पच्चक्खाए से य पुढविं स्वणमाणे
अन्नयरस्स रुक्खस्स मूलं छिंदेज्जा से णं भंते ।
तं वयं अतिचरति ?, णो तिण्ढे समट्ठे, नो
खलु तस्स अइवायाए आउड्ढति ॥

—श्री भगवती सूत्र ॥ ७१॥२६३ ॥

टीका-तत्र च 'तसपाणसमारंमे'ति, त्रसबंधः 'नो खलु
से तस्स अतिवायाए आउड्ढति न खलु असौ 'तस्स' त्रसपाणस्य
अतिपाताय'वधाय 'आउड्ढति' प्रवर्तते इति न संकल्पयधोऽसौ,

वधादेव च निवृत्तोऽसौ न चष तस्य सपन्न इति नास वति
व्रतं ॥

—से रणूणं भंते ! मव्वपाणेहिं सव्वजीवेहिं सव्वसत्तेहिं
पच्चक्खायमिति वदमाणस्स सुपच्चक्खायं भवति
दुपच्चक्खायं भवति ?, गोयमा ! जस्स णं सव्व-
पाणेहिं जाव सव्वसत्तेहिं पच्चक्खायमिति वयमा-
णस्स णो एवं अभिसमन्नागयं भवति इमे जीवा
इमे अजीवा इमे तसो इमे थावरा तस्स णं सव्व-
पाणेहिं जाव मव्वसत्तेहिं पच्चक्खायमिति वदमाणस्स
णो सुपच्चक्खायं भवति दुपच्चक्खायं भवति एवं
खलु से दुपच्चक्खाई सव्वपाणेहिं जाव मव्वसत्तेहिं
पच्चक्खायमिति वदमाणो नो सच्चं भासं भासइ
मोसं भाच्चं भासइ, एवं खलु से सुसावाई सव्व-
पाणेहिं जाव सव्वसत्तेहिं तिविहं तिविहेणं असंजय-
विरयपडिहयपच्चक्खायपावकम्मे सकिरिए असांबुडे
एगंतदंडे एगंतबाले यावि भवति, जस्स णं सव्व-
पाणेहिं जाव सव्वसत्तेहिं पच्चक्खायमिति वदमाणस्स
एव अभिसमन्नागयं भवइ—इमे जीवा इमे अजीवा
इमे तसो इमे थावरा तस्स णं सव्वपाणेहिं जाव
सव्वसत्तेहिं पच्चक्खायमिति वदमाणस्स सुपच्चक्खायं

भवति नो दुपच्चक्खायं भवति, एवं खलु से सुपच्च-
क्खाई सव्वपाणेहिं जाव सव्वसरोहिं पच्चक्खायमिति
वयमाणे सच्चं भासं भासइ नो मोसं भासं भासइ,
एवं खलु से सच्चवादी सव्वपाणेहिं जाव सव्वसरोहिं
तिविहं तिविहेणं संजयविरयपडिहयपच्चक्खायपाव-
कम्मे अकिरिए संवुडे एगंतपंडिए यावि भवति, से
तेणट्ठेणं गोयमा ! एवं वुच्चइ जाव सिय दुपच्चक्खायं
भवति ॥

—श्री भगवती सूत्र ७।२।२७१ ॥

टीका—‘से नूण’मित्यादि, ‘सिय सुपच्चक्खायं सिय
दुपच्चक्खायं’ इति प्रतिपाद्य यत्प्रथमं दुष्प्रत्याख्यातत्ववर्णनं कृतं
तद्यथासंख्यन्यायत्यागेन यथाऽऽसन्नतान्यायमङ्गीकृत्येति द्रष्टव्यं,
‘नो एवं अभिसमन्नागयं भवति’ इति ‘नो’ नैव ‘एवं’ इति वक्ष्यमाण
प्रकारमभिसमन्वागतं—अवगतं स्यात्, ‘नो सुपच्चक्खायं भवति’ इति
ज्ञानाभावेन यत्रावदपरिपालनात् सुप्रत्याख्यातत्वाभावः, ‘सव्व-
पाणेहिं’ इति सर्वप्राणेषु ४ ‘तिविहं’ इति त्रिविधं कृत्कारितानुमतिभेद-
भिन्नं योगमाश्रित्य ‘तिविहेण’ इति त्रिविधेन मनोवाक्कायलक्षणेन
करणेन ‘असंजयविरयपडिहयपच्चक्खायपावकम्मे’ इति संयतो—वधा-
दिपरिहारे प्रयतः विरतो—वधादेर्निवृत्तः प्रतिहतानि—अतीतकाल-
सम्बन्धीनि निन्दातः प्रत्याख्यातानि चानागतप्रत्याख्यानेन पापानि

कर्माणि येन सः तथा, ततः संयतादिपदानां कर्मभावेस्ततस्तत्रि-
पेयान् असंयतविरतप्रतिहतप्रत्याग्यानशापकर्म, अत एव 'सकि-
रिप्'ति कार्याख्यादिक्रियायुक्तः सकर्मकत्वतो वाऽत एव 'असंबुद्धे'ति
असंबुताश्रवद्वारः अत एव 'एगंतदंडे'ति एकान्तेन—सर्वथैव परान्
दण्डयतीत्येकान्तदण्डः, अत एव 'एकान्तवातः' सर्वथा बालि-
शोऽङ्ग इत्यर्थः ॥

मूलम्—जीवाणं भंते ? किं सासया असासया ? गोयमा !
जीवा सिय सासया सिय असासया । से केशट्ठेणं
भंते ! एवं बुच्चइ—जीवा सिय सासया सिय
असासया ? गोयमा ! दव्वट्ठयाए सासया सासया
ट्ठयाए असासया, से तेणट्ठेणं गोयमा ! एवं
बुच्चइ—जाव सिय असासया । नेरइया णं भंते !
किं सासया असासया ? एवं जहा जीवा तहा
नेरइयावि, एवं जाव वेमाणिया जाव सिय सासया
सिय असासया । सेव भंते ! सेव भंते ! ॥

—श्री भगवती सूत्र ॥१२॥१॥

टीका—'दव्वट्ठयाए'ति जीवद्रव्यत्वेनेत्यर्थः 'सासया'ति

- नारकादिपर्यायत्वेनेत्यर्थः ॥

मूलम्—नेरइया णं भंते ! किं सासया असासया ? गोयमा !
सिय सासया सिय असासया, से केशट्ठेणं भंते !

एवं वुच्चइ नेरइया सिय सासया, सिय असासया?
 गोयमा ! अव्वोच्छित्तिणयट्ठयाए सासया वोच्छि-
 त्तिणयट्ठयाए असासया, से तेणट्ठेणं जाव मिय
 सासया सिय असासया, एवं जाव वेमाणिंया जाव
 सिय असासया । सेवं भंते ! सेवं भंते त्ति ॥

— श्री भगवती सूत्र ॥७३२८०॥

टीका—‘अव्वोच्छित्तिणयट्ठयाए’ति अव्यवच्छित्तिप्रधाना
 नयोऽव्यवच्छित्तिनयस्तस्यार्थो — द्रव्यमव्यवच्छित्तिनयार्थस्तद्
 भावस्तत्ता तथाऽव्यवच्छित्तिनयार्थतया—द्रव्यमाश्रित्य शाश्वता
 इत्यर्थः, ‘वोच्छित्तिणयट्ठयाए’ति व्यवच्छित्तिप्रधानो यो
 नयस्तस्य योऽर्थः—पर्यायलक्षणस्तस्य यो भावः सा व्यवच्छित्तिनया
 र्थता तथा २ पर्यायानाश्रित्य अशाश्वता नारका इति ॥

मूलम्—जीवेणं भंते ! किं पोग्गली पोग्गले ?, गोयमा !
 जीवे पोग्गलीवि पोग्गलेवि, से केणट्ठेणं भंते !
 एवं वुच्चइ जीवे पोग्गलीवि पोग्गलेवि ?, गोयमा !
 से जहा नामए छत्तेणं छत्ती दंडेणं दंडी घडेणं घडी
 पडेणं पडी करेणं करी एवामेव गोयमा ! जीवेवि
 सोइदियच्चकिंस्वदियघाणिंदियजिड्ढिंभदियफासिंदियाइं
 षडुच्च पोग्गली, जीवं षडुच्च पोग्गले, से तेणट्ठेणं
 गोयमा ! एवं वुच्चइ जीवे पोग्गलीवि पोग्गलेवि ।

नेरइए णं भंते ! किं पोग्गली०?, एवं चेव, एव
 जाव वेमाणिया नवरं जस्स जइ इंदियाइं, तस्स
 तइवि भाणियच्चाइं । सिद्धे णं भंते ! किं पोग्गली
 पोग्गले ?, गोयमा ! नो पोग्गली पोग्गले, से केण-
 ढेणं भंते ? एवं बुच्चइ जाव पोग्गले ?, गोयमा !
 जीवं पडुच्च, से तेणट्ठेणं गोयमा ! एवं बुच्चइ सिद्धे
 नो पोग्गली पोग्गले । सेव भंते ! सेव भंते त्ति ॥

—श्री भगवती सूत्र ८२।३६१ ॥

टीका—‘पोग्गलीवि’त्ति पुद्गलाः—श्रोत्रादिरूपा विद्यन्ते।
 यस्यासौ पुद्गली, ‘पुग्गलेवि’त्ति पुद्गल इति संज्ञा जीवस्य।
 ततस्तद्योगात् पुद्गल इति। एतदेव दर्शयन्नाह ‘से केणढेण’
 मित्यादि ॥

मूलम्—तए णं से जमाली अणुगारे अन्नया कयाचि ताओ
 रोगायंकाओ विप्पमुक्के हहे तुहे जाए अरोए
 बलियसरीरे सावत्थीओ नयरीओ कोट्टयाओ चेइ-
 याओ पडिनिक्खमइ २ पुच्चाणुपुत्थि चरमाणे
 गामाणुगामं दूइअमाणे जेणोव चंपानयरी जेणोव
 पुन्नमहे चेइए जेणोव समणे भगवं महावीरे तेणोव
 उवागच्छइ २ समणस्स भगवओ महावीरस्स अदूर-
 सामंते ठिच्चा समणं भगवं महावीरं एवं वयासी—

जहा ण देवाणुप्पियाण बहवे अतेवासी समणा
निग्गंथा छउमत्था भवेत्ता छउमत्थावक्कमणेणं
अवक्कंता णो खलु अहं तथा छउमत्ये भविता
छउमत्थावक्कमणेणं अवक्कमिए, अहन्नं उप्पन्नणा-
णदंसणधरे अरहा जिणे केवली भविता केवलि-
अवक्कमणेणं अवक्कमिए, तए णं भगवं गोयमे
जमालिं अणगार एवं वयासी-णो खलु जमाली?,
केवलिस्स णाणे वा दंसणे वा सेलंसि वा थंभंसि
वा थूभंमि वा आवरिज्जइ वा शिवारिज्जइ वा, जइ
णं तुमं जमाली! उप्पन्नणाणदंसणधरे अरहा जिणे
केवली भविता केवलिअवक्कमणेणं अवक्कंते तो
णं इमाइं दो वागरणाइं वागरेहि-सासए लोए
जमाली! असासए लोए जमाली?, सासए जीवे
जमाली! असासए जीवे जमाली?, तए णं से
जमाली अणगारे भगवया गोयमेणं एवं वुत्ते समाणे
संकिए कंखिए जाव कलुससमावन्ने जाए यावि
होत्था, णो संचाएति भगवओ गोयमस्स किंचिवि
पमोक्खमाइक्खिए तुसिणीए संचिट्ठइ जमालीति
समणे भगवं महावीरे जमालिं अणगारं एवं वयासी-
अत्थि णं जमाली ममं बहवे अतेवासी समणा

निगंथा छउमत्था जे शं एयं वागरणं वागरित्तए,
 जहा शं अहं, नो चेव शं एयप्पगारं भासं भासित्तए
 जहा शं तुमं; सासए लोए जमाली ! जन्न कयावि
 शासि श कयावि श भवति श कदावि श भविस्सइ
 भुविं च भवइ य भविस्सइ य धुवे शितिए सासए
 अक्खए अक्खए अवटिठए शिच्चे, असासए लोए
 जमाली ! जओ ओसप्पिणी भवित्ता उस्सप्पिणी
 भवइ उस्सप्पिणी भवित्ता ओसप्पिणी भवइ, सासए
 जीवे जमाली ! जं न कयाइ शासि जाव शिच्चे
 असासए जीवे जमाली जन्नं नेरइए भवित्ता तिरिक्ख-
 जोशिए भवइ तिरिक्खजोशिए भवित्ता मणुस्से
 भवइ मणुस्से भवित्ता देवे भवइ ॥

—श्री भगवती सूत्र ६।३३।३८७ ॥

टीका— न कयाइ नासी'त्यादि तत्र न कदाचिन्नासीदना-
 देत्वात् न कदाचिन्न भविष्यति अपर्यवसितत्वात्, किं तर्हि ?,
 'भुविं चे'त्यादि ततश्चायं त्रिकालभावित्वेनाचलत्वादेव शाश्वत
 प्रतिक्रणमप्यसत्त्वस्याभावात् शाश्वतत्वादेव 'अक्षयः'
 निर्विनाशः, अक्षयत्वादेवाव्ययः प्रदेशापेक्षया, नित्यस्तदुभया-
 पेक्षया, एकार्था वैते शब्दाः ॥

लम्—सुत्तं भंते ! साहू, जागरियत्तं साहू ? जयंती !

अत्येगइयाणं जीवाणं सुत्तत्तं साहू अत्येगतियाणं
जीवाणं जागरियत्तं साहू, से केणइणं भंते ! एवं
वुच्चइ अत्येगइयाणं जाव साहू ?, जयंती ! जे इमे
जीवा अहम्मिया अहम्माणुया अहम्मिदा अहम्म-
क्खाई अहम्मपलोई अहम्मपलजमाणा अहम्मसमुदा-
यारा अहम्मेणं चेव वित्ति कप्पेमाणा विहरंति एएसि
णं जीवाणं सुत्तत्तं साहू, एए णं जीवा सुत्ता समाणा
नो बहूणं पाणभूयजीवसत्ताणं दुक्खणयाए संजोय-
याए जाव परियावणयाए वड्ढंति, एए णं जीवा
सुत्ता समाणा अप्पाणं वा परं वा तदुभयं वा नो
बहूहिं अहम्मियाहिं संजोयणाहिं संजोएत्तारो भवंति,
एएसि जीवाणं सुत्तत्तं साहू, जयंती ! जे इमे जीवा
धम्मिया धम्माणुया जाव धम्मेणं चेव वित्ति
कप्पेमाणा विहरंति एएसिणं जीवाणं जागरियत्तं
साहू; एए णं जीवा जागरा समाणा बहूणं पाणाणं
जाव सत्ताणं अदुक्खणयाए जाव अपरियावणि-
याए वड्ढंति, ते णं जीवा जागरमाणा अप्पाणं वा
परं वा तदुभयं वा बहूहिं धम्मियाहिं संजोयणाहिं
संजोएत्तारो भवंति, एए णं जीवा जागरमाणा
धम्मजागरियोए अप्पाणं जागरइत्तारो भवंति,

एएसि एं जीवाणं जागरियत्तं साहू, से तेणट्ठेण
जयंती ! एवं वुच्चइ अत्थेगइयाणं जीवाणं सुत्तत्तं
अत्थेगइयाणं जीवाणं जागरियत्तं साहू ॥ वलि-
यत्तं भंते ! साहू दुब्बलियत्तं साहू ?, जयंती !
अत्थेगइयाणं जीवाणं वलियत्तं साहू अत्थेगइयाणं
जीवाणं दुब्बलियत्तं साहू, से केणट्ठेणं भंते ! एवं
वुच्चइ जाव साहू ?, जयंती ! जे इमे जीवा
अहम्मिया जाव विहरंति एएसि एं जीवाणं
दुब्बलियत्तं साहू, एए एं जीवा एवं जहा सुत्तस्स
तहा दुब्बलियस्स वत्तव्या भाणियव्वा, वलियस्स
जहा जागरस्स तहा भाणियव्वं जाव संजोएत्तारो
भवन्ति, एएसि एं जीवाणं वलियत्तं साहू, से
तेणट्ठेणं जयन्ति ! एवं वुच्चइ तं चेव साहू ॥
दक्खत्तं भंते ! साहू आलसियत्तं साहू ?, जयंती !
अत्थेगतियाणं जीवाणं दक्खत्तं साहू अत्थेगतियाणं
जीवाणं आलसियत्तं साहू, से केणट्ठेणं भंते !
एवं वुच्चइ तं चेव जाव साहू ?, जयंती ! जे इमे
जीवा अहम्मिया जाव विहरंति एएसि एं जीवाणं
आलसियत्तं साहू, एए एं जीवा आलसा समाणा
नो बहूणं जहा सुत्ता आलसा भाणियव्वा, जहा

जागरा तहा दक्खा भाणियच्चा जाव संजोएत्तारो
भवन्ति, एए णं जीवा दक्खा समाणा बहूहि आय-
रियवेयावच्चेहि जाव उवज्जाय० थेर० तवस्सि०
गिलाणवेया० सेहवे० कुलवेया० गणवेया० संघवेया०
साहम्मियवेयावच्चेहि अत्ताणं संजोएत्तारो भवन्ति,
एएसि णं जीवाणं दक्खत्तं साहु, से तेणट्ठेणं तं
चेव जाव साहु ॥

—श्री भगवती सूत्र १२।२।४४३॥

टीका—तत्र च 'सुत्तत्तं'ति निद्रावशत्वं 'जागरियत्तं'ति
जागरणं जागरः सोऽस्यास्तीति जागरिकस्तद्भावो जागरिकत्वम्
'अहम्मिय'ति धर्मेण—श्रुतचास्त्रिरूपेण चरन्तीति धार्मिकास्तन्नि-
षेधादधार्मिकाः, कुत एतदेवमित्यत आह—'अहम्माणुया' धर्म—
श्रुतरूपमनुगच्छन्तीति धर्मानुगास्तन्निषेधादधर्मानुगाः, कुतः
एतदेवमित्यत आह—'अहम्मिद्धा' धर्मः—श्रुतरूप एवेष्टो—वल्लभ-
पूजितो वा येषां ते धर्मेष्टाः धर्मिणां वेषा अतिशयेन वा धर्मिणो
धर्मिष्ठास्तन्निषेधादधर्मिष्ठा अधर्मेष्टा अधर्मिष्ठा वा, अत एव
'अहम्मक्खाई' न धर्ममाख्यान्तीत्येवंशीला अधर्माख्यायिनः
अथवा न धर्मात् ख्यातिर्येषां ते अधर्मख्यातयः, 'अहम्मपलोइ'
ति न धर्ममुपादेयतया प्रलोकयन्ति ये तेऽधर्मप्रलोकिन,
'अहम्मपलज्जण'ति न धर्मे प्ररज्यन्ते—आसजन्ति ये तेऽधर्म-

प्ररुद्धना, एवंच 'अहम्भसमुदाचार'ति न धर्मरूपः—चारित्र्यात्मक
समुदाचारः—समाचारः सप्रमोदो वाऽऽचारो ज्ञेयां तं तथा,
अत एव 'अहम्भेण चैवे'त्यादि, 'अधर्मेण' चारित्रश्रुतविरुद्ध-
रूपेण 'वृत्तिं' जीविकां 'कल्पयन्तः' कुर्वाणा इति ॥ अनन्तरं
सुमजाप्रतां साधुत्वं प्ररूपितम् अथ दुर्बलादीनां तथैव तदेव
प्ररूपयन् सूत्रद्वयमाह—'वलियत्ता'ति बलमस्यास्तीति वलिकस्तद-
भावो वलिकत्वं 'दुब्बलियत्ता'ति, दुष्टं बलमस्यास्तीति दुर्बलि-
कस्तद्भावो दुर्बलिकत्वं ॥

मूलम्—नेरइयाणं भंते ! कतिवन्ना जाव कतिफासा पणत्ता ?,
गोयमा ! वेउन्वियतेयाइं पडुच्च पंचवन्ना पंचरसा
दुग्गंधा अट्ठफासा पणत्ता, कम्मरं पडुच्च पंचवन्ना
पंचरसा दुग्गंधा चउफासा पणत्ता, जीवं पडुच्च
अवन्ना जाव अफासा पणत्ता, एवं जाव थणिय०,
पुढविकाइयपुच्छा, गोयमा ! ओरालियतेयगाइं
पडुच्च पंचवन्ना जाव अट्ठफासा पणत्ता, कम्मरं
पडुच्च जहा नेर०, जीवं पडुच्च तहेव, एवं जाव
चउरिदि०, नवरं वाउक्काइया ओरा० वेउ०
तेयगाइं पडुच्च पंचवन्ना जाव अट्ठफासा पणत्ता,
सेसं जहा नेरइयाणं, पंचिदियतिरिक्खजोणिया जहा
वाउक्काइया, मणुस्साणं पुच्छा ओरालियवेउन्विय-

आहारमतेयगाइ पडुच्च पंचवन्ना जाव अट्ठ-
फामा पण्णत्ता, कम्ममं जीवं च पडुच्च जहा
नेर०, वाणमंतरजोइसियवेमाणिया जहा नेर०,
धम्मत्थिकाए जाव पोम्मल० एए सव्वे अवन्ना,
नवरं पोम्म० पंचवन्ने पंचरसे दुग्गेवे अट्ठफामे
पण्णत्ते, शाणावगणिज्जे जाव अंतराइए एयाणि
चउफासाणि, कण्हलेसा णं भंते ! कइवन्ना० ?,
पुच्छा दव्वलेसं पडुच्च पंचवन्ना जाव अट्ठफासा
पण्णत्ता, भावलेसं पडुच्च अवन्ना ४, एवं जाव
सुवकल्लेसा, सम्मदिट्ठि ३ चवसुद्धमणे ४ आभि-
खिण्णोदियणाणे जाव विवमंगणाणे आहारसन्ना
जाव परिग्गहवन्ना एयाणि कम्ममसरीरे चउफामे,
मणजोगे वयजोगे य चउफामे, कायजोगे अट्ठ-
फामे, सामारोवअंगे य अणामारोवअंगे य अवन्ना ।
मव्वदव्वा णं भंते ! कतिवन्ना ?, पुच्छा, गोयमा !
अत्थेगतिया सव्वदव्वा पंचवन्ना जाव अट्ठफामा
पण्णत्ता अत्थेगतिया सव्वदव्वा पंचवन्ना चउ-
फामा पण्णत्ता अत्थेगतिया सव्वदव्वा एगमंधा
एगवण्णा एगरसा दुफासा पन्नत्ता अत्थेगतिया
सव्वदव्वा अवन्ना जाव अफासा पन्नत्ता, एवं

सव्वपएसावि सव्वपज्जवावि, तीयद्धा अवन्नो जाव
अफासा पणत्ता, एवं अणागयद्धावि, एवं
सव्वद्धावि ॥

—श्री भगवती सूत्र १२।१।४५०॥

टीका—‘वेजव्वियतेयाइ’ पडुच्च’त्ति वैक्रियतैजसशरीरे
हि बादरपरिणामपुद्गलरूपे ततो वादस्त्वात्तयोर्नारकाणामष्टस्पर्शत्व,
‘कम्मगं पडुच्च’त्ति कम्मगं हि सूक्ष्मपरिणामपुद्गलरूपमतश्चतुःस्पर्श,
ते च शीतोष्णस्निग्धरुद्धाः ‘धम्मिस्थिकाए, इह यावत्करणादेवं
दृश्यम्—‘अधम्मस्थिकाए आगासस्थिकाए पोगलस्थिकाए
आवलिया मुहुत्ते’इत्यादि, ‘दव्वलेस पडुच्च’त्ति इह
द्रव्यलेश्यावर्णः ‘भावलेसं पडुच्च’त्ति भावलेश्या—आन्तरः
परिणामः, इह च कृष्णलेश्यादीनि परिग्रहसंज्ञाऽवसानानि
अवर्णादीनि जीवपरिणामत्वात्, औदारिकादीनि चत्वारि
शरीराणि पंचवर्णादिविशेषणाणि अष्टस्पर्शानि च बादरपरिणाम-
पुद्गलरूपत्वात् सर्वत्र च चतुःस्पर्शत्वे सूक्ष्मपरिणामः कारणं
अष्टस्पर्शत्वे च बादरपरिणामः कारणं वान्यमिति, ‘सव्वदव्व’त्ति
सर्वद्रव्याणि धर्मास्तिकायादीनि ‘अत्थेगइया सव्वदवा पंचवन्ने’
त्यादि बादरपुद्गलद्रव्याणि प्रतीत्योक्तं, सर्वद्रव्याणां
मये कानिचित्पञ्चवर्णादीनीति भावार्थः ‘चउफासा’
इत्येतच्च पुद्गलद्रव्याण्येव सूक्ष्माणि प्रतीत्योक्तं ‘एगगंधे’इत्यादि च
परमाण्वादिद्रव्याणि प्रतीत्योक्तं, यदाह परमाणुद्रव्यमाश्रित्य-
“कारणमेव तदन्त्यं सूक्ष्मो नित्यश्च भवति परमाणुः । एकरसवर्ण-
गन्धो द्विस्पर्शः कार्यलिङ्गश्च ॥१॥ इति, स्पर्शद्वयं च सूक्ष्मसम्बन्धिनं

चतुर्णां स्पर्शानामन्यतरद्विरुद्धं भवति, तथाहि—स्निग्धोष्णलक्षणां स्निग्धशीतलक्षणां वा रूक्षशीतलक्षणां रूक्षोष्णलक्षणां वेति 'अवयवेषु' त्यादि च धर्मास्तिकायादिद्रव्याख्याश्रित्योक्तं, 'द्रव्याश्रितत्वात्प्रदेशपर्य' वाणां द्रव्यसूत्रानन्तरं तत्सूत्रं, तत्र च प्रदेशा-द्रव्यस्य निर्विभागा अंशाः पर्यवास्तु धर्माः ते चैवकरणदेवं वाच्याः—'सव्वपएसा' णं भंते ! कइवरणा ? पुच्छा, गोयमा ! अत्थेगइया सव्वपएसा पंचवन्ना जाव अट्ठफासा'इत्यादि । एवं च पर्यवसूत्रमपि, इह च मूर्त्तद्रव्याणां प्रदेशाः पर्यवाश्च मूर्त्तद्रव्यवत् पञ्चवर्णादयः अमूर्त्तद्रव्याणां चामूर्त्तद्रव्यवदवर्णादयः इति । अतीताद्धादित्रयं चामूर्त्तत्वादवर्णादिकम् ॥

मूलम्—आया भंते ! रयणप्पभापुढवी अन्ना रयणप्पभा पुढवी ? गोयमा ! रयणप्पभा सिय आया सिय नो आया सिय अवत्तव्वं आयाति य नो आयाइ य, से केश-ट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चइ रयणप्पभापुढवी सिय आया सिय नो आया, सिय अवत्तव्वं आतातिय नो आतातिय ?, गोयमा ! अप्पणो आदिट्ठे आया, परस्स आदिट्ठे नो आया तदुभयस्स आदिट्ठे अवत्तव्वं, रयणप्पभा पुढवी आयातिय नो आयातिय, से तेणट्ठेणं तं चेव जाव नो आयातिय । आया भंते ! सक्करप्पभा पुढवी जहा रयणप्पभा

पुढगी तहा सककरप्पभाएवि एव जाव अहे सत्तामा
 आया भंते ! सोहम्मकप्पे पुच्छा, गोयमा ! सोहम्म
 कप्पे मिय आया सिय नो आया जाव नो आयाति
 य, से केणट्ठेणं भंते ! जाव नो आयातिय ?,
 गोयमा ! अप्पणो आइट्ठे आया परस्स आइट्ठे
 नो आया तदुभयस्स आइट्ठे अवत्तव्वं आताति य
 नो आताति य, से तेणट्ठेणं तं चेव जाव नो
 आयाति य, एवं जाव अच्चुए कप्पे । आया भंते !
 गेविज्जविमाणे अन्ने गेविज्जविमाणे एवं जहा
 रयणप्पमा तहेव, एवं अणुत्तरविमाणावि, एवं
 ईसिपब्भारावि । आया भंते ! परमाणुपोग्गले अन्ने
 परमाणुपोग्गले ? एवं जहा सोहम्म कप्पे तहा
 परमाणुपोग्गलेवि भाणियव्वे ॥ आया भंते ! दुपए-
 सिए खंधे अन्ने दुपएसिए खंधे ?, गोयमा ! दुपए-
 सिए खंधे सिय आया १ सिय नो आया २ सिय
 अवत्तव्वं आयाइ य नो आयातिय ३ सिय आया
 य नो आया य ४ सिय आया य अवत्तव्वं आयाति
 य नो आयाति य ५ सिय नो आया य अवत्तव्वं
 आयाति य नो आयाति य ६, से केणट्ठेणं भंते !
 एवं तं चेव जाव नो आयाति य अवत्तव्वं आयाति

य नो आयाति य गोयमा ! अप्यणो आदिट्ठे आया
 १ परस्स आदिट्ठे नो आया २ तदुभयस्स आदिट्ठे
 अवत्तव्वं दुपएसिए खंधे अयातिय नो आयाति य ३
 देसे आदिट्ठे सव्भापज्जवे देसे आदिट्ठे असव्भा-
 वपज्जवे दुपएसिए खंधे आया य नो आया य
 ४ देसे आदिट्ठे सव्भावपज्जवे देसे आदिट्ठे
 तदुभयपज्जवे दुपएसिए खंधे आया य अवत्तव्वं
 आयाइ य नो आयाइ य ५ देसे आदिट्ठे असव्भा-
 वपज्जवे देसे आदिट्ठे तदुभयपज्जवे दुपएसिए
 खंधे नो आया य अवत्तव्वं आयाति य नो आयाति
 य ६ से तेणट्ठेणं तं चेव जाव नो आयाति य ॥
 आया भंते ! तिपएसिए खंधे अन्ने तिपएसिए
 खंधे १, गोयमा ! तिपएसिए खंधे सिय आया १
 सिय नो आया २ सिय अवत्तव्वं आयाति य नो
 आयाति य ३ सिय आया य नो आया य ४
 सिय आया य नो आयाओ य ५ सिय आयाउ य
 नो आया य ६ सिय आया य अवत्तव्वं आयाति
 य नो आयाति य ७ सिय आयाइय अवत्तव्वाइं
 आयाओ य नो आयाओ य ८ सिय आयाओ य
 अवत्तव्वं आयाति य नो आयाति य ९ सिय नो
 आया य अवत्तव्वं आयाति य नो आयाति य १०

सिध आया य अवत्तव्वाइं आयाओ य नो
 आयाओ य ११ सिध नो आयाओ य अवत्तव्वं
 आयाइ य नो आयाइ य १२ सिध आया य ना
 आया य अवत्तव्व आयाइ य नो आयाइ य १३
 से केणहेणं भंते ! एवं बुच्चइ तिपएसिए खंधे सिध
 आया एवं चेव उच्चारयव्वं जाव सिध आया य नो
 आया य अवत्तव्वं आयाति य नो आयाति य ?,
 गोयमा ! अप्पणो आइठे आया १ परस्स आइठे
 नो आया २ तदुभयस्स आइठे अवत्तव्वं आयाति
 य नो आयाति य ३ देसे आइठे सम्भावपज्जवे
 देसे आइठे असम्भावपज्जवे तिपएसिए खंधे आया
 य नो आया य ४ देसे आइठे सम्भावपज्जवे देसा
 आइठ्ठा असम्भावपज्जवे तिपएसिए खंधे आया य
 नो आयाओ य ५ देसा आइठ्ठा सम्भावपज्जवे
 देसे आदिठे असम्भावपज्जवे तिपएसिए खंधे
 आयाओ य नो आया य ६ देसे आदिठे सम्भा-
 वपज्जवे देसे आदिठे तदुभयपज्जवे तिपएसिए
 खंधे आया य अवत्तव्वं आयाइ य नो आयाइ य ७
 देसे आदिठे सम्भावपज्जवे देसा आदिठ्ठा तदु-
 भयपज्जवा तिपएसिए खंधे आया य अवत्तव्वाइं

आयाउ य नो आयाउ य ८ देसा अदिट्ठा सव्मा-
 वपज्जवा देसे आदिट्ठे तदुभयपज्जवे तिपएसिए खंधे
 आयाउ य अवत्तव्वं आयाति य नो आयाति
 य ९ एए तिन्नि भंगा, देसे आदिट्ठे असव्माव-
 पज्जवे देसे आदिट्ठे तदुभयपज्जवे तिपएसिए खंधे
 नो आया य अवत्तव्वं आयाइ य नो आयाति य १०
 देसे आदिट्ठे असव्मावपज्जवे देसा आदिट्ठा
 तदुभयपज्जवा तिपएसिए खंधे नो आया य अव-
 त्त्ववाइ आयाउ य नो आयाउ य ११ देसा
 आदिट्ठा असव्मावपज्जवा देसे आदिट्ठे तदुभय-
 पज्जवे तिपएसिए खंधे नो आयाउ य अवत्तव्वं
 आयाति य नो आयाति य १२ देसे आदिट्ठे
 सव्मावपज्जवे देसे आदिट्ठे असव्मावपज्जवे देसे
 आदिट्ठे तदुभयपज्जवे तिपएसिए खंधे आया य
 नो आया य अवत्तव्वं आयाति य तो आयाइ य
 १३ से तेषाट्ठेणं गोयमा ! एवं बुच्चइ तिपएसिए
 खंधे सिय आया तं चेव जाव नो आयाति य ॥
 आया भंते ! चउप्पएसिए खंधे अन्ने० पुच्छा,
 गोयमा ! चउप्पएसिए खंधे सिय आया १ सिय
 नो आया २ सिय अवत्तव्वं आयाति य नो आयाति

य ३ सिय आया य नो आया य ४ सिय आया
य अवत्तव्वं ४ सिय नो आया य अवत्तव्वं ४
सिय आया य नो आया य अवत्तव्वं आयाति य
आयाति य १६ सिय आया य नो आया य
अवत्तव्वाइं आयाओ य नो आयाओ य १७ मिय
आया य नो आयाओ य अवत्तव्वं आयाति य नो
आयाति य १८ सिय आयाओ य नो आया य
अवत्तव्वं आयाति य नो आयाति य १९ । से केष-
हेणं भन्ते ! एवं वुच्चइ चउप्पउसिए खंधे गिय
आया य नो आया य अवत्तव्वं तं चेव अट्ठे पडि-
उच्चारयेव्वं ? गोयमा ! अप्पणो आदिट्ठे आया १
परस्स आदिट्ठे नो आया २ तदुमयस्स आदिट्ठे
अवत्तव्वं आयाति य नो आयाति य ३ देसे
आदिट्ठे सब्भावपज्जवे देसे आदिट्ठे असब्भाव-
पज्जवे चउभंगो, देसे आदिट्ठे सब्भावपज्जवे देसे
आदिट्ठे असब्भावपज्जवे देसे आदिट्ठे तदुमय-
पज्जवे चउप्पएसिए खंधे आया य नो आया य
अवत्तव्वं आयाति य नो आयाति य, देसे आदिट्ठे
सब्भावपज्जवे देसे आदिट्ठे असब्भावपज्जवे देसा
आदिट्ठा तदुमयपज्जवा चउप्पएसिए खंधे भवइ

आया य नो आया य अवत्तव्वं आयाओ य नो
 आयाओ य १७ देसे आदिट्ठे सम्भावपज्जवे देसा
 आदिट्ठा असम्भावपज्जवा देसे आदिट्ठे तदुभय-
 पज्जवे चउप्पएसिए खंधे आया य नो आयाओ
 य अवत्तव्वं आयाति य नो आयाति य १८ देसा
 आदिट्ठा सम्भावपज्जवा देसे आदिट्ठे असम्भवप-
 देसे आदिट्ठे तदुभयपज्जवे चउप्पएसिए खंधे आया-
 ओ य नो आया य अवत्तव्वं आयाति य नो
 आयाति य १९ से तेणट्ठेणं गायमां ! एवं बुच्चइ
 चउप्पएसिए खंधे सिय आया सिय नो आया सिय
 अवत्तव्वं निक्खेव ते चेव भंगा उच्चारयव्वा जाव
 नो आयाति य ॥ आया भंते ! पंचपएसिए खंधे
 अन्ने पंचपएसिए खंधे ? गोयमा ! पंचपएसिए
 खंधे सिय आया १ सिय नो आया २ सिय
 अवत्तव्वं आयाति य नो आयाति य ३ सिय
 आया य नो आया य सिय अवत्तव्वं ४ नो आया
 य अवत्तव्वेण य ४ तियगसंजोगे एक्को ण पडइ,
 से केणट्ठेणं भंते ! तं चेव पडिउच्चारयव्वं ?
 गोयमा ! अप्पणो आदिट्ठे आया १ परस्स
 आदिट्ठे नो आया २ तदुभयस्स आदिट्ठे अव-

सर्व २ देसे आदिदठे सव्भावपञ्जवे देसे आदिदठे
 असव्भावपञ्जवे एव' हुयगसंजोगे सव्वे पडंति
 तियगसंजोगे एक्के ण पडइ । छप्पएसियस्स सव्वे
 पडंति जहा छप्पएसिए एव' जाव अणंतपएसिए ।
 सेव' भंते ! सेव' भंतेनि जाव विहरति ॥

—श्री भगवती सूत्र १२।१०।४६६।

टीका—आत्माधिकाराद्वत्तप्रभादिभावानात्मत्वादिभावेन चि-

न्तयन्नाह—‘आत्मा भंते !’ इत्यादि, अतति— सततं गच्छति तांस्तान्
 पर्यायानित्यात्मा ततश्चात्मा—सद्रूपा रत्नप्रभापृथिवी ‘अन्न’ति
 अनात्मा असद्रूपेत्यर्थः ‘सिय आया सिय नो आत्मा’ति स्यात्सती
 स्यादसती ‘सिय अवत्ताव्वं’ति आत्मत्वेनानात्मत्वेन च व्यपदेष्टु-
 मशक्यं वदित्वति भावः, कथमवक्तव्यम् ? इत्याह—आत्मेति
 च नो आत्मेति च वक्तुमशक्यमित्यर्थः, ‘अप्पणो आइहे’ति
 आत्मनः—स्वस्य रत्नप्रभाया एव वर्णादिपर्यायैः ‘आदिष्टे’
 आदेशे सति तैर्व्यपदिष्टा सतीत्यर्थः आत्मा भवति, स्वपर्यायपेक्षया
 सतीत्यर्थः, ‘परस्स आइहे नो आत्मा’ति परस्य शर्करादिपृथि-
 व्यन्तरस्य पर्यायैरादिष्टे—आदेशे सति तैर्व्यपदिष्टा सतीत्यर्थः,
 नोआत्मा—अनात्मा भवति, पररूपपेक्षयाऽसतीत्यर्थः ‘तदुभयस्स
 आइहे अवत्ताव्वं’ति तयोः स्वपरस्थोरुभयं तदेव बोध्यं तदुभयं
 तस्य पर्यायैरादिष्टो—आदेशे सति तदुभयपर्यायैर्व्यपदिष्टेत्यर्थः,

‘अवक्तव्यम्’ अवाच्यं वस्तु स्यात्, तथाहि—न ह्यसौ आत्मेति वक्तुं शक्याः, परपर्यायापेक्षयाऽनात्मत्वात्स्याः, नाप्यनात्मेति वक्तुं शक्या, स्वपर्यायापेक्षया तस्या आत्मत्वादिति, अवक्तव्यत्वं चात्मानात्मशब्दापेक्षयैव नतु सर्वथा, अवक्तव्यशब्देनैव तस्या उच्यमानत्वाद्, अनभिलाष्यभावानामपि भावपदार्थवस्तुप्रभृतिशब्दैरनभिलाष्यशब्देन वाऽभिलाष्यत्वादिति । एवं परमाणुसूत्रमपि ॥ द्विप्रदेशिकसूत्रे षड्भङ्गाः, तत्राद्यान्त्रयः सकलस्कन्धापेक्षाः पूर्वोक्ता एव तदन्ये तु त्रयो देशापेक्षाः, तत्र च ‘गोयमे’ त्यत आरभ्य व्याख्यायते—‘अप्पणो’ति स्वस्य पर्यायैः ‘आदिष्टो’ति आदिष्टे—आदेशो सति आदिष्ट इत्यर्थः द्विप्रदेशिकस्कन्ध आत्मा भवति १ एवं परस्य पर्यायैरादिष्टोऽनात्मा २ तदुभयस्य—द्विप्रदेशिकस्कन्धस्तदन्या स्कन्धलक्षणस्य पर्यायैरादिष्टोऽसाववक्तव्यं वस्तु स्यात्, कथम् ? आत्मेति चानात्मेति चेति २ तथा द्विप्रदेशित्वात्तस्य देश एक आदिष्टः, सद्भावप्रधानाः—सत्तानुगताः पर्यवा यस्मिन् स सद्भावपर्यवः, अथवा तृतीयाबहुवचनमिदम् स्वपर्यवैरित्यर्थः, द्वितीयानु देश आदिष्टः, असद्भावपर्यवः परपर्यायैरित्यर्थः, परपर्यवाश्च तदीयद्वितीयदेशसम्बन्धिनो वस्तुन्तरसम्बन्धिनो वेति, ततश्चासौ द्विप्रदेशिकः स्कन्धः क्रमेणात्मा चेति नो आत्मा चेति ४, तथा तस्य देश आदिष्टः सद्भावपर्यवो देशश्चोभयपर्यवस्ततोऽसावात्मा चावक्तव्यं चेति ५, तथा तस्यैव देश आदिष्टो-

ऽसद्भावपर्यवो देशस्तूभयपर्यवस्ततोऽसौ नो आत्मा
 च स्यादिति ६, सप्तमः पुनरात्मा च नो आत्मा
 चेत्येवंरूपो न भवति द्विप्रदेशिके द्वयंशत्वादस्य त्रिः
 तु स्यादिति सप्तमङ्गी ॥ त्रिप्रदेशिकस्कन्धे तु त्रयोदश
 पूर्वोक्तेषु सप्तस्वाद्याः सकलादेशस्त्रयस्तथैव तदन्येषु
 त्रयस्त्रयः एकवचनबहुवचनभेदात्, सप्तस्त्वेकविंश
 स्थापना चेयम्—

अव १	ॐ ~ ~ ~	अव ~ ~ ~	अव ~ ~ ~	अव १
नो १				नो १
आ. १	आ ~ ~ ~	आ ~ ~ ~	आ ~ ~ ~	आ १

यच्चेह प्रदेशद्वयेऽप्येकवचनं कचित्तत्तस्य प्रदेशे
 प्रदेशावगाढत्वादिहेतुनैकत्वविवक्षणात्, भेदविवक्षात्
 बहुवचनमिति ॥ चतुष्प्रदेशिकेऽप्येवं नवरमेकोनविंश

तत्र त्रयः सकलौदशाः तथैव शेषेषु चतुर्षु प्रत्येकं चत्वारो विकल्पाः, ते चैवं चतुर्थादिषु

त्रिषु —

ॐ	ॐ	ॐ	ॐ
---	---	---	---

 सप्तमस्त्वेवम् —

ॐ	ॐ	ॐ	ॐ
ॐ	ॐ	ॐ	ॐ

षष्ठप्रदेशिके तु द्वाविंशतिस्तत्राद्यास्त्रयस्तथैव, तदुत्तरेषु च त्रिषु प्रत्येकं चत्वारो विकल्पास्तथैव, सप्तमे तु सप्त, त्रिकसंयोगे किलाष्टौ भङ्गका भवन्ति तेषु च सप्तैवेह ग्राह्या एकस्तु तेषु न पतत्य-सम्भवात्, इदमेवाह—‘तिगसंजोगे’त्यादि, तत्रैतेषां स्थापना—

ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ
---	---	---	---	---	---	---

यश्च न पतति स पुनरयम् २२२ षट् प्रदेशिके त्रयोविंशतिरिति ॥

भूलम्—परमाणुयोगगले शं भंते ! किं सासए असासए ?, गोयमा ! सिय सासए सिय असासए, से केशट्ठेणं भंते ! एव बुच्चइ सिय सासए सिय असासए ?, गोयमा ! दव्वट्ठयाए सासए वन्नपज्जवेहि जाव फासपज्जवेहि असासए से तेणट्ठेणं जाव सिय सासए सिय असासए (सूत्रं ५१२) ॥ परमाणु-योगगले शं भंते ! किं चरमे अचरमे ?, गोयमा !

दन्वादेसेणं नो चरिमे अचरिमे, खेत्तादेसेणं सिय
चरिमे सिय अचरिमे, कालादेसेणं सिय चरिमे
सिय अचरिमे, भावादेसेणं सिय चरिमे सिय
अचरिमे ॥

— श्री भगवती सूत्र १४।४।५१३ ॥

टीका—‘परमाणुपोग्गले गुंति पुद्गलः स्कन्धोऽपि स्यादत
परमाणुग्रहणं ‘सासर’ति शाश्वद्भवत्वात् ‘शाश्वतः’ नित्यः
अशाश्वतस्त्वनित्यः ‘सिय सासर’ति कश्चिच्छिच्छाश्वतः, दन्व-
द्वया’ति द्रव्यं—उपेक्षितपर्यायं वस्तु तद्वदर्थो द्रव्यार्थस्तद्भावस्त-
त्ता तथा द्रव्यार्थतया शाश्वतः स्कन्धान्तर्भावोऽपि परमाणुत्वस्या-
विनष्टत्वात् प्रदेशलक्षणव्यपदेशान्तद्रव्यमदेश्यत्वात्, ‘वन्नपज्जवे-
हिं’ति परि—सासस्त्येनावन्ति—मच्छन्ति ये ते पर्यवा विशेषा
धर्मा इत्यनर्थान्तरं ते च वर्णादिभेदादनेकवैत्यतो विशेष्यते—वर्ण-
स्य पर्यवा वर्णपर्यवा अतस्तैः, ‘असासर’ति विनाशो, पर्यवाणां
पर्यवत्वेनैव विनष्टरत्वाविति ॥ परमाणुवधिक्रमार्थे वेदमाह—
‘परमाणु’ इत्यादि, ‘चरमे’ति यः परमाणुर्यस्माद्विचक्षितभावा-
न्त्युतः सन् पुनस्तं भावं न प्राप्स्यति स तद्भावापेक्षया चरमः,
एतद्विपरीतस्त्वचरमः इति, तत्र ‘दन्वादेसेणं’ति आदेशः—
प्रकाशो द्रव्यरूप आदेशो द्रव्यादेशस्तेन नो चरमः, स हि द्रव्यतः
अमाणुत्वात्त्युतः संज्ञातमज्ञाप्यापि ततश्च्युतः परमाणुत्वलक्षणं

द्रव्यत्वमवाप्स्यतीति । 'स्वेत्तादेस्तेणं'ति क्षेत्रविशेषितत्वलक्षण-
प्रकारेण 'स्यात्' कदाचिच्चरमः, कथम् ? यत्र क्षेत्रे केवली
समुद्घातं गतस्तत्र क्षेत्रे यः परमाणुरवगाढोऽसौ तत्र क्षेत्रे
तेन केवलिना समुद्घातगतेन विशेषितो न कदाचनाप्यवगाहं
लप्स्यते केवलिनो निर्वाणममत्तादित्येवं क्षेत्रतश्चरमोऽसाविति
निर्विशेषणक्षेत्रापेक्षया त्वचरमः, तत्क्षेत्रावगाहस्य तेन लप्स्यमान-
त्वादिति । 'कालादेस्तेणं'ति कालविशेषितत्वलक्षणप्रकारेण
'सिद्धिचरमे'ति कथञ्चिच्चरमः, कथं ? यत्र काले पूर्वाह्णादौ
केवलिना समुद्घातः कृतस्तत्रैव यः परमाणुतया संवृत्तः स च
तं कालविशेषं केवलिसमुद्घातविशेषितं न कदाचनापि प्राप्स्यति
तस्य केवलिनः सिद्धिगमनेन पुनः समुद्घाताभावदिति
तदपेक्षया कालतश्चरमोऽसाविति, निर्विशेषणकालापेक्षया त्वचरम
इति । 'भावदेस्तेणं'ति भावो - वर्णादिविशेषः तद्विशेषलक्षण-
प्रकारेण 'स्याच्चरमः' कथञ्चिच्चरमः, कथं ? विवक्षितकेवलिसमुद्-
घातावसरे यः पुद्गलो वर्णादिभावविशेषं परिणतः स विवक्षितके-
वलिसमुद्घातविशेषितवर्णपरिणामापेक्षया चरमो यस्मात्तत्
केवलिनिर्वाणे पुनस्तं परिणाममसौ न प्राप्स्यति, इदं च
व्याख्यानं चूर्णिकारमतमुपजीव्य कृतमिति ॥

मूलम्-परमाणुपीगले णं भंते ! कतिवन्ने जाव कतिफासे
पन्नत्ते ? गोयमा ! एगवन्ने एगगंधे एगरसे दुफासे

पन्नत्ते ॥ दुपएसिए शं भंते ! खंधे कतिवन्ने पुच्छा
 गोयमा ! सिय एगवन्ने सिय दुवन्ने सिय एगगंधे
 सिय दुगंधे सिय एगरसे मिय दुरसे सिय दुफासे
 सिय तिफासे सिय चउफासे पन्नत्ते, एवं तिपएसि-
 एवि, नवरं सिय एगवन्ने सिय दुवन्ने सिय तिवन्ने,
 एवं रसेसुवि, सेसं जहा दुपएसियस्स, एवं
 चउपएसिएवि नवरं सिय एगवन्ने जाव मिय
 चउवन्ने, एवं रसेसुवि, सेसं तं चेव, एवं पंचपए-
 सिएवि, नवरं सिय एगवन्ने जाव सिय पंचवन्ने,
 एवं रसेसुवि गंधफासा तहेव, जहा पंचपएसिओ
 जाव असंखेज्जपएसिओ ॥ सुहुमपरिणए शं भंते !
 अणंतपएसिए खंधे कतिवन्ने जहा पंचपएमिए
 तहेव निरवसेसा, वादरपरिणए शं भंते ! अणंत-
 पएसिए खंधे कतिवन्ने पुच्छा, गोयमा ! सिय
 एगवन्ने जाव सिय पंचवन्ने सिय एगगंधे मिय
 दुगंधे मिय एगरसे जाव सिय पंचरसे सिय चउफासे
 जाव सिय अट्ठफासे प० ॥ सेव भंते ! ररि ।

—श्री भगवती सूत्र १८६।६३१॥

टीका 'परमाणुपोग्गलेणमित्यादि,' इह च वर्णगन्धरसेषु
 । द्वौ यच्च च विकल्पाः 'दुफासे'ति स्निग्धरूचशीतोष्णस्पर्शा-

नामन्यतराविरुद्धस्योद्वययुक्त इत्यर्थः इह च चत्वारो विकल्पा
शीतस्निग्धयोः शीतरुक्षयो उष्णस्निग्धयोः उष्णरुक्षयोश्च
सम्बन्धादिति ॥ 'दुपपसि ए'मित्यादि, 'सिय एगवन्ने'त्ति
द्वयोरपि प्रदेशयोरेकवर्णत्वात्, इह च पञ्च विकल्पाः, 'सिय
दुवन्ने'त्ति प्रतिप्रदेशं वर्णान्तरभावान्, इह च दश विकल्पाः,
एवं गन्धादिष्वपि, 'सिय दुफासे'त्ति प्रदेशद्वयस्यापि शीतस्निग्ध-
त्वादिभावात्, इहापि त एव चत्वारो विकल्पाः 'सिय तिफासे'त्ति
इह चत्वारो विकल्पास्तत्र प्रदेशद्वयस्यापि शीतभावात्, एकस्य
च तत्र स्निग्धभावात् द्वितीयस्य च रुक्षभावादेकः, 'एवम् अनेनैव
न्यायेन प्रदेशद्वयस्योष्णभावाद्द्वितीयः, तथा प्रदेशद्वयस्यापि
स्निग्धभावात् तत्र चैकस्य शीतभावादेकस्य चोष्णभावात्तृतीयः,
'एवम्' अनेनैव न्यायेन प्रदेशद्वयस्य रुक्षभावाच्चतुर्थः इति,
'सिय चउफासे'त्ति इह 'देसे सि ए देसे उमिणे देसे निद्धे देसे
लुक्खे'त्ति वक्ष्यमाणवचनादेकः, एवं त्रिप्रदेशादिष्वपि स्वयमप्यु-
क्तम् ॥ 'सुद्धमपरिण ए'मित्यादि, अनन्तप्रदेशो वादर-
परिणामोऽपि स्कन्धो भवति द्वयणुकादिस्तु सूक्ष्मपरिणाम एवेत्य-
नन्तप्रदेशि हस्कन्धः सूक्ष्मपरिणामत्वेन विरोपितस्तत्राद्याश्चत्वारः
स्पर्शा सूक्ष्मेषु वादरेषु चानन्तप्रदेशि हस्कन्धेषु भवन्ति, सृदुरुठिन-
गुरुलघुस्पर्शास्तु वादरेष्वेवेति ॥

मूतम्-सरिसवा ते भंते ! किं भक्खेया अभक्खेया ?

सोमिला ! सरिसवा भक्खेयावि अभक्खेयावि, से
 केण्टेठे० सरिसवा मे भक्खेयावि अभक्खेयावि ?,
 से नूणं ते सोमिला ! बभक्खसु नएसु दुविहा सरि-
 सवा पन्नत्ता, तज्जहा--मित्तसरिसवा य धन्नसरि-
 सवा य, तत्थ णं जे ते मित्तसरिसवा ते तिविहा
 प०, तं०—सहजायया सद्वडिद्वयया सहपंसुकीलि-
 यया, ते णं समणाणं निग्गथाणं अभक्खेया, तत्थ
 णं जे ते धन्नसरिसवा ते दुविहा प० तं०—सत्थपरि-
 णया य असत्थपरिणया य तत्थणं जे ते असत्थ-
 परिणया ते णं समणाणं निग्गथाणं अभक्खेया,
 तत्थ णं जे से सत्थपरिणया ते दुविहा प० तं०—
 एसणिज्जा य अणेमणिज्जा य, तत्थ णं जे ते
 अणेमणिज्जा ते समणाणं निग्गथाणं अभक्खेया,
 तत्थ णं जे ते एसणिज्जा ते दुविहा प० तं०—जाइया
 य अजाइया य, तत्थ णं जे ते अजाइया, ते णं
 समणाणं निग्गथाणं अभक्खेया, तत्थ णं जे ते
 जातिया ते दुविहा प०, तं०—लद्धा य अलद्धा य,
 तत्थणं जे ते अलद्धा तेणं समणाणं निग्गथाणं
 अभक्खेया, तत्थ णं जे ते लद्धा तेणं समणाणं
 निग्गथाणं भक्खेया, से तेणद्धेणं सोमिला ! एवं

बुद्धिः जाव अभक्खेयावि । मासा ते भंते ! किं
 भक्खेया अभक्खेया ? , सोमिला ! मासा मे भक्खे-
 यावि अभक्खेयावि, से केशद्वेणं जाव अभक्खेयावि,
 से नूणं ते सोमिला ! बभन्नएसु नएसु दुविहा मासा
 पं०, तं०—द्ववमासा य कालमासा च, तत्थं णं
 जे ते कालमासा तेणं सावणादीया आसादपज्जव-
 माणा दुवालस तं०—सावणे भद्वए आमोए कत्तिए
 मग्गसिरे पोसे माहे फागुणे चिने वइसाहे जेट्ठामूले
 आसादे, तेण समणाणं निग्गंथाणं अभक्खेया, तत्थं
 णं जे ते द्ववमासा ते दुविहा पं० तं० अत्थ-
 मासा य धणमासा य, तत्थं णं जे ते अत्थमासा
 ते दुविहा पं० तं०—सुवन्नमासा य रुपमासा य, ते
 णं समणाणं निग्गंथाणं अभक्खेया, तत्थं णं
 जे ते धन्नमासा ते दुविहा पं० तं०—सत्थपरिणया
 य असत्थपरिणया य, एव जहा—धन्नसरिसवा जाव
 से तेणद्वेणं जाव अभक्खेयावि । कुलत्था ते भंते !
 किं भक्खेया अभक्खेया ? , सोमिला ! कुलत्था
 भक्खेयावि अभक्खेयावि से केशद्वेणं जाव अभ-
 क्खेयावि ? , से नूणं सोमिला ! ते बभन्नएसु
 नएसु दुविहा कुलत्था पं०, तं०—इत्थिकुलत्था य

धन्नकुलत्था य, तत्थ णं जे ते इत्थि कुलत्था ते तिविद्वा
 प०, तंजहा-कुलकन्नयाइ वा कुलवहुयाति वा
 कुलमाउयाइ वा, तेणं समणाणं निग्गंथाणं अभ-
 क्खेया, तत्थणं जे ते धन्नकुलत्था एवं जहा धन्न-
 सरिसवा से तेणट्ठेणं जाव अभक्खेयावि ॥

—श्री भगवती सूत्र १८.१०।६४६॥

टीका— सरिसव'त्ति एकत्र प्राकृतशैल्या सदृशवयसः—
 समानवयसः अन्यत्र सर्षपाः—सिद्धार्थकाः, 'द्ववमास'त्ति
 द्रव्यरूपाः मासा 'कालमास'त्ति कालरूपा मासाः, 'कुलत्थ'त्ति
 एकत्र कुले तिष्ठन्तीति कुलस्थाः—कुलाङ्गनाः, अन्यत्र कुलत्था—
 धान्यविशेषाः सरिसवादि—पदप्रश्नश्च छलग्रहणेनोपहासश्च
 कृत इति ॥

मूलप्—एगे भवं दुवे भवं अक्खए भवं अक्खए भवं अव-
 ट्ठिण भव अणोगभूयभावभविण भव ?, सोमिला !
 एगेवि अहं जाव अणोगभूयभावभविणवि अहं से
 कणट्ठेणं भंते ! एवं बुच्चइ जाव भवियवि अहं ?,
 सोमिला ! दव्वट्ठयाय एगे अहं नाणदंसणट्ठयाए
 दुविहे अहं पएसट्ठयाए अक्खएवि अहं अक्खएवि
 अहं अवट्ठिणवि अहं उवयोगट्ठयाए अणोगभूय-
 भावभविणवि अहं से तेणट्ठेणं जाव भविणवि अहं ।

—श्री भगवती सूत्र १८.१०।६४७॥

टोका-‘एगे भव’मित्यादि, एको भवान्तियेकत्वाभ्युपगमे भगवताऽत्मनः वृत्ते श्रोत्रादिविज्ञानानामवयवानां चात्मनोऽनेक-
 त उपलब्धित एकत्वं दूषयिष्यामीति बुद्ध्या पर्यनुयोगः सोमिल-
 भट्टेन कृतः, द्वौ भवानिति च द्वित्वाभ्युपगमेऽहमित्येकत्व-
 विशिष्टस्यार्थस्य द्वित्वविरोधेन द्वित्वं दूषयिष्यामीति बुद्ध्या
 पर्यनुयोगो विहितः, ‘अकखर भव’मित्यादिना च पदत्रयेण
 नित्यात्मपक्षः पर्यनुयुक्तः, ‘अणोरभूयभावमधिप भव’ति अनेके
 भूताः—अतीताः भावाः—सत्तापरिणामाः भङ्गाश्च—भाविनो
 यस्य स तथा, अनेन चातीतिमधि यत् सत्ताप्रशेनानित्यतापक्ष-
 पर्यनुयुक्तः, एकतरपरिग्रहे तस्यैव दूषणायेति, तत्र च भगवता
 स्यादच्चादस्य निखिलदोषगोचरातिक्रान्तत्वात्तमवलम्ब्योत्तरमदायि-
 ‘एगेवि अह’मित्यादि कथमित्येतत् ? इत्यत आह—‘बुबुद्ध्याए
 एगोऽह’ति जीवद्रव्यस्यैकत्वेनैकोऽहं न तु प्रदेशार्थतया, तथा हि
 अनेकत्वान्ममेत्यवयवादीनामनेकत्वोपलम्भो न बाधकः, तथा
 कश्चित्स्वभावमाश्रित्यैकत्वसंख्याविशिष्टस्यापि पदार्थस्य स्वभावान्तर-
 द्वापेक्षया द्वित्वमपि न विरुद्धमित्यत उक्तं—‘नाणदंसणद्वयाए
 दुवेवि अह’ति, न चैकस्य स्वभावभेदो न दृश्यते, एको हि देव-
 उत्तदिः पुरुष एकैव तत्तदपेक्षया पितृत्वपुत्रत्वभ्रातृत्वभ्रातृव्यत्वा-
 दीननेकान् स्वभावांल्लभत इति, तथा प्रदेशार्थतयाऽसंख्येयप्रदेश-
 तामाश्रित्याक्षतोऽप्यहं सर्वथा प्रदेशानां क्षयाभावात्, तथाऽव्य-

योऽप्यहं कतिपयानामपि च व्यथाभावात्, किमुक्तं भवति ?—
 अवस्थितोऽप्यहं—नित्योऽप्यहं असंख्येयप्रदेशिता हि न कदाचन-
 पि व्यपैति अतो नित्यताऽभ्युपगमेऽपि न दोषः, तथा 'अवधो न ह्य-
 या' इति द्विविधविषयानुपयोगानां प्रत्यक्षानुभूतिभावभक्तिकोऽप्य-
 हम्, अतीतानां गतयोर्हि काजयोरनेकविषयबोधानामात्मनः
 कथञ्चिदभिन्नानां मूलत्वाद् भावित्वाच्चेत्यनित्यपक्षोऽपि न
 दोषायैति ॥

मूलम्-केवतियाणं भन्ते ! असुरकुमारभवणावाससयसह-
 स्सा प० ?, गायमा ! चउसट्ठि असुरकुमारभवणा-
 वाससयसहस्सा प०, ते णं भन्ते ! किमया प० ?,
 गोयमा ! सव्वरयणामवा अच्छा सव्वह जाव पडि-
 रूवा, तत्थ णं बहवे जीवा य पोम्मात्ता य वक्कमंति
 विउक्कमंति चयंति उववज्जंति सासया णं ते भवणा
 दव्वट्ठयाए वन्मवज्जवेहि जाव फासपज्जवेहि
 असासया, एव जाव थणियकुमारावासा, केवति-
 याणं भन्ते ! काणमेतरं मेज्जनगरावाससयसहस्सा
 प०, ते णं भन्ते ! किमया प० ?, सेसं तं चेव,
 केवतियाणं भन्ते ! जोइसियविमाणावाससयसहस्सा ?
 पुच्छा, गोयमा ! असंखेज्जा जोइसियविमाणावास-
 सयसहस्सा प०, ते णं भन्ते ! किमया प० ?,

गोयमा ! सच्चफलिहामया अच्छा, सेसं तं चेव,
 सोहम्मे णं भंते ! कप्पे केवतिया विमाणावास-
 समयसहस्सा प० ? गोयमा ! चतीसं विमाणावास-
 समयसहस्सा, ते णं भंते ! किमया प० ? गोयमा !
 सच्चरयणामया अच्छा सेसं तं चेव जाव अनुत्तर-
 विमाणा, नवरं जाणोयच्चा जत्थ जत्थेया भवणा
 विमाणा वा । सेव भंते ! २ त्ति ॥

— श्री भगवती सूत्र १६।१६५॥

टीका—केवइया णमित्यादि, 'भोमेज नगर'ति भूमे-
 ज्जत्तरभवानि भोमेयकानि तानि च तानि नगराणि चेति विग्रहः
 सच्चफलिहामय'ति सर्वस्फटिकमयाः ॥

[लम्-जीवा णं भंते ! पारं क्रमं किं समायं पट्ठविंसु
 समायं निट्ठविंसु ? १ समायं पट्ठविंसु विसमायं
 निट्ठविंसु २ ? विसमायं पट्ठविंसु समायं निट्ठ-
 विंसु ३ ? विसमायं पट्ठविंसु विसमायं निट्ठ-
 विंसु ४ ? गोयमा ! अत्थेगइया समायं पट्ठविंसु
 समायं निट्ठविंसु जाव अत्थेगइया विसमायं पट्ठ-
 विंसु विसमायं निट्ठविंसु से केणट्ठेणं भंते ! एवं
 चुच्चइ अत्थेगइया समायं पट्ठविंसु समायं निट्ठ-
 विंसु ? तं चेव, गोयमा ! जीवा चउच्चिहा पन्नत्ता,

तंजहा--अत्थेगइया समाउया समोववन्नगा १
 अत्थेगइया समाउया विसमोववन्नगा २ अत्थेगइय
 विसमाउया समोववन्नगा ३ अत्थेगइया विसमाउय
 विसमोववन्नगा ४, तत्थ एं जे ते समाउया समो-
 ववन्नगा ते शां पावं कम्मं समायं पट्ठविंसु समायं
 निट्ठविंसु, तत्थ एं जे ते समाउया विसमोववन्नगा,
 ते शां पावं कम्मं समायं पट्ठविंसु विममायं निट्ठ-
 विंसु, तत्थ शां जे ते विसमाउया समोववन्नगा
 ते शां पावं कम्मं विसमायं पट्ठविंसु समायं निट्ठ-
 विंसु, तत्थ शां जे ते विसमाउया विसमोववन्नगा
 ते शां पावं कम्मं विसमायं पट्ठविंसु विसमायं
 निट्ठविंसु, से तेणट्ठेणं गोयमा ! तं चेव ॥

—श्री भभवती सूत्र २६।१।८२२॥

टीका—‘जीवा एं भंते ! पावमित्यादि, ‘समायं’ति समकं

ब्रह्मो जीवा युगपदित्यर्थः ‘पट्ठविंसु’ति प्रस्थापितवन्तः—प्रथम-
 तथा त्रैदयितुमारब्धवन्तः, तथा समकमेव ‘निट्ठविंसु’ति ‘निष्ठा-
 पितवन्तः’ निष्ठा नीतवन्तः इत्येकः, तथा समकं प्रस्थापितवन्त
 ‘विसमं’ति विषमं यथा भवति विषमतयेत्यर्थः, निष्ठापितवन्त
 ‘ति द्वितीयः, एवमन्यौ द्वौ । ‘अत्थेगइया समाउया’इत्यादि,
 चतुर्भङ्गी, तत्र ‘समाउय’ति समायपः उदयापेक्षया सप्रकाला-

युष्कोदया इत्यर्थः 'समोववन्नग'ति विवक्षितायुषः क्षये समकमेव भवान्तेर उपपन्नाः समोपपन्नकाः, ये चैवंविधास्ते समकमेव प्रस्थापितवन्तः—समकमेव निष्ठापितवन्तः, नन्वायःकर्मैवाश्रित्यैवमुपपन्नं भवति न तु पापं कर्म, तद्धि नायुष्कोदयापेक्षां प्रस्थाप्यते चेति, नैवं, यतो भवापेक्षः कर्मणामुदयः क्षयश्चेष्यते, उक्तञ्च— 'उदयक्षयस्वओवसमे'त्यादि अत एवाह—'तत्थणं जे ते समाउया समोववन्नगा ते णं पावं कम्मं समायं पट्ठविसु समायं निट्ठविसु'ति प्रथमः, तथा 'तत्थ णं जे ते समाउया विसमोववन्नग'ति समकालायुष्कोदया विषमतया परभवोत्पन्ना मरणकालवैषम्यात् 'ते समायं पट्ठविसु'ति आयुष्कविरोधोदयसम्पाद्यत्वात्पापकर्मवेदनविशेषस्य 'विसमायं निट्ठविसु'ति मरणवैषम्येन पापकर्मवेदनविशेषस्य विषमतया निष्ठासम्भवादिति द्वितीयः, तथा 'विसमाउया समोववन्नग'ति विषमकालायुष्कोदयसमकालभवान्तरोत्पत्तयः 'ते णं पावं कम्मं विसमायं पट्ठविसु समायं निट्ठविसु'ति तृतीयः, चतुर्थः सुज्ञात एवेति, इह चैतान् भङ्गकान् प्राक्तनशतभङ्गकांश्चाश्रित्य वृद्धैरुक्तम्— "पट्ठवणसए किहणु हु समाउ उववन्नएसु चउभंगो । किह व समज्जणसए गमणिज्जा अत्यओ भंगा ? ॥१॥ पट्ठवणसए भंगा पुच्छाभंगणलोमओ वच्चा ।" यथा पृच्छाभंगाः समकप्रस्थापनादयो न बध्यन्ते तथेह, समायुष्कादयः अत्यत्रान्यथा व्याख्याता अपि व्याख्येया

इत्यर्थः । “कर्मसमज्जणस्य बाहुल्लाओ समादज्जा ॥२॥”
 [प्रस्थापनशते समायुहत्पक्षेषु चतुर्भङ्गी कथं नु कथं वा
 समर्जनशते भङ्गा अर्थतो गम्याः ? ॥१॥ प्रस्थापनशते भङ्गानां
 पृच्छा भङ्गानुलोम्यतो वाच्या । कर्मसमर्जनशते बाहुल्यात्
 समायोजयेत् ॥ १ ॥] इति ॥



श्री ज्ञाना सूत्र



हे शुक ! अस्माकं धर्मः स्याद्वादात्मकः सत्तनयाश्रितो
वर्तते, अपरे धर्माः प्रत्येकतयाश्रिता अतः सत्तनयानां स्वरूपं
शृणु तथा ब्रूतमागमे—कश्चिद्वा एया पण्यत्ता, गोयमा ।
सत्तमूलतया पण्यत्ता तं० जहा—एगमे १ संगहे २ बवहारे ३
उज्जुसुतो ४ सद्दे ५ समभिरुहे ६ एदंभुत्त ७ इति ॥ नैगम
इति न एकं नैकं प्रभूतानीत्यर्थः, नैकैर्नैगमैर्वासात्वसामान्यविशेष-
ज्ञानैर्मिमीते भिनोति इति वा नैकमसामान्यविशेषो नयरूपज्ञानै-
र्वस्तु मन्यते षष्ठमेकमेवेन न मन्यते इत्यर्थः, न विद्यते एको
गमो मार्गः सामान्यलक्षणो विशेषलक्षणो वा यस्य स नैगमिकः
पव नयः सभ्यगृह्णिवत् सामान्यविशेषाभ्यां वस्तु आनयति
तस्मादेषो नयः सभ्यगृह्णीतु भवति इति ॥१॥ तथा संग्रह इति
भेदानां संग्रहः संगृह्णति भेदान् वा संग्रहः, स नयः समुच्चयेन

वस्तु आनयति, यथा कश्चिद् वनं दृष्ट्वा वदत्यग्रे वनमस्ति परं विशेषणं न वक्ति, परगुपक्षितटाकाक्रीर्णं वनं वर्तते इति न वदति, स कथयति विशेषस्तु सामान्यमध्य एवास्ति इति ॥२॥ व्यवहारः, येन व्यङ्ग्यते स व्यवहारः स तु विशेषवस्तु मन्यते, स च कथयति सामान्यं विशेषाद् भिन्नं न वर्तते, केवलं सामान्यत्वेन लोकव्यवहारो न प्रवर्तते यथा भ्रमरादौ सामान्यत्वेन पंचवर्णाः सन्ति, परं कृष्णवर्णस्य बहुतरत्वेन विशेषेण, येन लोकव्यवहारेण भ्रमरः कृष्ण एव निगद्यते इति, पुनर्वाह्यस्वरूपं दृष्ट्वा भेदं विवेक्ति, ये बाह्यदृष्ट्या गुणान् पश्यन्ति तानेव मन्यते नान्तरङ्गत्वेन, एतावताव्यवहारनये आचारक्रिया मुख्या वर्तते. अन्तर्ङ्गपरिणामोपयोगो नास्ति, यतो नैगमसङ्ग्रहोर्ज्ञानात्मध्यानस्य परिणामनं, तत्र क्रिया मुख्यास्ति व्यवहारनयेन । जीवव्यवस्था नैकधा वर्तते, तत्रनैगमसंग्रहाभ्यां सर्वजीवसत्ता एकरूपैव, परं व्यवहारेण जीवो द्विविधः—सिद्ध ? संसारी च, तत्र संसारीजीवो द्विविधः, अयोगी चतुर्दशगुणस्थानवर्ती शैलावस्वायां वर्तमानो जीवः १, सयोगी च २, तत्र सयोगी द्विविधः—त्रयोदशगुणस्थानवर्ती केवली—छद्मस्थश्च, छद्मस्थो द्विविधः क्षीणमोहद्वादशगुणस्थानवर्ती मोहनीयकम लपयति स जीवः १, द्वितीयः उपशान्तमोहश्च २, उपशान्तमोहस्य द्वौ भेदौ, अकषायी एकादशगुणस्थानवर्ती जीवः १ सकषायी च, सकषायिणो द्वौ भेदौ. एकः सूक्ष्मसकषायिदशगुणस्थानस्थ १, बादरकषायी, बादरकषायी द्विविधः श्रेणिप्रतिपन्नः श्रेणि

वर्जितश्च श्रेणिवर्जितस्य द्वौ भेदौ अप्रमत्तः प्रमत्तश्च, प्रमत्तस्य द्वौ भेदौ,
 सर्वविरतिः १, देशविरतिश्च २, देशविरतिर्द्विविधः—विरतिपरि-
 णामः १ अविरतिपरिणामश्च २, तत्राविरतिर्द्विविधः—अविरति-
 सम्यक्त्वौ १ मिथ्यात्वौ च २ मिथ्यात्वानो द्वौ भेदौ—भव्यः १
 अभव्यश्च २, भव्यो द्विविधः—ग्रन्थिभेदौ १ ग्रन्थिभेदौ च, एवं
 यादृशो जीवो दृश्यते तं तादृशमेव मन्यते स व्यवहारनयः ॥३॥
 ऋजु—अवकां श्रुतं ज्ञानमस्ति यस्य स ऋजुसूत्र अथवा अतीता-
 नागतसंभवकप्रतियोगेन ऋजु—सरलं वर्तमानकालमानयति
 इति ऋजुसूत्रः, तत्रातीतकालस्तु विनष्टः अनागतश्चानुत्पन्नोऽस्त
 दृश्यतेऽपि न आकाशोऽपवत् कालद्वयं न मन्तव्यम्, ततो
 वर्तमानकालेन भावितं भावं सूत्रयति इति ऋजुसूत्रं परिणाम-
 आही वर्तते, यदा यो जीवो गृही वर्तते परमन्तः परिणामैः
 साधुतुल्यस्तदा स जीवः साधुरेव कथ्यते, पुनर्यो जीवः साधुवे-
 षधारी वर्तते परं मनसि विषयाभिलाषयुक्ताः परिणामाः वर्तन्ते
 तदा स जीवोऽविरतिमानौ च ॥४॥ शब्दोऽप्युच्यते, उच्यते वस्तु
 अनेनेति शब्दः तेनोपचारान्नयोऽपि शब्द एवोच्यते, शब्दनयो
 ऽपि ऋजुसूत्रनयस्तदृशो मन्तव्यः एषोऽपि प्रत्युत्पन्नमाही
 ऋजुशब्दनयौ यदि सदृशौ तर्हि तयोः कः प्रतिभेदः ? उच्यते
 ऋजुसूत्रनयवार्दी सामान्यगतार्थं गृह्णाति, परं लिङ्गवचनभेदं
 किमपि न करोति, यथा तदः पुलिङ्गः, तटी स्त्री, तदं नपुंसकं परं

ऋजुसूत्रनयः केवलं तदस्यार्थं गृह्णाति लिङ्गविशेषं किमपि न मान-
यति, शब्दनयवादी तु विशेषपदं गृह्णाति. शब्दानां लिङ्गवचनानां
ये भेदाः सन्ति तान् विशेषतः प्र-क २ गृह्णाति तथा सन्न्यक्-
प्रकारेण कार्यसाधकं शब्दं मानयति यथा इन्द्रशब्दं मानयति,
यथा इन्द्रशब्दस्य चत्वारो निक्षेपाः नामादिभेदेन सन्ति, पर शब्द-
नयवादी वदति नामेन्द्र १ स्थापनेन्द्रव्येन्द्रैः किमपिकार्यसिद्धिर्ल-
भवति इति यत्तस्ते नामेन्द्रादयः इन्द्रकार्यकरणे न समर्थाः यदा
भावेन्द्रो भविष्यति तदा इन्द्रनाद् इन्द्रः इति शब्दः स्वकार्यकरि-
ष्यतीति । निक्षेपेण विचारो बहुतरोऽस्ति ग्रन्थगारवमयाश्लिष-
तम् इति ॥ ५ ॥ नानार्थेषु नानासंज्ञानामारोक्षणा । समभिखण्डनयः,
एष नयो घटकुटादीन् भिः प्रवृत्तिनिमित्तात्वात् भिन्नाद्यगोचरात्
मानयति घटपटादिशब्दवत् । तथा घटनाद् घटो विशिष्टचेष्टावान्
अर्थो घट इति तथा कुट कौटिल्ये कौटिल्ययो र्नात् कुटो घटोऽप्य-
कुटोऽप्यन्य ए वेति ६, तथा यस्य पदार्थास्य योऽर्थोऽस्ति तमर्थं कुर्वन्तं
प्रभूतं सन्तं पदार्थं मानयति पुनः स्वाथस्याकृषवेलायां तं पदार्थ-
मसन्तं मानयति स एवंभूतनयः, यदा रेव्रीमस्तके घटश्चादितो
भवति तदा चेष्टासहितो 'घट चेष्टायाम्' धातोः चेष्टारूपार्थकरण-
वेलायां घटं प्रति घटं कृत्वा मानयति ॥ ७ ॥ एतेषां मध्ये ये प्राक्त-
नास्त्रयो नया द्रव्य मन्यन्ते, तत्र तैगमव्यवहारो अशुद्धद्रव्यं मन्येते,
संप्रहस्तु शुद्धद्रव्यं मन्यते, ततः कारणादेते त्रयो द्रव्यतया उच्यन्ते ।

उपनिष्ठा गोनया पर्याय मन्यन्तेऽतस्ते पर्यायाया इति
विशेषावधारस्तु सिद्धान्तान्तर्गदवसेय इति ।।

अत्रानुयोगद्वारत्नत् तत्तनयानां दृष्टान्तो लिख्यते—यथा केन-
चित् पुरुषेण कश्चित् पुरुषः पृष्ठं भवार् कुत्र वसति? तदा -
तेनापुद्बनैगमवादेनैवं उक्तं द्रोढतये वसामि, पुनः पृष्ठं, लोकस्य
त्रयो भेदाः—उर्ध्वावस्थित्यं । लोकाः तत्र कस्मिन्नलोके वसति ।
तदाऽशुद्बनैगमवादिना प्रोक्तं—तियग् लोके वसामि पुनः पृष्ठः
तियग् लोके असंख्येया द्वीपसमुद्राश्च सन्ति, तस्मात् कस्मिन् द्वीपे
तिष्ठति तदाऽपि पुद्बनैगमवादिनोक्तं, जम्बूद्वीपमध्ये तिष्ठामि, पुनः
पृष्ठं जम्बूद्वीपे बहूनि क्षेत्राणि सन्ति, भवान् कस्मिन् क्षेत्रे तिष्ठति,
तदा तेनाऽपि पुद्बनैगमवादिनोक्तम्—भारतक्षेत्रे तिष्ठामि, पुनः पृष्ठं,
अस्य पट् खण्डानि, खण्डेषु मध्यखण्डं तस्मिन् देशा नगराणि
ग्रामाश्च बहवः सन्ति, त्वं कुत्र तिष्ठसि? तदा प्रथमनयवादी
वदति—अमुकदेशे नगरे ग्रामे वा अमुक पाटके वा वसामि ।
तत्रैतत्पर्यन्तं नैगमनयो ज्ञेयः । अथ संप्रह्वनयवादी वदात—
स्वशरीरे वसामि । तदा व्यवहारनयवादी वक्ति—स्वसंस्तारके
वसामि । ऋजुसूत्रवाच्यवदन् स्वस्वभावे तिष्ठामि । समभिरुद्धवा-
दिना प्रोक्तं त्वं स्वगुणेषु तिष्ठामि, एवंभूतनयवादिना प्रोक्तम्—
ज्ञानदशानुगुणेषु वसामि । इति दृष्टान्तः सर्वपदार्थेषु ज्ञेय इति ।।

अथ सप्तनयैधर्मः कथ्यते—प्रथमनैगमवादी वदति, सर्वे धर्मोः

सन्ति, येन कारणेन सर्वे धर्माः कथयन्ति, अं नयौऽशब्दो धर्मनाम कथयति, तदा संप्रदानयोऽवदत्—यैर्वृद्धपुरुषैरावृत्तं तद्धर्मः कथ्यते, अनाचार इत्युक्तः परं कुलाचारो धर्मः कथितः—तदा व्यवहारनयेन प्रोक्तम्—यः सुखहेतुः सः धर्मः अर्थात्—उत्पत्त्यहमेकारणो धर्मः मानितस्तदा ऋजुमूत्रनयेन प्रोक्तम्—यः उपयोग-सत्त्ववैराग्यरूपपरिणामः सः धर्मः कथ्यते, अस्मिन्नये यथा प्रवृत्ति-करस्य परिणामप्रमुखाः सर्वे धर्माः कथिताः ते मिथ्यात्विनोऽपि भवन्ति, तदा शब्दनयोऽवदत्—यः सम्यक्त्वः स एव धर्मस्य मूलं सम्यक्त्वं, तदा समभिरूढनयो वदति—यो जीवाजीवादीरुपदर्शान् जानाति जीवसत्तां ध्यायति, अजीवस्य त्यागं करोति, ईदृशो ज्ञानदर्शनचरित्राणां शुद्धनिश्चयपरिणामः स धर्मः । अस्मिन् नये साधकसिद्धपरिणामास्ते धर्मत्वेन गृहीताः, तदा एव-भूतनयो वक्ति—शुक्लध्यानरुपातीतपरिणामैः क्षपकश्रेण्यां कर्म-क्षयहेतुः स धर्मः, यो जीवस्यमूलस्वभावो धर्मो मोक्षरूपं कार्यं करोति, एवं सप्तनयैर्धर्मः कथ्यते । सप्तनयानामेकत्रमीलनात् सम्यक्त्वं वर्ज्यते, सप्तनयग्राही सम्यक्त्वो ह-उच्यते, य एकनयग्राही स मिथ्यादृष्टिरुच्यते, एवं सप्तनयैर्यत् सिद्धं वचनं तत् प्रमाण-मस्ति । सप्तनयानां मध्ये यः कोऽप्येकं नयमुत्पाप्यते तस्य वचन-मप्रमाणं भवेदिति ॥

श्री रायपसेणी सूत्र



मूलम्-पउमवरवेइयां णं भंते ! किं सासया० ? गोयमा !
सिय सासया सिय असासया, से केशद्वेणं भंते !
एवं वुच्चइ मिय सासया सिय असासया ? गोयमा !
दव्वद्वयाए सासया वज्जपज्जवेहिं गंधपज्जवेहिं रस-
पज्जवेहिं असासया, से तेषद्वेणं गोयमा ! एवं-
वुच्चति-सिय सासया मिय असासया । पउमवरवे-
इयां भंते ! कालओ केवचिरं होइ ? गोयमा !
ण कयावि णासि ण कयावि णत्थि न कयावि न
भविस्सइ, भुवि च हवइ य भविस्सइ य, धुवा
णिइया मावया अरुवया अव्वया अव्वट्ठिया णिच्चा
पउमवरवेइया ।

श्री रायपसेणी सूत्र विमान वर्णने सूत्र ३४ ॥

टीका 'पउमवरवेइया णं भंते ! किं सासया' इत्यादि, पञ्च-
 वरवेदिका'ण' मिति पूर्ववत् किं शाश्वती उतःशाश्वती, आवन्त-
 तया सूत्रे निर्देशः प्राकृतत्वात्, किं नित्या उतानित्येति भावः,
 भगवानाह—गौतम ! स्यात् शाश्वती स्यादशाश्वती, कथंचित् नित्या
 कथंचिदनित्या इत्यर्थः, स्याच्छब्दो निपातः कथंचिदित्येतद्ध-
 वाची, 'से केणट्ठेण' मित्यादि, प्रश्नसूत्रं सुगमं, भगवानाह—
 गौतम ! द्रव्यार्थतया—द्रव्यास्तिकनयमतेन शाश्वती, द्रव्यास्तिक-
 नयो हि द्रव्यमेव तात्त्विकमभिमन्यते न पर्यायान्, द्रव्यं—चान्वयि
 परिणामित्वात्, अन्वयित्वाच्च सकलकालभावीति भवतिद्रव्या-
 र्थतया शाश्वती, वर्णपर्वयैस्तत्तादन्यसमुत्पद्यमानवर्णविशेषरूपै,
 एव गन्धपर्यायैः रसपर्यायैः स्पर्शपर्यायैः उपलक्षणमेतत्, तत्तादन्य-
 पुद्गलविचटनोच्चटनैश्च अशाश्वती, पर्यायाणां प्रतक्षणभावितया
 कियत्कालभावितया विनाशित्वात्, 'से एणट्ठेण' मित्याद्युप-
 संहारवाक्यं सुगमं, इह द्रव्यास्तिकनयवादी रसमतप्रतिष्ठापनार्थ-
 मेवमाह—नात्यन्तासत उत्पादो नापि सतो नाशः 'नासतो विद्यते
 भावो, नाभावो विद्यते सतः' इति वचनात्, यौ तु दृश्येते प्रति-
 वस्तु उत्पादविनाशौ तदाविर्भावतिरोभावमात्रं, यथा सवस्य उत्फ-
 णत्वविफणत्वे, तस्मात् सवे वस्तु नित्यमिति, एवं च तन्मतचि-
 न्तायां संशयः—किं वटादिवत् द्रव्यार्थतया शाश्वती उत सकल-
 कालमेकमेव, ततः संशयापनोदार्थं भावन्तं भूय पृच्छति—

‘पञ्चमवरवेड्या ए’मित्यादि, पञ्चवरवेदिका प्राग्वन् भदन्त ।
 कालतः कियच्चिरं—कियन्तं काजं यावद् भवति ?, एवरूपाहि
 किय तं कालमवतिष्ठति इति ?, भगवानाह—गौत्तम ! न कदा-
 चिन्नासीत् सर्वदैवासीदितिभावः अनादित्वात् तथा न कदाचिन्न-
 भवति, सर्वदैववर्त्तमानकालचिन्तायां भवतीति भावः सदैव भावात्
 तथा न कदाचिन्नभवेत्यति, किन्तु भविष्यच्चिन्तायां सर्वदैव
 भविष्यति इति प्रतिपत्तव्यम्, अपर्यवसितत्वात्, तदेवं कालत्रय-
 चिन्तायां नास्तित्वप्रतिषेधं विधाय सम्प्रत्यस्तित्वं प्रतिपादयति—
 ‘भुवि च’ इत्यादि, अभूच्च भवति च भविष्यतिचेति, एवं क्रिया-
 कालावस्थायित्वात् ध्रुवा मेवादिवत् ध्रुवत्वादेव सदैव स्वस्वरूप-
 नियता नियतत्वादेव च सततं गंगासिन्धुवाहप्रवृत्तावपि पौण्ड-
 रीकद्वद् इवानेकपुद्गलविचटनेऽपि तावन्मात्रान्यपुद्गलोच्चटन
 सभवादक्षया, न विद्यते क्षयो—यथोक्तस्वरूपाकारपरिभ्रंशो यस्याः
 सा अक्षया, अक्षयत्वादेव अव्यया—अव्ययशब्दान्या मना-
 गपि स्वरूपचलनस्य जातुचिदप्यभावात्, अव्ययत्वादेव सदैव
 स्वस्वप्रमाणेऽवस्थिता, मानुषोत्तराद्वहिसमुद्रवत्, एवं स्वप्रमाणे
 सदावस्थानेन चिन्त्यमाना नित्या धर्मास्तिकायादिवत् ॥



श्री जीवाभिगम सूत्र



-इमीसे शं भंते ! रयणाप० पु० सव्वजीवा उव-
वण्णा पुव्वा ? सव्वजीवा उववण्णा ?; इमीसे शं
रय० पु० सव्वजीवा उववण्णापुव्वा नो चेव शं
सव्वजीवा उववण्णा, एवं जाव अहेसत्तमाए
पुढवीए ॥ इमा शं भंते ! रयणा० पु० सव्वजीवेहिं
विजट्ठपुव्वा ? सव्वजीवेहिं विजट्ठा ? गोयमा !
इमा शं रयणा० पु० सव्वजीवेहिं विजट्ठपुव्वा नो चेव
शं सव्वजीवविजट्ठा, एवं जाव अधेसत्तमा ॥ इसीसे
शं भंते ! रयणा० पु० सव्वपोग्गला पविट्ठपुव्वा ?
सव्वपोग्गला पविट्ठा ? गोयमा ! इमी से शं रयणा०
पुढवीए सव्वपोग्गला पविट्ठपुव्वा नो चेव शं सव्व-
पोग्गला पविट्ठा, एवं जाव अधेसत्तमाय पुढवीए ॥
इमा शं भंते ! रयणाप्प० भा पुढवी सव्वपोग्गलेहिं

विजडपुच्छा ? सच्चपोगला विजडा ? गोयमा ?
इमा एं रयणप्पभा पु० सच्चपोगलेहिं विजडपुच्छा
नो चेव ण सच्चपोगलेहिं विजडा, एवं जाच
अधेमच्चमा ॥

—श्री जीवाभिगम सूत्र अतिपत्ति ३ सू० ७७१ ॥

टीका—‘इमीसे एं मंते !’ इत्यादि, अस्यां भदन्त । रत्न-
प्रभायां पृथिव्यां सर्वजीवाः सामान्येन उपपन्नपूर्वा इति—उत्पन्न-
पूर्वाः कालक्रमेण, तथा सर्वजीवाः ‘उपपन्नाः’ उत्पन्ना युगपद् ?,
भगवान्नाह—गौतम ! अस्यां रत्नप्रभायां पृथिव्यां सर्वजीवाः
सांख्यवहारिकजीवराशयन्तर्गताः प्रायोवृत्तिमाश्रित्य सामान्येन ‘उप-
पन्नपूर्वाः’ उत्पन्नपूर्वाः कालक्रमेण, संसारस्यानादित्वात्, न पुनः
सर्वजीवाः ‘उपपन्ना’ उत्पन्ना युगपत्, सकलजीवानामेककालं
‘रत्नप्रभापृथिवीत्वेनोत्पादे’ सकलदेवनारकादि भेदाभावप्रसक्तेः,
न चैतदस्ति, तथाजगत्स्वाभाव्यात्, एवमेकैकस्याः पृथिव्यास्तावद्व-
क्तव्यं यावदधः सम्प्रभ्याः ॥ ‘इमा एं मंते !’ इत्यादि, इयं च
भदन्त ! रत्नप्रभापृथिवी ‘सच्चजीवेहिं विजडपुच्छा’ इति सर्वजीवैः
कालक्रमेण परित्यक्तपूर्वा, तथा सर्वजीवैर्युगपद् ‘विजडा’ परित्य-
क्ता ?, भगवान्नाह—गौतम ! इयं रत्नप्रभा पृथिवी प्रायोवृत्तिमा-
श्रित्य सर्वजीवैः सांख्यवहारिकैः कालक्रमेण परित्यक्तपूर्वा, न तु
युगपत्परित्यक्ता, सर्वजीवैः एककालपरित्यागस्यासम्भवात् तथ-

निमित्ताभावान्, एवं तावद्वक्तव्यं यावदधः सप्तमी पृथ्वी ॥
 'इमीसे ए' मित्यादि, अस्यां भदन्त ! रत्नप्रभायां पृथिव्यां सर्वे
 पुद्गला लोकोदरविबरवर्त्तिनः कालक्रमेण 'प्रविष्टपूर्वाः' तद्भावेन
 परिणतपूर्वाः, तथा सर्वे पुद्गलाः 'प्रविष्टाः' एककालं तद्भावेन
 परिणताः ?, भगवानाह—गौतम ! अस्यां रत्नप्रभायां पृथिव्यां
 सर्वे पुद्गलाः लोकवर्त्तिनः 'प्रविष्टपूर्वाः' तद्भावेन परिणतपूर्वाः,
 संसारस्यानादित्वात्, न पुनरेककालं सर्वपुद्गलाः 'प्रविष्टाः'
 तद्भावेन परिणताः सर्वपुद्गलानां तद्भावेन परिणतो रत्नप्रभा-
 व्यतिरेकेणान्यत्र सर्वत्रापि पुद्गलाभावप्रसक्तेः, न चैतदस्ति, तथा-
 जगत्त्वाभाव्यात् । एवं सर्वासु पृथिवीषु क्रमेण वक्तव्यं यावद-
 धःसप्तम्यां पृथिव्यामिति ॥ 'इमा एं भंते !' इत्यादि, इयं भदन्त !
 रत्नप्रभा पृथिवी सर्वपुद्गलैः कालक्रमेण 'विजडपुष्वा' इति परि-
 त्यक्तपूर्वा तथैव सर्वैः पुद्गलैरेककाले परित्यक्ता ?, भगवानाह—
 गौतम ! इयं रत्नप्रभा पृथिवी सर्वपुद्गलैः कालक्रमेण परित्यक्तपूर्वा,
 संसारस्यानादित्वात्, न पुनः सर्वपुद्गलैरेककालं परित्यक्ता, सर्व-
 पुद्गलैरेककालपरित्यागे तस्याः सर्वथा स्वरूपाभावप्रसक्तेः, न
 चैतदस्ति, तथाजगत्त्वाभाव्यतः शाश्वतत्वान्, एतच्चा नन्तरमेव
 वदयति । एवमेकैका पृथिवी क्रमेण तावद्वाक्या यावदधः सप्तमी
 पृथिवी ॥

मूलम्—इमा एं भंते ! रत्नप्रभा पृथ्वी किं सासया
 असासया ?, गोयमा ! मिय सासता सिय असा-

सया ॥ से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चइ—सिय सासया
सिय असासया ?, गोयमा ! दव्वट्ठयाए सासता,
वगणपज्जवेहिं गंधपज्जवेहिं रसपज्जवेहिं फासपज्ज-
वेहिं असासता, से तेणट्ठेणं गोयमा ! एवं वुच्चति—
तं चेव जाव सिय असासता, एवं जाव अधेसत्तमा ॥
इमा णं भंते ! रयणप्पभापु० कालतो केवच्चिरं
होइ ?, गोयमा ! न कयाइ ण आसि ण कयाइ णत्थि
ण कयाइ ण भविस्सति ॥ भुविं च भवइ य भवि-
स्सति य धुवा शियथा सासया अक्खया अव्वया
अवट्ठिता णिच्चा एवं जाव अधे सत्तमा ॥

—श्री जीवाभिगम मलयागिरि वृत्ति प्रति० ३ सूत्र ७८ ॥

टीका—‘इमा णं भंते !’ इत्यादि, इयं भदन्त ! रत्नप्रभा
पृथिवी किं शाश्वती अशाश्वती ?, भगवानाह—गौतम ! स्यात्—
कथञ्चित्कस्यापि नयस्याभिप्रायेणेत्यर्थः शाश्वती, स्यात्—कथञ्चिद-
शाश्वती ॥ एतदेव सविशेषं जिज्ञासुः पृच्छति—‘से केणट्ठेण’
मित्यादि, सेशब्दोऽयं शब्दार्थं स च प्रश्ने, केन ‘अर्थेन’ कारणेन
भदन्त ! एवमुच्यते यथा स्यात् शाश्वती स्यादशाश्वतीति ?,
भगवानाह—गौतम ! ‘दव्वट्ठयाए’ इत्यादि, द्रव्यार्थतया शाश्व-
तीति तत्र द्रव्यं सर्वत्रापि सामान्यमुच्यते, द्रवति—गच्छति तान्
तान् पर्यायान् विशेषानिति वा द्रव्यमिति व्युत्पत्तोर्द्रव्यमेवार्थः—

तात्त्विकः पदार्थो यस्य न तु पर्यायः स द्रव्यार्थः—द्रव्यमात्रास्तित्व-
 प्रतिपादको नयविशेषस्तद्भाषो द्रव्यार्थता तथा द्रव्यमात्रास्तित्व-
 प्रतिपादकनयाभिप्रायेणेतियावत् शाश्वती, द्रव्यार्थिकनयमतपर्या-
 लोचनायामेवंविधस्य एतन्प्रभायाः पृथिव्या आकारस्य सदा भावात्,
 'वर्णपर्यायैः' कृष्णादिभिः 'गंधपर्यायैः' सुरभ्यादिभिः 'रसपर्यायैः'
 तिक्तादिभिः 'स्पर्शपर्यायैः' कठिनत्वादिभिः 'अशाश्वती, अनित्या,
 तेषां वर्णादीनां प्रतिक्षयां कियत्कालानन्तरं वा अन्यथाभवनात्,
 अतादृशस्य च तत्तत्तत्त्वात् न चैवमपि भिन्नाधिकरणे नित्यत्वा-
 नित्यत्वे, द्रव्यपर्यायसोर्भेदाभेदोपगमात्, अन्यथोभयोरप्यसत्त्वा-
 पत्तेः, तथाहि—'शक्यते वक्तुं परपरिकल्पितं द्रव्यमसत्, पर्याय-
 व्यतिरिक्तत्वात्, बालत्वादिवर्थायशून्यवन्ध्यासुतवत् तथा परपरि-
 कल्पिताः पर्याया असन्तः, द्रव्यव्यतिरेकत्वात्, बन्ध्यासुतगत-
 बालत्वमदिपर्यायवत्, उक्तञ्च—'द्रव्यं पर्यायत्रियुतं, पर्याया द्रव्य-
 वर्जिताः । क कदा केन किरूप ? हृष्ट मानेन केन वा ? ॥१॥'
 इति कृतं प्रसङ्गेन, विस्तरार्थिना च धर्मसंग्रहणिदीका निरूपणीया ।
 'से तेषां' मित्याद्युपसंहारमाह, सेशब्दोऽयं शब्दार्थः स चात्र
 वाक्योपप्राप्ते अथ 'एनेन' अतन्तरोदितेन कारणेन गीतम् । एवं-
 मुच्यते—स्यात् शाश्वती स्याद् शाश्वती, एवं प्रतिष्ठमिव तावद्द्रव्य-
 थावद्वत्तः सत्तमी पृथिवी, इह यद्वास्तव्यसम्भवास्पदं तच्चेन्नावन्तं
 कालं शाश्वद्भवति तदा तदपि शाश्वतमुच्यते यथा तन्मन्तरेषु

‘आकषपट्टाई पुढवी सासया’ इत्यादि, ततः संशयः—किमेषा
 रत्नप्रभा पृथ्वी सकलकालावस्थायितया शाश्वती उतान्यथा यथा
 तन्त्रान्तरीयैरुच्यत इति ?, ततस्तदपनोदार्थं पृच्छति—‘इमा एां
 भंते’ इत्यादि, इयं भदन्त ! रत्नप्रभा पृथिवी कालतः ‘कियन्चिरं’
 कियन्तं कालं यावद्भवति ?, भगवानाह—गौतम ! न कदाचिन्ना-
 सीत्, सदैवासीदिति भावः, अनादित्वात्, तथा न कदाचिन्न
 भवति, सर्वदैव वर्त्तमानकालचिन्तायां भवतीति भावः, अत्रापि
 स एव हेतुः, सदा भावादिति, तथा न कदाचिन्न भविष्यति,
 भविष्यच्चिन्तायां सर्वदैव भविष्यतीति भावः, अपर्यवसितत्वात् ।
 तदेवं कालत्रयचिन्तायां नास्तित्वप्रतिषेधं विधाय सम्प्रत्यस्तित्वं
 प्रतिपादयति—‘भुवि चे’ त्यादि, अभूत् भवति भविष्यति च, एवं
 त्रिकालभाविस्त्वेन ‘ध्रुवा’ ध्रुवत्वादेव ‘नियता’ नियतावस्थाना,
 धर्मास्तिकायादिवत्, नियतत्वादेव च शाश्वती, शश्वद्भाव-
 प्रलयाभावात्, शश्वतत्वादेव च सततगङ्गासिन्धुप्रवाहप्रवृत्तावपि
 पद्मसौण्डरीकहृद इवान्यतरपुद्गलविचटनेऽप्यन्यतरपुद्गलोपचयभा-
 वात्, अक्षया अक्षयत्वादेव च अव्यया, मानुषोत्तराद्वहिः समुद्र-
 वत्, अव्ययत्वादेव ‘अवस्थिता’ स्वप्रमाणावस्थिता, सूर्यमण्डला-
 दिवत्, एवं सदाऽवस्थानेन चिन्त्यमाना नित्या जीवस्वरूपवत्,
 यदिवा ध्रुवादयः शब्दा इन्द्रशक्कादिवत्पर्यायशब्दा नानादेशज-
 विनेयानुग्रहार्थमुपन्यस्ता इत्यदोषः एवमेकैका पृथिवी क्रमेण
 तावद्वक्तव्या यावद्धः सप्तमी ॥

मूलम्-सासया णं ते शरणा दब्बट्ठयाए वण्णपज्जवेहिं
 गंधपज्जवेहिं रसपज्जवेहिं फासपज्जवेहिं असासया
 एवं जाव अहे सत्तामाए ॥

—श्री जीवाभिगम सूत्र प्रतिपत्ति ३।८५ ॥

टीका शाश्वता एमिती पूर्ववत् ते नरका द्रव्यार्थता तथा-
 विधप्रतिनियतसंस्थानादिरूपतया वर्णपर्यायैर्गन्धपर्यायैः स्पर्शपर्यायैः
 पुनरशाश्वताः, वर्णादीनामन्यथाऽन्यथाभवनात्, एवं प्रतिप्रतिवि-
 ताद्वक्तव्यं यावद्धः सप्तमी पृथिवी ॥

मूलम्-“पउमवरवेइया णं भंते ! किं सासया असासया ?
 गोयमा ! सिय सासया सिय असासया ॥ से केश-
 ट्ठेणं भंते ! एवं बुच्चइ-सिय सासया सिय असा-
 सया ?, गोयमा ! दब्बट्ठयाए सासया वण्णपज्ज-
 वेहिं गंधपज्जवेहिं रसपज्जवेहिं फासपज्जवेहिं
 असासता, से तेणट्ठेणं गोयमा ! एवं बुच्चइ-सिय
 सासता सिय असासता ॥ पउमवरवेइया णं भंते !
 कालआं केवच्चिरं होति ?, गोयमा ! ण कयावि
 णासि ण कयावि णत्थि ण कयावि न भविस्सति ॥
 भुवि च भवति य भविस्सति य धुवा नियमा सासता
 अक्खया अव्वया अवट्ठया णिच्चा पउमवर-
 वेदिया” ॥

—श्री जीवाभिगम प्रतिपत्ति ३ देवाधिकारः उद्देशः १ सू० १२५॥

टीका-पञ्चमवरवेद्या णं भंते ! किं सासया ? इत्यादि,
 पञ्चवरवेदिका णमिति पूर्ववत् किं शाश्वती उताशाश्वती ? आब-
 न्ततया सूत्रे निर्देशः प्राकृतत्वात्, किं नित्या उतानित्येति भावः,
 भगवानाह गौतम ! स्यात् शाश्वती स्यादशाश्वतीकथञ्चिन्नित्या
 कथञ्चिदनित्येत्यर्थः, स्याच्छब्दो निपातः कथञ्चिदित्येतदर्थवाची ॥
 'से केणङ्गेणं भंते !' इत्यादि प्रश्नतूत्रे सुगमं, भगवानाह—गौतम !
 'द्रव्यार्थतया' द्रव्यास्तिकनयमतेन शाश्वती, द्रव्यास्तिकनयो हि
 द्रव्यमेव तात्त्विकमभिमान्यते न पर्यायान्, द्रव्यं चान्वयि परिणा-
 मित्वाद्, अन्यथा द्रव्यत्वायोगाद्, अन्वयित्वाच्च सकलकाल-
 भावीति भवति द्रव्यार्थतया शाश्वती, 'वर्णपर्यायैः' तदन्यसमुत्पद्य-
 मानवर्णविशेषरूपैरेवं गन्धपर्यायै रसपर्यायैः स्पर्शपर्यायैः, उप-
 लक्षणमेतत्तदन्यदुद्भूतविचटनोच्चटनैश्चाशाश्वती, किमुक्तं भवति ?
 पर्यायास्तिकनयमतेन पर्यायप्राधान्यविवक्षायां शाश्वती, पर्यायाणां
 प्रतिक्षण भावितया कियतकालभावितया वा विनाशित्वात्, 'से
 एणङ्गेण'—मित्यादि उपसंहारवाक्यं सुगमं, इह द्रव्यास्तिकनय-
 वादी स्वमतप्रतिस्थापनार्थमेवमाह—नात्यन्तासत् / उत्पादो नापि
 सतो विनाशो. 'नासतो विद्यते भावो, नाभावो विद्यते सत्' इति
 वचनात्, यो तु दृश्यते प्रतिवस्तु उत्पादविनाशौ तदाविर्भावतिरो
 भावमात्रं यथा सर्पस्योत्पणत्वविफणत्वे, तस्मात्सर्वं वस्तु नित्य-
 मिति ॥ एवं च तन्मतचिन्तायां संशयः—किं घटादिवद्द्रव्यार्थ-

तथा शाश्वती उत्तमकलकालमेवंरूपा इति, ततः संशयापनोदार्थं भगवन्तं भूयः पृच्छति—‘पञ्चवरवेद्या ए’ मित्यादि, पञ्चवरवेदिका एमिति पूर्ववद् ‘भदन्त !’ परमकल्याणयोगिन् ! ‘कियच्चिरं’ कियन्तं कालं यावद्भवति ?, एवं रूपा कियन्तं कालमवतिष्ठते ! इति, भगवानाह—गौतम ! न कदाचिन्नासीत्, सर्वदैवासीदिति भावः अनादित्वात्, तथा न कदाचिन्न भविष्यति, किन्तु भविष्यच्चिन्तायां सर्वदैव भविष्यतीति प्रतिपत्त्यं, अपर्यवसितत्वात्, तदेवं कालत्रयचिन्तायां नास्तित्वप्रतिषेधं विधाय सम्प्रत्यस्तित्वं प्रतिपादयति—‘भुवि चे’ त्यादि, अभूच्च भवति च भविष्यति चेति, एवं त्रिकालावस्थायित्वाद् ‘ध्रुवा मेवादिवद् ध्रुवत्वादेव सदैव स्वस्वरूपे नियता, नियतत्वादेव चे’ ‘शाश्वती’ शाश्वद्भवनस्वभावा, शाश्वतत्वादेव च सततगङ्गासिन्धुप्रवाहप्रवृत्तावपि पौण्डरीकहृद् इवानेकपुद्गलविचटनेऽपि तावन्मात्रान्यपुद्गलोच्चटनसम्भवाद् ‘अक्षया’ न विद्यते क्षयो—यथोक्तस्वरूपाकारपरिभ्रंशो यस्याः साऽक्षया, अक्षयत्वादेव ‘अव्यया’ अव्ययशब्दवाच्या, मनागपि स्वरूपचलनस्य जातुचिदप्यसम्भवात्, अव्ययत्वादेव स्वप्रमाणेऽवस्थिता मानुषोत्तरपर्वताद् बहिः समुद्रवत्, एवं स्वस्वप्रमाणे सदाऽवस्थानेन चिन्त्यमाना नित्या धर्मास्तिकायादिवत् ॥

श्री पन्नवणा सूत्र



-जीवे णं भंते ! गतिचरमेषं किं चरमे ?, गो० !
सिय चरमे सिय अचरमे, नेरइए णं भंते ! गति-
चरमेषं किं चरमे अचरिमे ?, गो० ! सिय चरमे
सिय अचरमे एवं निरंतरं जाव वेमाणिण, नेरइया
णं भंते ! गतिचरमेषं किं चरिमा अचरिमा ?,
गो० ! चरिमावि अचरिमावि, एवं निरन्तरं जाव
वेमाणिया । नेरइए णं भंते ! ठितीचरमेषं किं
चरमे अचरमे, ?, गो० ! सिय चरमे सिय अचरमे,
एवं निरंतरं जाव वेमाणिया, नेरइयाणं भंते !
ठितीचरमेषं किं चरमा अचरमा ?, गो० ! चरमावि
अचरमावि, एवं निरन्तर जाव वेमाणिया । नेरइये
णं भंते ! भवचरमेषं किं चरमे अचरमे ?, गो० !

जैनागमों में स्याद्धाद

सिय चरमे सिय अचरमे, एव निरंतरं जाव वेमा-
 शिया, नेरइया णं भंते ! भवचरमेणं किं चरमा
 अचरमा ?, गो० ! चरमावि अचरमावि, एवं
 निरंतरं जाव वेमाशिया । नेरइए णं भंते ! भासा-
 चरमेणं किं चरमे अचरमे ?, गो० ! सिय चरमे
 सिय अचरमे, एव निरंतरं जाव वेमाशिए, नेरइया
 णं भंते ! भासाचरमेणं किं चरमा अचरमा गो० !
 चरमावि अचरमावि, एवं जाव एगिंदियवज्जा,
 निरंतरं जाव वेमाशिया । नेरइए णं भंते ! आणा-
 पाणुचरमेणं किं चरमे अचरमे ?, गो० ! सिय
 चरमे सिय अचरमे, एवं निरंतरं जाव वेमाशिए,
 नेरइया णं भंते ! आणापाणुचरमेणं किं चरमा
 अचरमा ?, गो० ! चरमावि, एवं निरंतरं जाव
 वेमाशिया । नेरइए णं भंते ! आहारचरमेणं किं
 चरमे अचरमे ?, गो० ! सिय चरमे सिय अचरमे,
 एवं निरंतरं जाव वेमाशिए, नेरइया णं भंते ! किं
 चरमा अचरमा ?, गो० ! चरमावि अचरमावि,
 एव निरंतरं जाव वेमाशिया । नेरइए णं भंते !
 भावचरमेणं किं चरमे अचरमे ?, गो० ! सिय चरमे
 सिय अचरमे, एवं निरंतरं जाव वेमाशिया । भाव-

चरमेणं किं चरमा अचरमा ?, गो० ! चरमावि
 अचरमावि, एवं निरंतरं जाव वेमाणिया । नेरइए
 णं भंते ! वण्णचरमेणं किं चरमे अचरमे ?, गो० !
 मिय चरमे मिय अचरमे, एवं निरंतरं जाव वे-
 माणिए, नेरइया णं भंते ! वण्णचरमेणं किं चरमा
 अचरमा ?, गो० ! चरिमावि अचरिमावि, एवं
 निरंतरं जाव वेमाणिया । नेरइए णं भंते ! गंध-
 चरमेणं किं चरमे अचरमे ?, गो० ! सिय चरमे
 सिय अचरमे, एवं निरंतरं जाव वेमाणिए, नेरइया
 णं भंते ! गंधचरमेणं किं चरमा अचरमा ?, गो० !
 चरमावि अचरमावि, एवं निरंतरं जाव वेमाणिया !
 नेरइए णं भंते ! रसचरमेणं किं चरमे अचरमे ?,
 गो० ! मिय चरमे मिय अचरमे, एवं निरंतरं जाव
 वम णिए, नेरइयाणं भंते ! रसचरमेणं किं चरमा
 अचरमा ?, गो० ! चरमावि अचरमावि, एवं
 निरंतरं जाव वेमाणिया । नेरइएणं भंते ! फास-
 चरमेणं किं चरमे अचरमे ?, गो० ! सिय चरमे
 मिय अचरमे, एवं निरंतरं जाव वेमाणिए नेरइयाणं
 भंते ! फास चरमेणं किं चरमा अचरमा ?, गो० !
 चरमावि अचरमावि एवं जाव वेमाणिया । संमहणि

ગાહા—“ગતિઠિદ્મવે ય માસા આણાપાણુચરમે ય
વોદ્ધ્વા । આહારભાવચરમે વણ્ણરસે ગંધફાસે
ય ॥ ૧ ॥”

—શ્રી પ્રજ્ઞાપના સૂત્ર ૧૦/૧૬૦ ॥

જીવાણં મંતે ! કિં માસગા અમાસગા ?, ગોં ।
માસગાવિ અમાસગાવિ, સે કેણદ્દેણં મંતે ! એવં
બુચ્છતિ જીવા માસગાવિ અમાસગાવિ ?, ગોં !
જીવા દુવિહા-પં, તં સંસારસમાવણ્ણગા ય
અસંસારસમાવણ્ણગા ય તત્થ ણં જે તે અસંસાર-
સમાવણ્ણગા તે ણં સિદ્ધાં સિદ્ધા ણં અમાસગા, તત્થ
જે તે સંસારસમાવણ્ણગા તે દુવિહા-પં, તં-સેલેસી-
પડિવણ્ણગા ય અસેલેસીપડિવણ્ણગા ય, તત્થ ણં
જે તે સેલેસીપડિવણ્ણગા તે ણં અમાસગા, તત્થ ણં
જે તે અસેલેસીપડિવણ્ણગા, તે દુવિહા—પં, તં-
એગિંદિયા ય અએગિંદિયા ય તત્થ ણં જે તે એગિંદિયા
તે ણં અમાસગા, તત્થ ણં જે તે અએગિંદિયા તે
દુવિહા-પં, તં-પજ્જત્તગા ય અપજ્જત્તગા ય, તત્થ
ણં જે તે અપજ્જત્તગા તે ણં અમાસગા, તત્થ ણં
જે તે પજ્જત્તગા તે ણં માસગા, સે એણદ્દેણં ગોં !
એવં બુચ્છતિ-જીવા માસગાવિ અમાસગાવિ । નેરઙ્ગા

शं भते ! किं भासगा अभसगा ? गोघमा ! नेरइया
भासगावि अभसगावि ? से केणट्ठेणं भते ! एवं
बुच्चति-नेरइया भासगावि अभसगावि ? गो० !
नेरइया दुविहा-पं०, तं०-पज्जत्तगा य अपज्जत्तगा
य, तत्थ शं जे ते अपज्जत्तगा तेषां अभसगा, तत्थ
शं जे ते पज्जत्तगा ते शं भासगा, से एएणट्ठेणं
गो० ! एवं बुच्चति-नेरइया भासगावि अभसगावि,
एवं एगिदियवज्जाणां निरतरं भाणियव्वं ॥

—श्री प्रज्ञापना सूत्र ११।१६६ ॥



श्री जम्बूद्वीप पराणत्ति सूत्र



मूलप्र-‘तीसे णं जगईए उप्पि बहुमज्झदेस भाए एत्थ णं
महई एगा पउमवरवेइयां पण्णत्ता, अद्धजोयणं
उद्धं उच्चत्तेणं पंच धनुसयाइं विक्खंमेण जगई
समिया पविस्सेवेणं सच्चरयणामई अच्छा जाव
पडिरूवा । तीसे णं पउमवरवेइयाए अयमेवारूवे
वण्णावासे पण्णत्ते, तंजहा-वइरामयाणेमा एवं
जहा जीवाभिगामे जाव अट्ठो जाव धुवा शियया
सासया जाव शिच्चा ॥

—श्री जम्बूद्वीप प्रज्ञाप्ति सूत्र वक्षस्कार १२ सू० ४॥

टीका-पद्मवरवेदिकायाः शाश्वतं नामधेयं प्रज्ञप्तमिति,
अयमपिप्रायः प्रस्तुतपुद्गलप्रचयविशेषे पद्मवरवेदिकेति शब्दस्य
क्तिरिति निरपेक्षाऽनादं कालिना रुढिः प्रवृत्तिनिमित्तमिति, पउम-

वरवेदेया णं मंते, 'ति पद्मवरवेदिका शाश्वती उताशाश्वती ?
 प्रत्ययेहीर्न वा श्री सि० ८-३-३१ इत्यनेन प्राकृत सूत्रेण हीप्रत्य-
 यस्यवैकल्पिकत्वेन आवत्ततयामूत्रे निर्देशः, किं नित्या उत अनि-
 त्येतिभावः, भगवानाह—गौतम ! स्याच्छाश्वती स्यादशाश्वती,
 कथञ्चिदनित्या कथञ्चिदनित्या, इत्यर्थः स्याच्छब्दोनिपातः कथञ्चि-
 दित्येतदर्थं वार्त्ता, एतदेव सविशेषं जिज्ञासुः पृच्छति “से केण-
 ढेण मित्यादि” से शब्दोऽथ शब्दार्थः सच प्रश्ने, केनार्थेन—
 केन कारणेन भदन्त । एवमुच्यते, यथास्याच्छाश्वती स्यादशाश्व-
 तीति भगवानाह—गौतम इयार्थतया शाश्वती तत्र द्रव्यं सर्वत्रा-
 न्वयि सामान्यमुच्यते, द्रवति—गच्छति तान् तान् पर्यायान्
 विशेषानिति वा द्रव्यमिति व्युत्पत्तेः द्रव्यमेवार्थः—तात्त्विकः
 पदार्थः प्रतिज्ञायां यस्य न तु पर्यायाः स द्रव्यार्थः ॥ द्रव्यमात्रास्ति-
 त्व प्रतिपादको नयविशेषः तद्भावो द्रव्यार्थतया—द्रव्यमात्रा-
 स्तित्व प्रतिपादक नयाभिप्रायेणेति यावत् शाश्वती, द्रव्यार्थिकनय
 मत पर्यालोचनाया मुक्त रूपस्य पद्मवरवेदिकाया आकारस्य सदा-
 भावान् ? तथा वर्णपर्यायैः कृष्णादिभिः गन्धपर्यायैः सुरभ्यादिभिः
 रसपर्यायैः तिक्तादिभिः स्पर्शपर्यायैः कठिनत्वादिभिः अश्वती—
 अनित्या तेषां वर्णादीनां प्रतिक्षणं कियत् कालानन्तरं वाऽन्यथा
 भावनात् । अतादन्नस्थस्य चानित्यत्वात् नचैवमपिभिन्नाधि करणे
 नित्यत्वानित्यत्वेद्रव्यपर्याययोर्भावेदोपगमात्, अन्यथोभयो-

रप्यसत्त्वापत्तेः तथाहि शक्यते वक्तुं परपरिकल्पित द्रव्यमसत्, पर्यायतिरिक्तत्वात् बालत्वादिपर्याय शून्यबन्ध्या सुतवत्, तथा परपरिकल्पिताः पर्यायाः असंतोद्रव्यव्यतिरिक्तत्वात् बन्ध्यासुतगतबालत्वादि पर्यायवत्, उक्तञ्च, द्रव्यं पर्यायवियुतं पर्यायाः द्रव्यवर्जिताः कः कदा केन किं रूपाः दृष्टा मानेन केन वा ॥ १ ॥ इति कृतं प्रमङ्गेन, “से एणणट्ठेणमित्याद्युपसंहार वाक्यं सुगमं, इह द्रव्यास्तिकनयवादी स्वमत प्रतिष्ठापनार्थमेवमाह— नात्यन्तासत् उत्पादो नापिसतो विद्यते विनाशो वा” नासतोविद्यते भावो नाभावो विद्यते सतः, इति वचनात्, यौतुदृश्येते प्रतिवस्तु उत्पादविनाशौ तदाविर्भावतिरोभावमात्रं यथा सर्पस्य उत्फणत्वविफणत्वे तस्मात् सर्ववस्तुनित्यामिति, एवञ्चतन्मतचिन्तायां संशयः—किं घटादिवत् द्रव्यार्थतया शाश्वती उत् सकलकालमेवं रूपेति ? ततः संशयापनोदार्थं भगवन्तं भूयः प्रच्छति. पउमरवेइया ण’ मित्यादि, पद्मवरवेदिका णमिति पूर्ववत् भदन्त परम कल्याणयोगिन्—कियच्चिरं—कियन्तं कालं यावद् भवति, एवंरूपा कियन्तं कालमवतिष्ठते इति भगवानाह—गौतम ! न कदाचिन्नासीत् सर्वदैवासीदिति भावः अनादित्वात्, तथा न कदाचिन्न भवति सर्वदैव वर्तमान काल चिन्तायां भवतीति भावः, सर्वदैव भावात् तथा न कदाचिन्न भविष्यति, किन्तु भविष्यच्चिन्तायां सर्वदैव भविष्यतीति प्रतिपत्ताव्यम्, अपर्यवसितत्वात्, तदेवं कालत्रयचिन्तायां नास्ति न्व

प्रतिषेधं विधाय संप्रत्यस्तित्वं प्रतिपादयति “भुवि च इत्यादि
अभूच्च भवति च भविष्यतिचेति एवं त्रिकालावस्थायित्वात् ध्रुवा,
मेवादिवत् ध्रुवत्वादेव सदैव स्वस्वरूपेतिनियता, निश्चयत्वादेव च
शाश्वती—शाश्वद्भवनस्वभावा शाश्वतत्वादेव च सततगङ्गा-
सिन्धुप्रवाह प्रवृत्तावपि पौण्डरीक (पद्म) हृद इवानेक पुद्गल विघ-
टनेऽपि तावन्मात्रान्य पुद्गलोच्चटन संभवात्, अक्षया—न विद्यते
क्षयो—यथोक्तस्वरूपाकारपरिभ्रंशो यस्याः सा अक्षयत्वादेवाव्यया
—अव्ययशब्दवाच्या, मनागपि स्वरूपचलनस्य जातुचिदप्य
सम्भवात्, अव्ययत्वादेव स्वप्रमाणोऽवस्थिता मानुषोत्तरपर्वता-
द्विविहः समुद्रवत्, एवं स्वस्वप्रमाणे सदावस्थानेन चिन्त्यमाना
नित्या धर्मास्तिकायादिवत् ॥

मूलम्—जम्बुद्वीवे णं भन्ते ! दीवे किं सासए असासए ?,
गोयमा ! सिअ सासए सिअ असासए, से केणट्ठेणं
भन्ते ! एवं वुच्चइ सिअ सासए सिअ असासए ?,
गोयमा ! दव्वहयाए सासए वणपज्जवेहिं गंधं
रसं फासपज्जवेहिं असासए, से तेणट्ठेणं गो० !
एवं वुच्चइ—सिय सासए सिअ असासए । जम्बुद्वीवे
णं भन्ते ! दीवे कालओकेवचिरंहोइ ?, गोयमा !
ण कयावि णासि ण कयावि णत्थि ण कयावि ण
भविस्सइ, भुवि च भवइ अ भविस्सइ अ धुवे णिइए

सासए ऋव्वए अवद्धिए शिच्चे जम्बुद्वीवे दीवे
परणत्ते इति ॥ सूत्र १७५ ॥

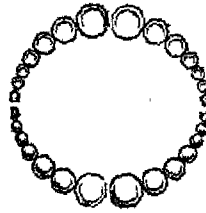
मूलम्—जम्बुद्वीवे शं भन्ते ! दीवे किं पुढविपरिणामे आउ-
परिणामे जीवपरिणामे पुग्गलपरिणामे ? गोयमा !
पुढविपरिणामे आउपरिणामेवि जीवपरिणामेवि
पुग्गलपरिणामेवि । जम्बुद्वीवे शं भन्ते ! दीवे
सव्वपाणा सव्वजीवा सव्वभूआ सव्वत्तमा पुढविकाइ
अत्ताए आउकाइअत्ताए तेउकाइअत्ताए वाउकाइअत्ताए
वणस्सइकाइअत्ताए उववणणपुव्वा ? गो० ! असइं
अदुवा अणत्तस्वत्ता ॥

—श्री जम्बूद्वीप० व० ७ सूत्र १७५-१७६ ॥

टीका अथास्यैवशाश्वतभावादिकं प्रक्षयन्नाह—जम्बूद्वीवे-
ण”मित्याद, इदञ्च यथा प्राग् पद्मवरवेदिकाधिकारे व्याख्यातं
तथाऽत्र जम्बूद्वीप व्यपदेशेन बोधार्थमिति, एवञ्च शाश्वता शाश्वतो
घटो तिरन्वयविनश्यद्वरो दृष्टः किमसावपि नद्वयत् उत नेत्याह—
जम्बूद्वीवे ण”मित्यादि, इदमपि प्राग् पद्मवरवेदिकाधिकारे व्या-
ख्यातमिति । अथ किंपरिणामोऽसौ द्वीप इतिपि पृच्छिषुराह—जम्बू-
द्वीवे शं भन्ते ! इत्यादिजम्बूद्वीपो भदन्त द्वीपः किं पृथिवीपरिणामः,
पृथिवीपिण्डमयः किमप्यपरिणामः जलपिण्डमयः, एतादृशौ च
स्कन्धावचितरजः स्कन्धादिवद् जीवपरिणामावपि भवत इत्या-

शंक्याह—किं जीवपरिणामः—जीवमयः घटादिरजीवपरिणामोऽपि भवतीत्याशंक्याह—किं पुद्गलपरिणामः—पुद्गलस्वन्यनिष्पन्नः केवलपुद्गलपिण्डमय इत्यर्थः, तेजसस्त्वेकान्तसुषमादावनुत्पन्नत्वेन एकान्तदुष्ममादौ तुविध्वस्तत्वेनजम्बुद्वीपेऽस्य तत्परिणामेऽङ्गीक्रियमाणो कादाचित्कत्त्वप्रसङ्गः चायोमत्त्वतिचलत्वेन तत्परिणामे द्वीपस्यापि चलत्त्वापत्तिरिति तयोः स्वत एव संदेहाविषयत्वेन न प्रश्नसूत्रे उपन्यासः, भगवानाह—गौतम ! पृथिवीपरिणामोऽपि पर्वत दिमत्त्वात् अपपरिणामोऽपि नदीह्रदादिमत्त्वात्—यद्यपि स्वसमये पृथिव्यप् कायपरिणामत्वग्रहणेनैव जीवपरिणामित्वंसिद्ध तथापि लोकेतयोर्जीवत्वभ्याव्ववहारात् पृथग् ग्रहणं वनस्पत्यादीनां तु जीवत्व—व्यवहारः स्वपरसम्मत इति, पुद्गलपरिणामोऽपि मूर्तत्वस्य प्रत्यक्ष सिद्धत्वात्, कोऽर्थः ? जम्बुद्वीपोहि स्कन्धरूपपदार्थः सचावयवैः समुदितैरैव भवति, समुदायरूपत्वात् समुदायिन इति अथयदि चायं जीवपरिणामस्तर्हि सर्वेजीवा अत्रोत्पन्नपूर्वा उत्तनेत्याशंक्याह—“जम्बुद्वीपे णं भंते” इत्यादि, जम्बुद्वीपे भवंत ! द्वीपे सर्वे प्राणाः द्वित्रिचतुरिन्द्रियाः सर्वेजीवाः—पञ्चेन्द्रियाःसर्वेभूताः तरवः सर्वे सत्त्वाः पृथिव्यप्तेजोवायुकायिकाः,—अनेन च सांव्यवहारिकराशिबिषयकएवायं प्रश्नः, अत्रादि निगोद निर्गतानामेव प्राणजीवादिरूपविशेष पर्यायप्रतिपत्तेः, पृथिवीकायिकतयाअप् कायिकतयातेजस्कायिकतया वायुकायिकतया वनस्पति

कायिकतया उपपन्नपूर्वाः—उत्पन्नपूर्वाः ? भगवानाह—“त
 गोयमा' एवं गौतम ! यथैवप्रभपूर्वतथैवप्रत्युष्धारणीयं पृथिवीका-
 यिकतया यावत् वनस्पतिकायिकतया उपपन्नपूर्वाः कालक्रमेण—
 संसारस्यानादित्वात्, न पुनः सर्वे प्राणादयो जीवविशेषा युग-
 पदुत्पन्नाः सकलजीवानामेककालं जम्बुद्वीपेपृथिव्यादिभावेनोत्पादे
 सकलदेवनारकादि भेदाभावप्रसक्तैः नचैतदस्ति तथा जगत्स्व-
 भावादिति, कियतोबारानुत्पन्ना इत्याह—असकृद्—अनेकशः
 अथवा अनन्तकृत्वः—अनन्तवारान् संसारस्यानादित्वात् ॥



श्री उत्तराध्ययन सूत्र



मूलम्-धम्माधम्मागोसा, तिन्निवि एए अणाइया ।
 अपज्जवसिया चेव, 'सव्वद्धं' तु वियाहिया ॥ ८ ॥
 समएवि संतइं पप्प, एवमेव विआहिए । आएसं
 पप्प साईए, सपज्जवसिएविय ॥ ९ ॥

—श्री उत्तराध्ययन, बृहद्वृत्ति, अध्ययन, ३६ सूत्र ८-९ ॥

टीका-धर्मश्चाधर्मश्चाकाशं च धर्माधर्मकाशानि त्रीत्यत्ये-
 तानि, न विद्यन्ते आदिर्येषा मत्स्यनादिकानि, इत्यतः कालात् प्रभृत्य-
 मूनि प्रवृत्तानीत्यसम्भवात् न पर्यवसितान्यपर्यवसितान्यनन्तानीति-
 यावत्, न हि कुतश्चित्कालात् परतएतानि न भविष्यन्तीति
 सम्भवः, चैवौ प्राग्वत्, तथाच 'सर्वाद्धा' सर्वाकालं, कालात्यन्त
 संयोगे द्वितीया 'तुः' अवधारणेऽतः सर्वदा स्वस्वरूपापरित्यागतो
 नित्यानीतियावत्, 'व्याख्यातानि' कथितानि, सर्वत्र लिङ्गव्यत्ययः
 प्राग्वत्, समर्थोऽपि 'सन्ततिम्' अपरापरोत्पत्तिरूपप्रवाहात्मिकां

‘प्राप्य’ आश्रित्य ‘एवमेव’ अनाद्यपर्यवसितत्वलक्षणे नैव प्रकारेण
 ‘व्याख्यातः’ प्ररूपितः, पठन्ति च ‘एवमेव संतर्हं पप्प समणवि’ति
 स्पष्टम्, ‘आदेशः’ विशेष प्रतिनियतव्यक्त्यात्मकं ‘प्राप्य’ अङ्गी-
 कृत्य सादिकः सपर्यवसितः, ‘अपि’ समुच्चये ‘च’ पुनरर्थे भिन्न-
 क्रमश्च देशं पुनः प्राप्येतियोज्यः, विशेषापेक्षया ह्यभूत्वाऽयं भवति
 भूत्वा च न भवतीति सादिनिधन उच्यत इति सूत्रद्वयार्थः ॥

मूलम्—संतर्हं पप्प ते ऽणाई, अप्पज्जवसिआवि अ । ठिइं
 पडुच्च साइआ, सपज्जवसिआवि अ ॥

— श्री उत्तराध्ययन, बृहद्बुद्धि, अध्ययन, ३६, सू० १२ ॥

टीका—‘सन्तर्हिम्’ उक्तरूपां ‘प्राप्य’ आश्रित्य ‘ते’ इति
 स्कन्धाः परमाणवश्च ‘अणाई’ति अनाद्योऽपर्यवसिता अपिच,
 नहि ते कदाचित्तत्प्रावहतो न भूता न वा भविष्यन्तीति, ‘स्थिती’
 प्रतिनियतक्षेत्रावरधारूपां ‘प्रतीत्य’ अङ्गीकृत सादिकाः सपर्य-
 वसिता अपि च, तदपेक्षया हि प्रथमतस्तथाऽस्थित्वैवावतिष्ठन्ते
 अवस्थाय च न पुनर्न तिष्ठन्तीत्यभिप्रायः ॥



श्री नन्दी सूत्र



-से कि तं साइयं सपञ्जवसिअं, अणाइयं अपञ्जव-
 सिअं च ? इच्छेइयं दुवालसंगं गणिपिडगं बुच्छि-
 लिनयद्वयाए साइअं सपञ्जवसिअं, अबुच्छिलि-
 नयद्वयाए अणाइअं अपञ्जवसिअं, तं समासओ
 चउव्विहं पणत्तं, तंजहो-दव्वओ खित्तओ कालओ
 भावओ, तत्थ दव्वओ णं सम्मसुअं एगं पुरिसं पडुच्च
 साइअं सपञ्जवसिअं, बहवे पुरिसे य पडुच्च अणा-
 इयं अपञ्जवसिअं, खेत्ताओ णं पंच भरहाइं पंचेखयाइं
 पडुच्च साइअं सपञ्जवसिअं, पंच महाविदहाइं
 पडुच्च अणाइयं अपञ्जवसिअं कालओ णं उस्स-
 पिणि ओसपिणि च पडुच्च साइअं सपञ्जवसिअं,
 नो उस्सपिणि नो ओसपिणि च पडुच्च अणाइयं
 अपञ्जवसिअं, भावओ णं जे जया जिणपन्नत्ता भावा

जैनागमों में स्याद्वाद

आधविज्जंति पणविज्जंति परुविज्जंति दांसिज्जंति
निदंसिज्जंति उवदंसिज्जंति तथा (ते) भावे पडुच्च
साइअं सपज्जवसिअं, खाओवसमिअं पुण भावं
पडुच्च अणाइअं अपज्जवमिअं । अहवा भवसिद्धि-
यस्स सुयं साइयं सपज्जवसिअं च, अभवसिद्धियस्य
सुयं अणाइयं अपज्जवमिअं (च) सव्वागासपएसग्गं
सव्वागासपएसेहिं अणंतगुणिअं पज्जवक्खरं निप्फ-
ज्जइ, सव्वजीवाणंपि अ णं अक्खरस्स अणंतभोगो
निच्चुग्घाडियो, जइ पुण सोऽवि आवरिज्जा तेषां
जीवो अजीवत्तं पाविज्जा, 'सुट्ठुवि मेहसमुदए
होइ पभा चंदसूराणं' । से तं साइअं सपज्जवसिअं,
सेत्तं अणाइयं अपज्जवसिअ ॥

श्री नन्दी सूत्र ४३ ॥

टीका—अथ किं तत्सादि सपर्यवासितमनादि अपर्यवसितंच
सहादिनावर्तते इतिसादि, तथा पर्यवसानंपर्यवसितं, भा-
त्ययः, सहपर्यवसितेनवर्तते इति सपर्यवसितं, आदिरहित-
दे, नपर्यवसितमपर्यवसितं, आचार्य आह—इत्येतत् द्वादशा-
णपिटकं “वेच्छित्ति नयट्ठाए” इत्यादिव्यवच्छित्ति प्रतिपादन-
यो व्यवच्छित्तिनयः पर्ययास्तिकनय इत्यर्थः तस्यभावे
च्छित्तिनयार्थता तथापर्यायापेक्षयेत्यर्थः किमित्याह— सादि-

सपर्यवसितं नारकादिभव परिणत्यपेक्षया जीव इव, “अवुच्छिन्ति-
नयद्वयाए”ति अव्यवच्छिन्ना प्रतिपादन्परोक्षयोऽव्यवच्छिन्ति-
नयार्थोद्रव्यमित्यर्थः । तद् भावस्तत्तातया द्रव्यापेक्षया इत्यर्थः,
किमित्याह— अनादि अपर्यवसितं त्रिकाक्षावस्थायित्वाज्जीववद्
अधिकृतमेवार्थं द्रव्यक्षेत्रादिचतुष्टयमवि मृत्वा प्रतिपादयति
—तत् श्रुतज्ञानं समासतः संचोपेण चतुर्विधं
प्रज्ञापितं तद्यथा द्रव्यतः क्षेत्रतः कालतः भावतश्च तत्र द्रव्यतो’ण’
मितिवाक्यश्लोकारे सम्यक् श्रुतमेकंपुरुषं प्रतीत्यसादिसपर्यव सतं
कथमिति चेत् ? उच्यते, सम्यक्त्वावाप्तौ ततः प्रथमपाठतो
वा सादि पुनर्मिथ्यात्वप्राप्तौ सति वा सम्यक्त्वे प्रमादभावतो
महाग्लानत्वभावतो वा सुरलोकगमनसंभवतो वा विस्मृतिभुपा-
गते केवलज्ञानोत्पत्तिभावतो वा सर्वथा विप्रनष्टे सपर्यवसितं
बहून्पुरुषान् कालत्रयवर्तिनः पुनः प्रतीत्यानाद्यपर्यवसितं सन्तानेन
प्रवृत्तत्वात् कालवत् तथा क्षेत्रतो णमिति वाक्यश्लोकारे
पञ्चभरतानि पञ्चरैवतानि प्रतीत्य सादिसपर्यवसानं, कथं ?
उच्यते, तेषु क्षेत्रेष्ववसर्पिण्यां सुषमदुष्पमापर्यवसाने उत्सर्पि-
ण्यान्तु सुषमा प्रारंभे तीर्थकरधर्मसंघानां प्रथमतयोत्पत्तेःसादि,
एकान्ते दुष्पमादौ च काले तदभावात् सपर्यवसितं, तथा
महाविदेहाद् प्रतीत्यानाद्यपर्यवसितं, तत्रप्रवाहापेक्षया तीर्थक-
रादीनामव्यवच्छेदोत्, तथा कालतो ण’मिति वाक्यश्लोकारे

सपिण्णी च प्रतीत्य सादिमपयानित, तथाहि
 मृश्वेव समामु सुषमदुषमादुषमदुषमादुषमा-
 ज्ञा विरवा द्वयोः समयोः दुषमसुषमादुषमदुषमादुषमा-
 र्भवन्त न परतः, ततः सादिमपयवास्तितं, अत्रकोत्कर्षण्यवनाभगां
 स्वल्पप्राप्तार्थं कालचक्रं विंशतिसागरोपम कोट्य कोटीप्रमाणं
 विन्यजनानुग्रहार्थं यथा भूतवृत्तिदृता दर्शितं तथावयमपिदश-
 यामः—‘चत्वारि सागरोवमकोटिकोटीऽ संतई’ उ । पगंतसुस्तमा-
 खलु जिह्नेहि सव्येहिनिदिष्टा ॥ १ ॥ द्याया—चतस्रः सागरोपम
 कोटी कोट्यः संतत्यातु । एकान्त सुषमा खलु जिनैः सर्वैर्निर्दिष्टा
 ॥ १ ॥ तीक्ष्णरिसाणमाऊ तिञ्जि ज पलियाई तद् पमाणं ।
 तिञ्जेव गाउयाह आइरभणति समयन्तु ॥ २ ॥ द्याया तस्यां
 पुरुषाणां आयु स्त्रीणि च पत्योपमानि तथा प्रमाणञ्च ॥ त्रीण्येव
 गज्जूताणि आदौ भणति समयज्ञाः ॥ ॥ २ ॥ उपभोगपरीभोग
 जन्मन्तर सुकयवीयजाया उ । कल्पतरुसमूहायो होंति किलेसं
 विंशतेसि ॥ ३ ॥ द्याया उपभोगपरीभोगा जन्मान्तर
 सुकृतवीजजातास्तु । कल्पतरुसमूहात् भवन्तिक्लेशविनाशेषाम
 ॥ ३ ॥ ते पुण दसप्पयाराकप्पतरु समणत्तमयकेऊहि । धीरेहि-
 विनिदिद्धा मणोरहा पूरगा एए ॥ ४ ॥ द्याया—ते पुनर्दशप्रकाराः
 कल्पतरवः श्रमणसमयकेतुभिः । धीरैर्विनिदिष्टा मनोरथा पूरका
 एते ॥ ४ ॥ मत्तांगया यमिगा तुडिअंगा दीव जोइ चिराङ्गा ।
 चित्तरसा मणियंगा गेहागारा आणय [गि] णाय ॥ ५ ॥

छाया—सत्ताङ्गदाक्षशृंगास्त्रुटिताङ्गादीष्व्योतिश्चित्राङ्गाः । चित्र-
रसामयङ्गगुहाकारा अलग्नाश्च ॥ १॥ मत्तंगेषु मत्तजंभाशशि-
भिरेषु । तुडियिरेषु य संगयतुडियाणि बहुप्पगाराणि ॥ ६ ॥
छाया - सत्ताङ्गदेपु मत्तं मुखपेयं भाजनानिभृंगेषु । तुटितोपेपुच
संगतत्रुटितानि बहुप्रकाराणि ॥ ६ ॥ दीवसिहा जोइलनामया
य निच्चं करति उज्जोयं । चित्तंगेषु यमत्तं चिरारसा भोयणह्वार
॥ ७ ॥ छाया—दीपाशिखा ज्योतिर्नामकाश्च नित्यं कुर्वन्त्युद्योतम् ।
चित्रांगेषु च माल्यंचित्ररसाम्भोजनार्थाय ॥ ७ ॥ मणिर्यंगेषु य
भूषणवराणि भवणाणि भवणरुक्तेषु । आइएणे [आगिरांगे]
सु य इनिच्छयवत्याणि बहुप्पगाराणि ॥ ८ ॥ छाया—मण्यंगेषुच-
भूषणवराणि भवनानि भवतपृष्ठेषु । आकीर्येणु चेपिस्तानि च
[प्राथितानि] वस्त्राणि बहुप्रकाराणि ॥ ८ ॥ ११३ ॥ अत्र
य नरनारिणाराण ताणमुवभोगा भविषपुराण ॥ ९ ॥
सन्वणरा जिणा विति ॥ ९ ॥ छाया—पतंपुचान्दे ॥ ९ ॥
गणानां तेषामुपभोगाः । भाविपुनर्भवरहिता इति ॥ १० ॥
ब्रुवते ॥ ९ ॥ तोतिणिण सागरोवमकोडाकोडीडर्दीयरगहिं ।
सुसमत्ति समक्खाया पवाहरूपेण धीरेहिं ॥ १० ॥ छाया—तत-
स्तिष्ठः सागरोपमकोटीकाटीमाना वीतरागैः । सुपमैतिसमाख्याता
प्रवाहरूपेणार्वादैः ॥ १० ॥ तोए पुरिसाणमाडं दोन्नि ड पलियाईतह
पमारांच । दो चेव गाउयाइ आइए भवति समयन्हु ॥ १४ ॥

छाया—तस्यां पुरुषाणामायुः द्वे तु पल्योपमे तथा प्रमाणं च । द्वे
एव गव्यूते आदौ भणंति समयज्ञाः ॥ ११ ॥ उवभोगपरिभोगा
तेसिपि य कष्पपायवेहितो । होंति किलेसेण विनापार्थं पुण्णाणु-
भावेण ॥ १२ ॥ छाया—उवभोगपरिभोगास्तेषामपि च कल्प
पादपेभ्यः । भवन्तिक्लेशेन विना प्रायः पुण्यानुभावेन ॥ १२ ॥
तो सुसमदुस्यमाए पवाहरूपेण कोडिकोडीओ । अयराण दोत्रि
सिद्धाजिरोहिं जियरागदोसेहिं ॥ १३ ॥ छाया—तदा सुषमदुष्प-
मायां प्रवाहरूपेण कोटीकोट्यौ ॥ अतरथोर्द्धे शिष्टे जिनैर्जितराग-
द्वेषैः ॥ १३ ॥ तीए पुरिसाणमांड एगं पलिअं तहा पमाणं च ।
एगं च गाउयं तीए आईए भणंति समयन्तु ॥ १४ ॥ छाया—
तस्यां पुरुषाणां आयुरेकं पल्योपमं तथा प्रमाणं च एकं च गव्यूतं
तस्यां पुरुषाणां आदौ भणंति समयज्ञाः ॥ १४ ॥ उवभोगा तेसिपि य
कष्पपायवेहितो । होंति किलेसेणाविणा नवरं पुण्णाणुभावेण
॥ १५ ॥ छाया - उवभोगपरिभोगा स्तेषामपि च कल्पपादपेभ्यः ।
भवन्तिक्लेशेनविना नवरं पुण्यानुभावेन ॥ १५ ॥ सूसमावसेसे
पढमजिणो धम्मनायगो भयवं । उप्पणो स्हपुण्णो सिप्पकला-
वंसओ—उसभो ॥ १६ ॥ छाया—सुषमदुष्पमावशेषे प्रथमजिनो
धर्मनायको भगवान् । उत्पन्नः पूर्णशुभः शिल्पकलादशकोट्युषम-
॥ १६ ॥ तो दुसमसूसमूणा वायालीसाइ बरिससहसेहिं । सागर-
कोडाकोडीएमेवजिरोहिं पण्णात्ता ॥ १७ ॥ छाया—ततः दुष्पम-
सुषमा ऊना द्विचत्वारिंशता वर्षसहस्रैः । सगरोपमकोटीकोटी

एवमेवजिनैः प्रज्ञाप्ताः ॥ १७ ॥ तीणपुरिसाणमाडं पुव्वपमाणेण
तह पमाणं च । धणुसंखा निदिट्ठं विसेस सुत्ताओ नायव्वं
॥ १८ ॥ छाया—तस्यां पुरिषाणामायुः पूर्वप्रमाणेण तथा प्रमाणं
च धनुःसंख्या निदिष्टं विशेषः सूत्रान् ज्ञातव्यः ॥ १८ ॥ उच्च
भोगपरीभोगा पवरोसहिमाइएहिंविन्नेया । जिण=किवासुदेवा
सव्वेऽवि इमाइ वालिणा ॥ १९ ॥ छाया—उच्चभोगपरीभोगा
प्रवरौषध्यादिभिर्विज्ञेयाः । जिनचक्रिवासुदेवाः सर्वेऽप्यस्यां
व्यतिक्रान्ताः ॥ १९ ॥ इगवीसहस्साइ वासराणं दूममा इमीएउ ।
जीवियमाणुवभोगाइयाइ दीसंति हार्यंति ॥ २० ॥ छाया—
एकविंशतिः सहस्रं णिणवर्षाणां दुष्पमास्त्रायानु ॥ जीवितमानोपभो-
गादिकानि दृश्यन्ते हीयमानानि । एतत्तु यः कलितद्वयरा जीवपमा-
णाइएहिं निदिट्ठा । अइदूतमत्ति घोरा वाससहस्साइ इगवीसा
॥ २१ ॥ छा० अतश्च क्लृप्ततरा जीवित प्रमाणादिकैर्निर्दिष्टा ।
अतिदुष्पमेति (माऽति) घोरा वर्षसहस्राणि एकविंशतिः ॥ २१ ॥
ओस प्पणीए एसो कलविभागो जिणेहि निदिट्ठो । एसो
च्चिग्र पडिट्ठोमंविन्नेओम्पप्पणीएऽवि ॥ २२ ॥ छा०—
अवसर्पिण्येयः कालविभागोऽस्मिन्निर्दिष्टः । एष इव प्रतिजोमो
विज्ञेय उत्सर्पिण्यामपि ॥ २२ ॥ एयंनु कलचक्रं सिम्सजणाणुग-
रुट्ठि (ट्ट) या भणि अं संखेवेण महत्थो विसेस सुत्ताओ नायव्वो
॥ २३ ॥ छा०—एतत्कालचक्रं शिष्यजनानुग्रहार्थाय भणितम् ।

संक्षेपेण महा-विशेषः सूत्रादुद्घातय्यः ॥ २३ ॥ “सोऽस्तपि रसा”
 त्यादि. नोत्तर्पिणां नव-परिणी प्रतीत्यासाध्यव्यवस्थितं, महाविदेश-
 पुहि नोत्तर्पिणश्चत्तर्पिणीरूपः बाह्यः । तत्र च नवैश्वर्यव्यव-
 स्मयक-श्रुतमित्यनाश्रयव्यवस्थितं, तदाभावतो ‘एतन्निवाक्या संक्षे-
 पे’ इत्यादि-दिष्टिर्निर्देशो ये केचन यदा पूर्वाह्लादो जिनः प्रज्ञाजिन-
 प्रज्ञा भाषाः—पदार्थाः ‘आवविजंति’ ति प्राकृतत्वादाख्यायन्ते,
 सामान्यरूपतया विशेषरूपतया वा कथ्यन्ते इत्यर्थः
 प्रज्ञाप्यन्ते नामादिभेदप्रदर्शनेनाख्ययन्ते, तेषां नामादीनां भेदा-
 प्रदर्शयन्ते तत्तथः, प्रकथ्यन्ते नामादिभेदस्वरूपकथनेन प्रख्यायन्ते
 नामादीनां भेदानां स्वरूपमाख्यायते इति भावायः, यथा—“पञ्चा-
 याणभिव्यं ठिप्रसन्नत्वे तद्वत्त्वानन्देकत्वं । जाइच्छ्रियं च नामं जाव
 इत्वं च पायसं ॥ १ ॥ छाया—पर्यायानभिव्यं स्थितमन्यार्थेतद-
 र्थादेरेकम् । यादृच्छ्रियं नाम यावद्वद्व्यञ्ज प्रायेण ॥ १ ॥
 वंपुण तद्वत्त्वसुन्नं तदभिधायण तारिसागारं । कोरइ व निगारं
 इत्तरामयं च सा ठवणा । २ ॥ छाया—यत्तुलस्तद्वत्त्वसुन्नं
 तदभिधायणतादृशाकारम् । कियतेवा निराकाशमेत्वर-
 मन्तरञ्च सा स्थापना । २ ॥” इत्यादि, तथा—
 दश्यन्ते—उपमानमात्राप्रदर्शनेन प्रकटीक्रियन्ते, यथा गारव-
 गवयः, इत्यादि, तथा निदर्शयन्ते——सुदृष्टान्ताप्रदर्श-
 नेन स्वप्रकटीक्रियन्ते, उपदर्शयन्ते—उपमानमात्राप्रदर्शना-
 शिष्यबुद्धौ स्थापयन्ते, अथवा उपदर्शयन्ते—वक्तव्यमात्राप्रदर्शना-

रगलः पन्मज्जशिष्यबुद्धिपू व्यवस्थापन्तो, तान् भावान् तदा
तस्मिन् काले तथा ऽऽख्यायमानान् प्रतीय सादिसपरिवर्तितं,
एतदुक्तं भवति कस्मिन् काले तं तं प्रज्ञापकोपयोगं स्वरविशेषं
प्रयत्नविशेषं नामनाविशेषं मङ्गविन्यासादिकं च प्रतीत्य सादिस-
पर्यवर्तिनः. उपयोगादेः प्रतीकात्मन्यथाऽन्यथाभवनात् . उक्तं च
“उपयोग उपपत्त्या आसणभेदादयः पदसम्यक् । मिशा पण-
व स्मा सादिसपर्यवर्तयं तम्हा ॥ १ ॥ ज्ञायोपशमिकभावं पुनः
प्रतीत्यानाद्यवर्तिनं, प्रज्ञाद्वयेण ज्ञायोपशमिक भावत्यानाद्यपर्य-
वर्तिनत्वान् . अथवाऽत्र चतुर्गिका, तद्वयथा— सादिसपर्य-
वर्तिनं १ साध्यावर्तिनं २ ज्ञादिसपर्यवर्तिनं ३
सनाद्यपर्यवर्तिनं च ४, तत्र प्रामाण्यप्रदर्शनायाह—‘अभवे’ त्यादि,
अनेन प्रमाणत्वेऽप्युक्ते भवसिद्धिर्लोभयस्तस्य सम्यक् श्रुतं
सादि (अ) पर्यवर्तिनं, सम्यक्त्वभावे प्रथमतयाभावात् भूयोसि-
द्धत्वाभावे त्वतोत्पत्तेरिति विनाशात्, द्वितीयस्तु भङ्गःशून्यो,
नहि सम्यक् श्रुतं मिथ्यात्वं वा सादिभूत्वाऽपर्यवर्तिनं सम्भवति,
मिथ्यात्वप्रतीतिं केवलत्वात् ताऽवश्यं सम्यक् श्रुतस्यविनाशात्,
मिथ्यात्वतत्त्वादि च सादिसपर्यवर्तिनं काळान्तरे सम्यक्त्वावाप्तावभावा-
त् इति, तृतीयमङ्गकस्तु मिथ्याश्रुतापेक्षयावेदितव्यः, तथाहि—
सर्वव्यस्यानादिमिथ्यादृष्टेमिथ्याश्रुतमनादि सम्यक्त्वावाप्तौ च
तदपयानीति सपर्यवर्तिनः चतुर्थमङ्गकं पुनरुपदर्शयति—‘अभवे’

त्यादि, अभववासिद्धिकः—अभव्यस्तस्य श्रुतं मिथ्याश्रुतमनाद्य-
 र्यवसितं, तस्य सदैव सम्यक्त्वादिगुणहीनत्वात्, एषा चतु-
 र्भंगिका यथाश्रुतस्योक्तातथामतेरपि द्रष्टव्या, मतिश्रुतयोरन्योन्या-
 नुगतत्वात्, केवलमिह श्रुतस्य प्रक्रान्तत्वात्माक्षान्तस्यैव दर्शिता,
 अत्राह—ननु तृतीयभंगे चतुर्थभंगेवा श्रुतस्यानादिभाव उक्तः, सच
 जघन्य उत मध्यम आहोस्विदुत्कृष्टः ?, उच्यते, जघन्यो मध्य-
 मोवा न तूत्कृष्टो, यतस्तस्येदं मानं—‘सव्वागासे’ त्यादि, सर्वं
 च तदाकाशं च—सर्वाकाशं, लोकाकोकाकाशमित्यर्थः, तस्य प्रदेशा
 —निर्विभागाभागाः सर्वाकाशप्रदेशास्तेषामग्रं—प्रमाणं सर्वाकाश-
 प्रदेशाग्रं तत् सर्वाकाशप्रदेशैरनन्तगुणितम्—अनन्तशोगुणित-
 मेकैकस्मिन् आकाशप्रदेशेऽनन्तागुरुलघुपर्यायभावात्, पर्याया-
 प्राक्षरं निष्पद्यते—पर्यायपरिमाणाक्षरं निष्पद्यते, इयमत्र भावना -
 सर्वाकाशप्रदेशपरिमाणं सर्वाकाशप्रदेशैरनन्तशोगुणितं यावत्
 परिमाणं भवति तावत् प्रमाणं सर्वाकाशपर्यायाणामग्रं भवति,
 एकैकस्मिन् आकाशप्रदेशे यावन्तो ऽ गुरुलघु पर्यायास्ते सर्वेऽपि
 एकत्रपि ण्डिता एतावन्तो भवन्तीत्यर्थः, एतावत् प्रमाणं चाक्षरं
 भवति, इह स्तोकत्वाद्गर्भास्तिकायादयः साक्षात् सूत्रे नोक्ताः,
 परमार्थतस्तुतेऽपि गृहीता द्रष्टव्याः, ततोऽयमर्थ—सर्वद्रव्यप्रदेशाग्रं
 सर्वद्रव्यप्रदेशैरनन्तशोगुणितं यावत् परिमाणं भवति तावत्
 प्रमाणं—सर्वद्रव्यपर्याय परिमाणं,—एतावत् परिमाणं चाक्षरं

तमोभागोऽनेकविधः, तत्र सर्वजवन्यश्चैतन्यमात्रं, तत् पुनः सर्वो-
 ल्क्यश्रुतावरणस्यानद्विनिद्रोदय भावेऽपि नाव्रियते ।, तथा जीव-
 स्वाभाव्यात्, तथा चाह—जइ पुण' इत्यादि, यदि पुनः सोऽ-
 पि अनन्ततमोभाग आव्रियते तेनतर्हि जीवोऽजीवत्वं प्राप्नुयात्,
 जीवोहिनाम चैतन्यलक्षणस्ततो यदिप्रबलश्रुतावरणस्यानद्वि निद्रो-
 दयभावेचैतन्यमात्रमप्याव्रियेत तर्हि जीवस्यस्वभावपरित्यागादजी-
 वतैव संपर्नापद्येत, नचैतद्दृष्टमिष्टंवा, सर्वस्य सर्वथा स्वभावा-
 तिरुकारात्, अजैवदृष्टान्तमाह—'मुहुरी' त्यादि, मुहुरपि मेघ-
 समुदये भवति प्रभाचन्द्रसूर्ययोः, इयमत्रभावना—यथा निविड-
 नविडतर मेवपश्लैराच्छादितयोरपि सूर्याचन्द्रमसो नैकान्तेन तत्
 प्रमानाशः संपद्यते, सर्वस्य सर्वथा स्वभावापनयनस्य कर्तुम-
 शक्यत्वात्, एवमनन्तानन्तरपि ज्ञानदर्शनावरण कर्मपरमाणुभि-
 रेकेकस्यात्मप्रदेशात्वाऽऽवेष्टितस्यापि नैकान्तेन चैतन्यमात्रस्या
 (प्य) भावोभवति ततो यत्सर्वजवन्यं तन्मतिश्रुतात्मकतः सिद्धोऽ-
 न्नस्यानन्ततमोभागानित्योद्घटितः, तथाच सति मतिज्ञानस्य
 श्रुतज्ञानस्य चानादिभावः प्रतिगममानो न विरुध्यते इतिस्थितः ।
 'सेत्त' मित्यादि, तदेतत् सादिसर्पयवसित मनाथपर्यवसितं-
 च ॥ इति श्री नन्दीसूत्रेऽक्षरानन्तभागस्य नित्योद्घाटिता समाप्ता
 मृतम्—इच्चेइयमि दुवालसंगे गणिपिडगे अण्ता भावा
 आण्ता अभावा अण्ताहेऊ अण्ता कारणा अण्ता

परिमाणमकारादिकं भवति, आह च भाष्यवृत्त - सय पञ्चागृहि
उ केवलेण तुल्यं न होइ न परेहिं । सयपरपञ्चागृहिं तु तं तुल्यं
केवलेणेव ॥ १ ॥ छाया ॥ स्वपर्यायैस्तु केवलेन तुल्यं न भव-
ति न परैः । स्वपरपर्यायैस्तु तत्तुल्यं केवलेनैव । १ ॥ यथा चा-
कारादिकं सर्वद्रव्यपर्यायपरिमाणं तथा मत्यादीन्यपि ज्ञानानिद्र-
ष्टव्यानि न्यायस्य समानत्वात् ॥ इह यद्यपि सर्वज्ञानमविशेषे-
णाक्षरमुच्यते, सर्वद्रव्यपर्यायपरिमाणं च भवति तथापिश्रुताधि-
कारादिहाक्षर श्रुतज्ञानमवसेयं, श्रुतज्ञानञ्चमतिज्ञानाविनाभूतंततो
मतिज्ञानमपि तदेव यतः श्रुतज्ञानमकारादिकं चोत्कर्तः सर्वद्रव्य-
पर्यायपरिमाणं तच्च सर्वोत्कृष्टश्रुतकेवलिनो द्वादशङ्गविदः सग-
च्छते न शेषस्य, ततोऽनादिभावः श्रुतस्य जन्तूनां जघन्योम-
ध्यमोऽद्रष्टव्यः नतूत्कृष्ट इति स्थितम् । अपर आहनन्वनादिभाव
एव श्रुतस्य कथमुपपद्यते ?, यावता यदा प्रवलश्रुतज्ञानावरणस्त्या-
नर्द्धि निद्रारूपदर्शनावरणादयः संभवन्ति तदासंभाव्यते साकल्येन
श्रुतस्यावरणं यथाऽवध्यादि ज्ञानस्य ततोऽवध्यादिज्ञानमिवासदिम-
देवयुज्यते श्रुतमपि नानादिमदिति कथं तृतीयचतुर्थभंगसंभवः ?,
तत आह - 'सर्वजीवाणामपि' सर्वजीवानामपि, एमितिवाक्यालं-
कारे अक्षरस्य - श्रुतज्ञानस्य (श्रुतसंलुलित केवलस्येत तु भा य-
कृन्) श्रुतज्ञानं च मतिज्ञानाविनाभावि ततो मतिज्ञानस्यापि
अनन्तोभागो 'नित्योद्घाटितः' सर्वदैवानावृतः सोऽपि च अनन्त-

स नियमान् सर्वमुपलभते, सर्वोपलब्धिमन्तरेण विवक्षितस्यै-
 कस्य स्वपरपर्यायभेदभिन्नतया सर्वात्मनावगन्तुं शक्यत्वात्
 यश्च सर्वं सर्वात्मना साक्षादुपलभते स एकं स्वपरपर्यायभेदभिन्न
 जानाति, तथाऽन्यत्राप्युक्तं “एकोभावः सर्वथा येन दृष्टः, सर्वे-
 भावाः सर्वथा तेन दृष्टाः । सर्वेभावाः सर्वथा येन दृष्टाः, एको-
 भावः सर्वथा तेन दृष्टः ॥ १ ॥” तदेवमकारादिकमपिवर्णजातं
 केवलज्ञानमिव सर्वद्रव्यपर्याय परिमाणमिति न कश्चिद्विरोधः ।
 अपि च केवल ज्ञानमपि स्वपरपर्यायभेदभिन्नं यतस्तदात्मस्वभा-
 वरूपं न घटादि वस्तु स्वभावात्मकं ततो ये घटादिस्वपर्याया-
 स्ते तस्यपर्यायाः ये तु परिच्छेदकत्वस्वभावास्ते स्वपर्यायाप-
 र्यायाः अपि च पूर्वोक्तयुक्तेस्तस्यसंवन्धिन इति स्वपरपर्यायभेद-
 भिन्नं तथा चाह—भा. यकृन्—वस्तुसहस्रं पइ तंपि सपरपजायभेद-
 भिन्नं । तं जेण जीयभावो भिन्ना य तन्नो घडाईया ॥ १ ॥
 छाया, वस्तुस्वभावं प्रति तदपि स्वपरपर्यायभेदभिन्नं तु । तत् येन
 जीवभावः भिन्नाश्च ततो घटादिकाः ॥ ततः पर्यायपरिमाणचिन्ता-
 यां परमार्थतो न कश्चिदकारादिश्रुत केवलज्ञानयोर्विशेषः, अथंतु
 विशेषः—केवल ज्ञानं स्वपर्यायैरपि सर्वद्रव्यपर्यायपरिमाणतुल्यम-
 कारादि कं तु स्वपरपर्यायैरेव, तथाहि—अकारस्य स्वपर्यायाः सर्वद्र-
 व्यपर्यायाणामनन्ततमभागकल्पाः, परपर्यायास्तु स्वपर्यायरूपानन्तत-
 मभागोत्तः सर्वद्रव्यपर्यायाः, ततः स्वपरपर्यायैरेव सर्वद्रव्यपर्याय-

श्यते, अपिच सर्ववस्तु प्रतिनियतस्वभावं, सा च प्रतिनियतस्वभा-
 वता प्रतियोग्यभावात्मक तोषनिबन्धना, ततो यावन्न प्रतियोगि-
 ज्ञानं भवति तावन्नाधिकृतं वस्तु तदभावात्मकं तत्त्वतो ज्ञातुं
 शक्यते, तथा च सति घटादिपर्यायामपि अकारस्य प्रतियोगित्वा-
 त्तदपरिज्ञाने नाकारो याथात्म्येनावगंतुं शक्यते इति घटादि-
 पर्याया अपि अकारस्य पर्यायाः, तथाचात्र प्रयोगः—यदनुपलब्धौ
 यस्यानुपलब्धिः स तस्य संबन्धी यथा घटस्य रूपादयः, घटादिपर्या-
 यानुपलब्धौ चाकारस्य न याथात्म्येतोषप्रतिविरिति ते तस्य संब-
 न्धिनः नचायमसिद्धोद्देतुः, घटादिपर्यायरूपप्रतियोगप्रज्ञाने तदभावा-
 त्मकस्याकारस्य तत्त्वतो ज्ञातत्वायोगादिति, आह च भाष्यकृत्—
 “जेसु अनाएसु तथो न नज्जर नज्जर य नाएसु” । कह तस्स ते न
 धम्मा ?, घडस्सरूपादधम्मव्व ॥ १ ॥ छाया ॥ येव्व ज्ञातेषु
 स को न ज्ञायते ज्ञायते च ज्ञातेषु । कथं तस्स ते न धर्माः घट-
 स्य रूपादि धर्मो इव ॥ १ ॥” तस्माद् घटादिपर्याया अपि
 अकारस्य संबन्धिन इति स्वपरपयायापेक्षयाऽकारः सर्वद्रव्यपर्याय-
 परिमाणः, एवमाकारद्वयोऽपि वर्णाः सर्वे प्रत्येकं सर्वद्रव्यपर्या-
 यपरिमाणा वेदितव्याः एवं घटादिकमपि प्रत्येकं सर्वं वस्तुजातं
 परिभावंनीयं, न्यायस्य समानत्वान्, न चैतदनापं, यत उक्त-
 माचाराङ्गे—“जे एगं जाणइ, से सव्वं जाणइ, जे सव्वं जाणइ
 से एगं जाणइ” अस्यायमर्थः—य एकं वस्तूप्रभते सर्वपर्यायैः

बद्धः पदेनापि सह सम्बद्धो भवितुमर्हति, तथा प्रतीतेरभावात्, तदेतदसमीचीनं, सम्यक्वस्तुतत्त्वापरिज्ञानात् तथाहि— नास्ति च नाम तेन तेन रूपेणाभवनमिष्यते, तच्च तेन तेन रूपेणाभवनं वस्तुनो धर्मः, ततो नैकान्तेन तत्तुच्छरूपमिति न तेन सह संबन्धाभावः, तदपि च तेन तेन रूपेणाभवनं तंतं पर्यायमपेक्ष्य भवति, नान्यथा, तथाहि— यो यो घटादिगतः पर्यायस्तेन तेन रूपेण स्या न भवितव्यमिति सामर्थ्यात् तं पर्यायमपेक्ष्येते इति सुप्रतीतमेतत्, ततस्तेन तेन पर्यायेणा भवनस्य तं तं पर्यायमपेक्ष्य संभवान्तेऽपि परपर्यायास्तस्योपयोगिन इति तस्येति व्यपदिश्यन्ते, एवं रूपायां च विवक्षायां पटोऽपि घटस्य संबन्धाभवत्येव, पटमपेक्ष्य घटे पटरूपेणाभवनस्य भावात्, तथा च लौकिका अपि घटपटादीन् परस्परमितरेतराभावमधिकृत्य सम्बद्धान् व्यवहरन्तीत्यभिगीतमेतत्, इतश्च ते परपर्यायास्तस्येति व्यपदिश्यन्ते— स्वपर्यायविशेषणत्वेन तेषामुपयोगात्, इह ये यस्य स्वपर्यायविशेषणत्वेनोपयुज्यन्ते ते तस्य पर्याया यथा घटस्य रूपादयः पर्यायाः परस्परं विशेषका उपयुज्यन्ते चाकारस्य पर्यायाणां विशेषकतया घटादिपर्यायाः, तानन्तरेण तेषां स्वपर्यायव्यपदेशासंभवात्— तथाहि— यदि ते परपर्याया न भवेयु तर्ह्यकारस्य स्वपर्यायाः स्वपर्याया इत्येवं न व्यपदिश्येन्, परापेक्षया स्वव्यपदेशस्य भावात्, ततः स्वपर्यायव्यपदेशकारणतया तेऽपि परपर्यायान्तस्योपयोगिन इतितस्येति व्यपदि-

उच्यते, इहद्विधासम्बन्धः अस्तित्वेन नास्तित्वेन च तत्रास्ति
 त्वेन सम्बन्धः स्वपर्यायैः यथा घटस्यरूपादिभिः नास्तित्वेन संबन्धः
 परपर्यायैः तेषां तत्रासंभवात् यथा घटावस्थायां भृदः पिण्डाकारेण
 पर्यायेण, यतएव च ते तस्य न सन्ति इति नास्तित्वसंबन्धेन
 सम्बद्धाः अतएव च ते परपर्याया एव ते भवेयुः, ननु ये यत्र न
 विद्यन्ते ते कथं तस्येति व्यपदिश्यन्ते ?, न खलु धनं दरिद्रस्य न
 विद्यते इति तत्तस्य संबन्धि व्यपदेष्टुम् शक्यं, सा प्रापत लोक-
 व्यवहारातिक्रमः, तदेतन् महामोहमूढमनस्कतासूचकं, यतो यदि
 नाम ते नास्तित्वसंबन्धमधिकृत्य तस्येति न व्यपदिश्यन्ते तर्हि
 सामान्यतो न सन्तीति प्राप्तं, तथा च स्वरूपेणापि न भवेयु
 नचैतद्दृष्टमिष्टं वा, तस्मादवश्यं ते नास्तित्वसंबन्धमङ्गीकृत्य
 तस्येति व्यवदेष्ट्याः, धनमपि च नास्तित्वसंबन्धमधिकृत्य दरिद्रस्ये-
 ति व्यपदिश्यत एव, तथा च लोके वक्तारो—धनमस्य दरिद्रस्य न
 विद्यते इति, यदपि चोक्तं—‘न तत्तस्येति व्यपदेष्टुं शक्यमिति,
 तत्रापि तदस्त्वित्वेन तस्येति व्यपदेष्टुं न शक्यं, न पुनर्नास्तित्वे-
 नापि, ततो न कश्चिद्लौकिकव्यवहारातिक्रमः, ननु नास्तित्वम-
 भावः अभावश्चतुच्छरूपः तुच्छत्वेन च सह कथं संबन्धः ?,
 तुच्छस्य सकलशक्तिविकलतया संबन्धशक्तेरप्यभावात्, अन्यच्च-
 यदि परपर्यायाणां तत्र नास्तित्वं तर्हि नास्तित्वेन सह संबन्धो
 भवति, परपर्यायैस्तु सह कथं ?, न खलु घटः पटाभावेन सहसं-

भिन्नं । तं सच्च दृक्पञ्चायराशिमाणं मुण्येयत्वं ॥ १ ॥ आया—
 एकैकमक्षरं पुनः स्वपरपर्यायभेदतोभिन्नं । तत् सर्वद्रव्यपर्याय-
 राशिमानं ज्ञातव्यं ॥ १ ॥” अथ कथं स्वपरपर्यायापेक्षया सर्वं व्य-
 पर्यायराशितुल्यता ?, उच्यते, इह अ अ अ इत्युदात्तोऽनुदात्तः
 स्वरितश्च, पुनरप्येकैकोद्विधा—सानुनासिकोनिरनुनासिकश्चेत्यका-
 रस्य षड्भेदाः, ताश्च षड्भेदान् अकारः केवलो लभते, एवं ककारे-
 णापि संयुक्तो लभते षड्भेदान् एवं ञकारेण एवं यावद्वकारेण,
 एवमेकैकं केवलव्यञ्जनसंयोगे यथा षट् २ भेदान् लभते तथा
 सजातीय विजातीयव्यनञ्जद्विकसंयोगेऽपि, एवं स्वरान्तर संयुक्त
 तत्तद् व्यञ्जनसहितोऽप्पनेकान् भेदान् लभते, अपिच—एकैको-
 ऽप्युदात्तादिकोभेदः स्वरविशेषादनेकभेदोभवति, वाच्यभेदादपि
 समानवर्णश्रेणकस्यापि शब्दस्य भेदो जायते, तथाहि—न येनैव
 स्वभावेन करशब्दः हस्तमाचष्टे तेनैव स्वभावेन किरणमपि, किन्तु
 स्वभावभेदेन, त णऽकारोऽपि तेन तेन ककारादनि संयुज्यमानस्तं
 तमर्थं अ वाणोभिन्नस्वभावो वेदितव्यः, ते च स्वभावा अनन्ता-
 ज्ञातव्याः, वाच्यस्यानन्तत्वात्, एते च सर्वेऽप्पकारस्य स्वपर्याया,
 शेषास्तु सर्वेऽपि घटादिपर्याया आकारादिपर्यायाश्च परपर्याया,
 ते च स्वपर्यायेभ्योऽनन्तरुणाः तेऽपि चाकारस्य सम्बन्धिनोदृष्टव्याः,
 आह च—ये स्वपर्यायास्ते तस्य संबन्धिनो भवन्तु, ये तु परपर्या-
 यास्ते विभिन्नवस्त्वाश्रयात्वात् कथं तस्य संबन्धिनो व्यपदिश्यन्ते !,

भवति, तदपि चाक्षरं द्विधा ज्ञानसंकारादिवर्णजातञ्च, उभयत्रापि
 अक्षरशब्दप्रवृत्ते रूढत्वात्, 'द्विविधमपि चेह गृह्यते, विरोधा-
 भावात्, ननु ज्ञानं सर्वद्रव्यपर्यायपरिमाणं सम्भवतु, यतो ज्ञान-
 मिहाविशेषोक्तौ सर्वद्रव्यपर्यायपरिमाणतुल्यताऽभिधानात् 'प्रक्रमाद्
 वा केवलज्ञानं गृहीयते, तच्च सर्वद्रव्यपर्यायपरिमाणं घटतएव,
 तथाहि—यावन्तो जगतिरूपिद्रव्याणां ये गुरुलघुपर्याया ये च
 रूपिद्रव्याणामरूपिद्रव्याणां चाऽगुरुलघुपर्यायास्तान् सर्वानपि
 साक्षान् करतलकलित मुक्ताफलमिव केवलालोकेन प्रतिक्षणमवलो-
 कते भगवान्, नच येन स्वभावेनैकं पर्यायं परिच्छिन्नन्ति तेनैव
 स्वभावेन पर्यायान्तरमपि, तयोः पर्याययोरेकत्त्वप्रसक्तेः, तथाहि—
 घटपर्यायपरिच्छेदनस्वभावं यज्ज्ञानं तदयदा पटपर्यायं परिच्छेत्तु-
 मलं तदा पटपर्यायणामपि घटपर्यायरूपत्तापत्तिः अन्यथा तस्यतत्-
 परिच्छेदकत्वानुपपत्तेः, तथा रूपस्वभावाभावात्, 'ततो यावन्तः
 परिच्छेदाः पर्याया स्तावन्तः परिच्छेदकास्तस्य केवलज्ञानस्य
 स्वभावा वेदिताव्याः, स्वभावाश्च पर्यायास्ततः पर्यायानधिकृत्य
 सर्वद्रव्यपर्यायपरिमाणं केवलज्ञानमुपपद्यते, यदकारादिकं वर्णजातं
 तत् कथं सर्वद्रव्यपर्यायपरिमाणं भवितुमर्हति ?, तत्पर्यायरशोः
 सर्वद्रव्यपर्यायाणामनन्ततमे भागे वर्तमानत्वात्, तदयुक्तं, अका-
 रादेरपि स्वपरपर्यायभेदभिन्नतया सर्वद्रव्यपर्यायपरिमाणतुल्यत्वात्,
 आह च भाष्यकृत्—“एकैकमक्षरं पुण सपरपञ्जायभेदश्चो

अकारणा अणंता जीवा अणंता अजीवा अणंता
भवसिद्धिया अणंता अभवसिद्धिया अणंता सिद्धा
अणंता असिद्धा परणत्ता—‘भावमभावाहेऊमहेऊ
कारणमकारणे चेव । जीवाजीवा भविअमभविआ
सिद्धा असिद्धाय ॥ श्रीनन्दीसूत्र, गाथा ८५ ॥

टीका—‘इत्येतस्मिन् द्वादशाङ्गे गणिपिटके’ एतत्पूर्वदे-
वव्यारव्येयं, अनन्ता भावा—जीवादयः पदार्थाः, प्रज्ञप्ताः इति
योगः, तथा अनन्ता अभावाः—सर्वभावानां पररूपेण सत्त्वात्
त एवानन्ता अभावा द्रष्टव्याः, तथाहि—स्वपरसत्ताभावाभावात्मकं
वस्तुतत्त्वं, यथा जीवो जीवात्मना भावरूपो अजीवात्मना चा-
भावरूपः, अन्यथाऽजीवत्वप्रसङ्गात् . अत्र बहुवक्तव्यं तत्तु नो-
च्यते ग्रन्थगौरवभयादिति, तथाऽनन्ता ‘हेतवो’ हिनोति—गम-
यति जिज्ञासितधर्मविशिष्टमर्थमिति हेतुः, ते चानन्ताः, तथाहि-
वस्तुनोऽनन्ता धर्मास्ते च तत्त्वतिबद्धधर्मविशिष्टवस्तुगमकास्त-
तोऽनन्ता हेतवो भवन्ति, यथोक्तहेतुप्रतिपक्षभूता अहेतवः तेऽ-
पि अनन्ता, तथा अनन्तानि कारणानि—घटपटादीनां निर्व-
र्त्तकानि मृत्पिण्डतन्त्वादीनि . अनन्तान्यकारणानि, सर्वेषामपि
कारणानां कार्यान्तराण्यधिकृत्या कारणत्वात्, तथा जीवाः—प्रा-
णिनः, अजीवाः—परमाणुद्वयणुकादयः, भव्याः—अनादिपारि-
णमिकसिद्धि गमनयोग्यतायुक्ताः, तद्विपरीता अभव्याः, सिद्धा-

अपगतकर्मफलद्वारा; असिद्धा;—संसारिणः, एते सर्वेऽप्यनन्तः,
 प्रज्ञताः, इह भव्याभव्यानामानन्त्येऽभिहतेऽपि यत्पुनस्सिद्धा इत्य
 भिहितं तत् सिद्धेभ्यः संसारिणामनन्तगुणताख्यापनार्थं ॥



॥ वन्देवीरम् ॥

अथ प्रज्ञापनोपाङ्गे पञ्चमं पर्यायपदम्



-कश्चिहा णं भंते ! पञ्जवा पन्नत्ता ?, गोयमा !
दुविहा पञ्जवा पन्नत्ता. तंजहा-जीवपञ्जवा य अजीव-
पञ्जवा य । जीवपञ्जवा णं भंते ! किं संखेज्जा
असंखेज्जा अणंता ?, गोयमा ! नो संखेज्जा नो
असंखेज्जा अणंता, से केषट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चइ-
जीवपञ्जवा नो संखेज्जा नो असंखेज्जा अणंता ?,
गोयमा ! असंखिज्जा नेरइया असंखिज्जा असुर-
कुमारा असंखिज्जा नागकुमारा असंखिज्जा सुवण-
कुमारा असंखिज्जा विज्जुकुमारा असंखिज्जा
अगणिकुमारा असंखिज्जा दीवकुमार असंखिज्जा
उदहिकुमारा असंखिज्जा दिसीकुमारा असंखिज्जा
वाउकुमारा असंखिज्जा थणियकुमारा असंखिज्जा
पुढविकाइया असंखिज्जा आउकाइया असंखिज्जा

तेउकाइया असंखिज्जा वाउकाइया अणंता वणप्फइ
 काइया असंखेज्जा वेइंदिया असंखेज्जा तेइंदिया असं-
 खेज्जा चउरिंदिया असंखेज्जा पंचिंदियतिरिखजोणिय
 असंखेज्जामणुस्सा असंखेज्जा वाणमंतरा असंखेज्ज
 जोइसिया असंखेज्जा वेमाणिया अणंता सिद्धा, से
 एएणट्ठेणं गोयमा ! एवं बुच्चइ तेणं नो संखिज्जा
 नो असंखिज्जा अणंता ॥ (सूत्रं १०३)

टीका—कइविहा णं भंते ! पज्जवा पन्नत्ता ?' इति,
 अथ केनाभिप्रायेण गौतमस्वामिना भगवान्त्वं पृष्ठ ? उच्यते,
 उक्तमादौ प्रथमे पदे प्रज्ञापना द्विविधा प्रज्ञप्ता, तद्यथा—जीव
 प्रज्ञापना अजीवप्रज्ञापना चेति, तत्र जीवाश्चाजीश्च द्रव्याणि,
 द्रव्यलक्षणं चेदम्—'गुणपर्यायवद्द्रव्य' मिति (तत्त्वा० अ० ५ सू०
 ३१) ततो जीवजीवपर्यायभेदावगमार्थमेवं पृष्ठवान्, तथा च
 भगवानपि निर्वचनमेवमेवाह—'गोयमा !' दुविहा पज्जवा पन्न-
 त्ता, तंजहाजीवपज्जवा य अजीवपज्जवा य इति, तत्र पर्याय
 गुणाविशेषा धर्मा इत्यनर्थान्तरं, ननु सन्त्रयं प्रतिपादयन्तैदक्तु-
 म्—इह त्वेदयिकादिभावात्त्रयपर्यायपरिमाणवधारणं प्रतिपाद्यत,
 इति, औदयिकादयश्च भावा जीवाश्चयाः, ततो जीवपर्याया एव
 गम्यन्ते अथ चास्मिन्निर्वचनसूत्रे द्वयानामपि पर्याया उक्तस्तनो
 न सुन्दरः सम्बन्धः, तदयुक्तम्, अभिप्रायापरिज्ञानान्, औदयि-

को हि भावः पुद्गलवृत्तिरपि भवति, ततो जीवाजीवभेदेनौद-
यिकभावस्य द्वैविध्यान्न सम्बन्धकाननिर्वचनसूत्रयोर्विरोधः
सम्प्रति सम्बन्ध (पर्याय) परिमाणावगमाय पृच्छति—‘जीव-
पञ्जवा णं भंते ! किं संखिज्जा’ इत्यादि, इह यस्माद्वनस्पति-
सिद्धवर्जाः सर्वेऽपि नैरयिकादयः प्रत्येकमसंख्येयाः मनुष्येष्वसं-
ख्येयत्वं समूच्छिन्नमनुष्यापेक्षया वनस्पतयः सिद्धाश्च प्रत्येकम-
नन्ताः ततः पर्यायिणामनन्तत्वाद् भवन्त्यनन्ता जीवपर्यायाः ॥
तदेवं गौतमेन सामान्यतो जीवपर्याया पृष्टाः भगवानपि सा-
मान्येन निर्वचनमुक्तवान्, इदानीं विशेषविषयं प्रश्नं गौतम-
आह—

मूलम्—नेरइयाणं भंते ! केवइया पञ्जवा पन्नत्ता ?,
गोयमा ! अणंतापञ्जवा पन्नत्ता, से केशट्ठेणं
भंते ! एवं बुच्चइ नेरइयाणं अणंता पञ्जवा पन्नत्ता ?,
गोयमा ! नेरइए नेरइयस्स दव्वट्ठयाए तुल्ले पएस-
ट्ठयाए तुल्ले ओगाहणट्ठाए सिय हीणे सिय तुल्ले
सिय अब्भट्ठिए जइ हीणे असंखिज्जइभागहीणे वा
संखिज्जइभागहीणे वा संखिज्जगुणहीणे वा अस-
खिज्जगुणहीणे वा अइ अब्भट्ठिए असंखिज्जइभाग-
मब्भट्ठिए वा संखिज्जइभागमब्भट्ठिए वा संखिज्ज-
गणमब्भट्ठिए वा असंखिज्जगुणमब्भट्ठिए वा,
ठिईए सिय हीणे सियतुल्ले सियअब्भट्ठिए जइहीणे

जैनागमों में स्याद्वाद

असंखिज्जइभागहीणे वा, संखिज्जइभागहीणे वा
 संखिज्जगुणहीणे वा असंखिज्जगुणहीणे वा अह
 अब्भहिए । असंखिज्जभागमब्भहिए वा संखिज्ज-
 भागमब्भहिए वा संखिज्जगुणमब्भहिए वा असं-
 खिज्जगुणमब्भहिए वा, कालवणपज्जवेहिं मिय
 हीणे मिय तुल्ले सिय अब्भहिए, जइहीणे अणंत-
 भागहीणे वा असंखेज भागहीणे संखेजभागहीणे
 वा संखेजगुणहीणे वा असंखेजगुणहीणे वा
 अणंतगुणहीणे वा अह अब्भहिए अणंतभागमब्भ-
 हिए वा असंखेजभागमब्भहिए वा संखेजभागमब्भ-
 हिए वा संखेजगुणमब्भहिय वा असंखेजगुणमब्भ-
 हिए वा अणंतगुणमब्भहिए वा, नीलवन्नपज्जवेहिं
 लादियं वन्नपज्जवेहिं पोयवन्नपज्जवेहिं हालि-
 दवन्नपज्जवेहिं सुक्खिवन्नपज्जवेहिं छट्ठाणवडिए
 सुब्भिमगंधपज्जवेहिं दुब्भिमगंधपज्जवेहिं य छट्ठाणवडिए,
 तित्तरसपज्जवेहिं कडुयरसपज्जवेहिं कषायरसपज्जवेहिं
 अविलरसपज्जवेहिं महुररसपज्जवेहिं छट्ठाणवडिए,
 कक्खवडफासपज्जवेहिं मउयफासपज्जवेहिं गरुयफाम-
 पज्जवेहिं लहुयफासपज्जवेहिं सीयफासपज्जवेहिं
 उप्पिण फासपज्जवेहिं निद्धफासपज्जवेहिं लुक्ख-
 फासपज्जवेहिं छट्ठाणवडिए, आभिणिबोहियनाण-

पञ्जवेहि सुयनाणपञ्जवेहि आहिनाण पञ्जवेहि मइ-
अनाणपञ्जवेहि सुयअनाणपञ्जवेहि विभंगनाणपञ्ज-
वेहि चक्खुदसणपञ्जवेहि अचक्खुदसणपञ्जवेहि
आहिदसणपञ्जवेहि छट्ठाणवडिए, से तेणट्ठेणं
गोयमा ! एव बुच्चइ नेरइयाणं नी संखेजा नी अस-
खेजा अणता पञ्जवा पन्नत्ता । (सू० १०४)

टीका—नेरइयाणं भंते ! केवइयापञ्जवा पन्नत्ता इति,
अथ केनाभिप्रायेणैव गौतमः पृष्ठवान् ?, उच्यते, पूर्वं किल
सामान्यप्रश्ने पर्यायिणामनन्तत्वाद् पर्यायाणामानन्त्यमुक्तं, यत्र
पुनः पर्यायिणामानन्त्यं नास्ति तत्र कथमिति पृच्छति—‘नेर-
इयाणं’ इत्यादि, तत्रापि निर्वचनमिदम् ‘अनन्ता’ इति, अत्रैव
जातसंशयः—प्रश्नयति—‘सेकेणट्ठेणं भंते !’ इत्यादि, अथ के-
नार्थेन—केन कारणेन केन हेतुना भदन्त ! एवमुच्यते—नैर-
यिकाणां पर्याया एवम्—अनन्ता इति ?’ भगवानाह गोयमा ! नेर-
इए नेरइयस्स दव्वट्ठयाए तुल्ले, इत्यादि, अथ पर्यायाणामान-
न्त्यं कथं घटते इति पृष्ठते तदेव पर्यायाणामानन्त्यं यथा यु-
क्त्वा उपपन्नं भवति तथा निर्वचनीयं नान्यत् ततः केनाभिप्रा-
येण भगवतैव निर्वचनमवाचि—नैरयिको नैरयिकस्य द्रव्यार्थतया
तुल्य इति ! उच्येत, एकमपि द्रव्यमनन्तपर्यायमित्यस्य न्यायस्य
प्रदर्शनार्थं तत्र यस्मादिदमपि नारक जीवद्रव्यमेकसंख्याऽवरुद्ध-

मिति नैरयिको नैरयिकस्यद्रव्यार्थतया तुल्यः, द्रव्यमेवार्थोद्रव्य-
 र्थः तद्भावो द्रव्यार्थता तया द्रव्यार्थतया तुल्यः एवं तावत्द्रव्या-
 र्थतया तुल्यत्वमभिहितं, इदानीं प्रदेशार्थतामधिकृत्य तुल्यत्वमा-
 ह—‘पएसद्वयाए तल्ले’ इदमपि नारकजीवद्रव्यं लोकाकाशप्रदे-
 शपरिमाणप्रदेशमितिप्रदेशार्थतयापि नैरयिको नैरयिकस्य तुल्यः,
 प्रदेशएवार्थः तद्भावः प्रदेशार्थता तया प्रदेशार्थतया, क्रमादभि-
 हितमिति चेत् उच्यते, द्रव्यद्वैविध्यप्रदर्शनार्थं, तथाहि—द्विविधं
 द्रव्यं-प्रदेशवत् अप्रदेशवच्च, तत्र परमाणुरप्रदेशः, द्विप्रदेश-
 त्रिप्रदेशादिकं तु प्रदेशवत्, एतच्चद्रव्यद्वैविध्यं पुत्रलास्तिकाय
 एव भवति, शेषाणि तु धर्मास्तिकायादीनि द्रव्याणि नियमात्
 सप्रदेशानि, ‘ओगाहणद्वयाए सियहीणे’ इत्यादि, नैरयिकोऽसं-
 ख्यातप्रदेशोऽपरस्य नैरयिकस्य तुल्यप्रदेशस्य अवगाहनमवगाहः
 शरीरोच्छ्रयः अवगाहनमेवार्थोऽवगाहनापस्तद्भावोऽवगाहनार्थता
 तया अवगाहनार्थतया ‘सिय हीणे’ इत्यादि, स्याच्छब्दः प्रशं-
 साऽस्तित्वविवादविचारणाऽनेकान्तसंशयप्रश्नादि वर्थेषु, अत्राऽने-
 कांतद्योतकस्य ग्रहणं, स्याद्धीनः अनेकांतेनहीन इत्यर्थः, स्यात्तु-
 ल्यः—अनेकान्तेन तुल्य इत्यर्थः, स्यादभ्यधिकः—अनेकान्तेना-
 भ्यधिक इति भावः, कथमिति चेत्, उच्यते, यस्माद्वक्ष्यति
 रत्नप्रभापृथिवीनैरयिकाणां भवधारणीयस्यवैक्रियशरीरस्य जघ-
 न्येतावगाहनाया अङ्गुलस्याऽसंख्येयो भागः उत्कर्षतः सप्त धनूँरि

अथो हस्ताः षट् चान्तराणि, उत्तरोत्तरास्तु च पृथिवीपु द्विगुणं २
 यावन् सप्तमं नारकपृथिवीनैरयिकाणां च अन्यतोऽवगाहनागुलस्या-
 संख्येयो भागः उत्कर्षतः पञ्चधनुः शतानीति, तत्र 'जड हीणे'
 इत्यादि, यदि हीनस्ततोऽसंख्येयभागहीनो वा स्यात् संख्येयभा-
 गहीनो वा संख्येयगुणहीनो वा स्यान् असंख्येयगुणहीनो वा,
 अत्राभ्यधिकस्ततोऽसंख्येयभागाभ्यधिको वा स्यात् संख्येयभा-
 गाभ्यधिको वा संख्येयगुणाभ्यधिको वा असंख्येयगुणाभ्यधिको
 वा, कथमिति चेत् ? उच्यते, एकः किल नारकः उच्चैस्त्वेन
 पञ्च धनुःशतानि अपरस्तान्येवागुलासंख्येयभागहीनानि,
 षड्गुलासंख्येयभागश्च पञ्चानां धनुः—शतानां असंख्येये भागे
 वर्तते, तेन सोऽङ्गुलासंख्येयभागहीन पञ्च धनुःशतप्रमाण-
 अपरस्यपरिपूर्णपञ्चधनुः—शतप्रमाणस्यापेक्षयाऽसंख्येयभागहीन,
 इतरस्त्वितरापेक्षया असंख्येयभागभ्यधिकः तथा एकः पञ्चधनु-
 शतान्युच्चैस्त्वेन अपरस्तान्येव द्वाभ्यां त्रिभिर्वा धनुर्भिन्न्यूनानि
 ते च द्वे त्रीणि वा धनूषि पञ्चानां धनुःशतानां संख्येयभागे
 वर्तते ततः सोऽपरस्य परिपूर्णपञ्चधनुःशतप्रमाणस्यापेक्षया संख्ये-
 यभागहीनः, इतरस्तु परिपूर्णपञ्चधनुःशतप्रमाणस्तदपेक्षया संख्ये-
 यभागाभ्यधिकः, तथा एक पञ्चविंशं धनुःशतमुच्चैस्त्वेनापरः परि-
 पूर्णानिञ्चधनुःशतानि, पञ्चविंशं च धनुःशतं चतुर्भिर्गुणितं पञ्च
 धनुःशतानि भवन्ति ततः अञ्जविंशत्यधिकधनुःशतप्रमाणोऽप्युच्चै-

स्त्वेऽप्यपरस्य परिपूर्णपञ्चधनुशप्रमाणस्यापेक्षया संख्येयगुण
हीनो भवति तदपेक्षया त्वितरः परिपूर्णपञ्चधनुशप्रमाणः संख्ये
यगुणाभ्यधिकः, तथा एकोऽपर्याप्रावस्थाया मङ्गुलस्यासंख्येय
भागवगाहं वर्त्तते अन्यस्तु पञ्चधनुशतान्युच्चस्त्वेन, अङ्गुला-
संख्येयभागश्चासंख्येयेन गुणितः सन् पञ्चधनुशतप्रमाणो भ-
वति, ततोऽपर्याप्रावस्थाया मङ्गुलासंख्येयभागप्रमाणोऽवगाहे वर्त्त-
मानः परिपूर्णपञ्चधनुशतप्रमाणपेक्षया असंख्येयगुहीनः, पञ्च-
धनुशप्रमाणस्तु तदपेक्षयाऽसंख्येयगुणाभ्यधिकः । 'ठिईए सिय
हीणे' इत्यादि, यथाऽवगाहनया हानौ वृद्धौ च चतुः स्थानपतितउ-
क्तस्तथा स्थित्याऽपि वक्तव्य इति भावः. एतदेवाह—
'जइहीणे' इत्यादि तत्रैकस्य किञ्च नात्कस्य त्रयस्त्रिंशत्
सागरोपमाणि स्थितिः अपरस्य तु तान्येव समया-
दिन्यूनानि, तत्र यः समयादिन्यूनम् त्रयस्त्रिंशत्सागरो-
पमप्रमाणस्थितिकः स परिपूर्णत्रयस्त्रिंशत्सागरोपमस्थितिकस्तु
पेक्षयाऽसंख्येयभागहीनः परिपूर्णत्रयस्त्रिंशत्सागरोपमस्थितिकस्तु
तदपेक्षयाऽसंख्येयभागाभ्यधिकः, समयादेः सागरोपमापेक्षयाऽ-
संख्येयभागाभावात्, तथाहि—असंख्येयैः समयैरेकाऽऽव-
लिका स ख्याताभिरावलिकाभिरेक ऊर्द्धासनिश्वासकालः सप्तभि-
रूर्द्धासनिश्वासैरेकः स्तोकः सप्तभिः स्तौकैरेकोलवः सप्तसप्तत्या
लवानामेको मुहूर्तः त्रिंशता मुहूर्तैरहोरात्रः पञ्चदशभिरहोरात्रैः
पञ्च द्वाभ्यां पञ्चदशभिर्मासः द्वादशभिर्मौः सम्बत्सरः असं-

संख्येयैः सम्बन्धैः पल्योपमसागरोपमाणि, समयाऽवलिकोच्छ्राम-
मुहूर्त्तदिव नाहोरात्रपक्षमाससंवत्सरयुगैः हीनः परिपूर्णस्थितिकना-
रकापेक्षयाऽसंख्येयभागहीनो भवति तदपेक्षयात्वित्रोऽसंख्येय-
भागाभ्यधिकः, तथा एकस्य त्रयस्त्रिंशत्सागरोपमाणिस्थितिः पर-
स्य तान्येव पल्योपमैर्न्यूनानि, दशभिश्च पल्योपमकोटीकोटी-
भिरेकं सागरोपमं निष्पद्यते, ततः पल्योपमैर्न्यूनस्थितिकः परि-
पूर्णस्थितिकनारकापेक्षया संख्येयभागहीनः परिपूर्णस्थितिकस्तु
तदपेक्षया संख्येयभागाभ्यधिकः, तथैकस्य सागरोपममेकं स्थितिः
अपरस्य परिपूर्णानि त्रयस्त्रिंशत्सागरोपमाणि, तत्रैकसागरोपम-
स्थितिकः परिपूर्णस्थितिकनारकापेक्षया संख्येयगुणहीनः एकस्य
सागरोपमस्य त्रयस्त्रिंशत्ता गुणाने परिपूर्णस्थितिकत्वप्राप्तेः, परि-
पूर्णस्थितिकस्तु तदपेक्षया संख्येयगुणाभ्यधिकः, तथैकस्य दशव-
र्षसहस्राणि स्थितिः अपरस्य त्रयस्त्रिंशत्सागरोपमाणि, दश वर्ष-
सहस्राण्यसंख्येयरूपेण गुणकोण गुणतानि त्रयस्त्रिंशत्सागरो-
पमाणि भवन्ति, ततो दशवर्षसहस्रस्थितिकः त्रयस्त्रिंशत्सागरो-
पमस्थितिकनारकापेक्षयाऽसंख्येयगुणहीनः तदपेक्षया तु त्रयस्त्रि-
शत्सागरोपमस्थिति होऽसंख्येयगुणाभ्यधिक इति, तदेवमेकस्य
नारकस्यापरनारकापेक्षया द्रव्यतो द्रव्यर्थतया प्रदेशार्थतया च तुल्ये-
त्वमुक्तं क्षेत्रतोऽवगाहनं प्रति हीनाधिकत्वेन चतुःस्थानपतितत्वं
कालतोऽपि स्थिततो हीनाधिकत्वेन चतुःस्थानपतितत्वं, ईदानीं

भावश्रयं हीनाधिकत्वं प्रतिपाद्यते—यतः सकलमेव जीवद्रव्य-
मजीवद्रव्यं वा परस्परतोद्रव्यक्षेत्रकालभावैर्विमज्यते यथा घटः,
तथाहि—द्रव्यत एकोमार्त्तिकः अपरः काञ्चनो राजतादिर्वा क्षेत्रत
एक इहत्यः अपरः पाटलि त्रिकः कालतः एकोऽद्यतनः अन्य-
स्त्वैषमः परुतनो वा भावत एकः श्यामः अपरस्तु रक्तादिः
एवमन्यदपि । तत्र प्रथमतः पुद्गलविपाकिनाम कर्मोदयनिमित्तं
जीवोदायकभावश्रयेण हीनाधिकत्वमाह—‘कालवन्नप जवेहिं सिय
हीणे सिय तुल्ले सिय अब्भहिण’ अस्याक्षरघटनापूर्ववत्, तत्र
यथा हीनत्वमभ्यधिकत्वं च तथा प्रतिपादयति—‘जइ हीणे’
इत्यादि, इह भावोक्त्या हीनत्वमभ्यधिकत्वविन्तायां हानौ वृद्धौ च
प्रत्येकं षट्स्थालपतितत्वमवाप्यते, षट्स्थानके च यद्यपेक्षयाऽन-
न्तभागहीनं तस्य सर्वजीवानन्तकेन भागे हृते यत्तज्जम्भेत तेना-
नन्ततमेन भागेन हीनं, यच्च यद्यपेक्षयाऽसंख्येयभागहीनं
तस्यापेक्षणीयस्यासंख्येयलोकाकाशप्रदेशप्रमाणेन राशिना भागे
हृते यत्तज्जम्भ्यते तावत्ता भागेन न्यूनं, यच्च यदधिकृत्य संख्ये-
यभागहीनं तस्यापेक्षणीयस्योत्कृष्टसंख्येयकेन भागे हृते यत्तज्जम्भ्यते
तावत्ता हीनं, गुणनसंख्यायां तु यद्यतः संख्येयगुणतदवधिभू-
तमुत्कृष्टेन संख्येयकेन गुणितं सदावद् भवति तावत्प्रमाणमव-
सातव्यं, यच्च यतोऽसंख्येयगुणं तदवधिभूतमसंख्येयलोकाक श-
प्रदेशप्रमाणेन गुणकारेण गुण्यते गुणितं सदावद्भवति तावद-

वसेयम्, यच्च यस्मादनन्तगुणं तदवधेभूतं सर्वजीवानन्तक-
रूपेण गुणकारेण गुण्यते गुणेन सद्यावद्भवति तावत्प्रमाणं द्रष्ट-
व्यं, तथा चैतदेव कर्मप्रकृतितन्महिष्यां षट्स्थानकप्ररूपणवसरे
भागहारगुणकारस्वरूपमुपवर्णितं, 'सर्वजीवाणामसंखलोगसंखे-
ज्जगत्स जेडुस्स । भागोतिमु गुणणातिमु' इति, सम्प्रत्यधि-
तसूत्रोक्तषट्स्थानपतितत्वं भाव्यते—तत्र कृष्णवर्णपर्यायपरिमाणं
तत्त्वतोऽनन्तसंख्यात्मकमप्यसद्भावस्थापनया किञ्च दश सहस्राणि
१०००० तस्य सर्वजीवानन्तकेन शतपरिमाणपरिकल्पितेन भागो
ह्रियते लब्धं शतं १०० तत्रैकस्य किञ्च नारकस्य कृष्णवर्णप-
र्यायपरिमाणं दश सहस्राणि, अपरस्य तान्येवशेतन हीनानि
६६००, शतं च सर्वजीवानन्तभागहारलब्धत्वादनन्ततमो भागः
ततोययशनेन हीनानि दश सहस्राणि सोऽपरस्य परिपूर्णदश-
सहस्रप्रमाणकृष्णवर्णपर्यायस्य नारकगोपेक्षयाऽनन्तभागहीनः तद-
पेक्षया तु सोऽपरःकृष्णवर्णपर्यायोऽनन्तभागाभ्यधिकः, तथा
कृष्णवर्णपर्यायपरिमाणस्य दशसहस्रसंख्याकस्यासंख्येयलोकाकाश-
प्रदेशप्रमाणपरिकल्पितेन पञ्चाशत्परिमाणेन भागहारण भागो
ह्रियते लब्धेद्वे शते षष्ठोऽसंख्येयतमो भागः, तत्रैकस्य किञ्च
नारकस्य कृष्णवर्णपर्याय दश सहस्राणि शतद्वयेन हीनानि ६६००
अपरस्य परिपूर्णानि दश सहस्राणि १००००, तत्र यः शतद्वयहीन
दशसहस्रप्रमाणकृष्णवर्ण पर्यायः स परिपूर्णकृष्णवर्णपर्यायना

कापेक्षया असंख्येयभागाहीनः परिपूर्णकृष्णवर्णपर्यायस्तु तदपेक्षयाऽसंख्येयभागाभ्यधिकः, तथा तस्यैव कृष्णवर्णपर्यायराशेर्दशसहस्रसंख्याकस्योत्कृष्टसंख्येयपरिमाणफलितेन दशकपरिमाणेन भागहारेण भागो द्वियते तत्तज्ज्वलं सहस्रं एवः कित्तु संख्यात-
तमो भागः, तत्रैकस्य नारकस्य कित्तु कृष्णवर्णपर्यायपरिमाणं नव सहस्राणि ६०००, अपरस्य दशसहस्राणि १००००, नव सहस्राणि तु दशसहस्रेभ्यः सहस्रेण हीनानि सहस्रं च संख्ये-
यतो भाग—इति नवसहस्रभागाकृष्णवर्णपर्यायः परिपूर्णकृष्णवर्ण-
पर्यायनारकापेक्षया संख्येयभागाहीनः तदपेक्षया त्वितरः संख्ये-
यभागाधिकः, तत्रैकस्य नारकस्य कित्तु कृष्णवर्णपर्यायपरिमाणं सहस्रं अपरस्य दश सहस्राणि, तत्र सहस्रं दशकेनोत्कृष्टम-
ख्यातक कल्पेन गुणितं दशसहस्रसंख्याकं भवति इति सह-
स्रसंख्यकृष्णवर्णपर्यायो नारको दशसहस्रसंख्याककृष्णवर्णपर्याय-
नारकापेक्षया संख्येयगुणहीनः तदपेक्षया परिपूर्णकृष्णवर्णपर्याय-
संख्येयगुणाभ्यधिकः तत्रैकस्य कित्तु नारकस्य कृष्णवर्ण-
पर्यायायं द्वे शते परस्य परिपूर्णानिदशसहस्राणि, द्वे च शते
असंख्येयतोकाकशदेशपरिमाणफलितेन पञ्चशतपरिमाणेन
गुणितेन दशसहस्राणि जायन्ते, ततो द्विशतपरिमाण-
कृष्णवर्णपर्यायो नारकः परिपूर्णकृष्णवर्णपर्यायपरिमाणं शत-
मपरस्य दशसहस्राणि शते च सर्वजीवान-तपरिमाणपरिकल्प-

तेन (शत) गुणकोण गुणिने जायन्ते दशसहस्रणि, ततः
 शतय रमणकृष्णवर्णपर्यायो नारकः परिपूर्णकृष्णत्र पर्यायनार-
 कपेक्षया अनन्तगुणहीनः इतरस्तु तदपेक्ष ॥५॥ अन्तगुणाभ्यधिकः,
 यथा कृष्णवर्णपर्यायानधिकृत्य हानो वृद्धो च षट्स्थानपति-
 तत्वमुक्तमेवशेषवर्णगन्धरस स्पर्शैरपि प्रत्येकं षट्स्थानपतितत्वं-
 भावनीयं, ! तदेवं पुद्गलविपाकिनामकर्मोदयजनितजीवौदयिक-
 भावाश्रयेण षट्स्थानपतितत्वमुपदर्शितं, इदानीं जीवविपाकिज्ञा-
 नावरणीयादिकर्मक्षयोपशमभावाश्रयेण तदुपदर्शयति—‘आभिणि
 बोहिणाणपज्जवेहि’ इत्यादि, पूर्ववत् प्रत्येकमाभिनिबोधिकादिषु
 षट्स्थानपतितत्वं भावनीयं, इह द्रव्यसमुल्लेखत्वं वदता समू-
 च्छिमसकप्रभेदनिर्मेदवीजं मयूराण्डकरसवदनभिर्यत्तदेशकालकर्म
 प्रत्येकवद्विषेष्टभेदपरिणतेर्योग्यद्रव्यमित्यावेदितं, अवगाहनया चतु-
 स्थानपतितत्वमभिवदता क्षेत्रतः सकोचविकोचधर्मा आत्मा न
 तु द्रव्यप्रदेशसख्याया इति दर्शितं, उक्तंचैतदन्यत्रापि—“विक-
 सनसकोचयोनयोर्नस्तौ द्रव्यप्रदेशसख्यायाः । वृद्धिहासौ स्तः क्षेत्र-
 तस्तु तावात्मनस्तस्मात् ॥ १ ॥” स्थित्या चतुःस्थानपतितत्व
 वदताऽऽयुः कर्मस्थितिनिर्वर्तकानामध्यवसायस्थानानामुत्कर्षापकर्ष-
 वृत्तिरुपदर्शिता, अन्यथा स्थित्या चतुःस्थानपतितत्वायोगात् ;
 आयुः कर्मचोपलक्षणं तेन सर्वकर्मस्थितिनिर्वर्तकेष्वध्यवसाये-
 पूत्कर्षापकर्षवृत्तिरवसातव्या, कृष्णादिपर्यायैः षट्स्थानपतितत्व-

सुपदर्शयता एकस्यापि नरकस्य पर्याया अनन्ताः किं पुनः सर्वेषां नारकाणामिति दर्शितं अथ नारकाणां पर्यायानन्त्यं पृष्ठेन भगवता तदेव पर्यायानन्त्यं वक्तव्यं न त्वन्यत् ततः किमर्थं द्रव्यक्षेत्रकालभावाभिधानमिति ?, तद्युक्तं, अभिप्रायापरिज्ञानात्, इह न सर्वेषां सर्वे स्वपर्यायाः समसख्या किं तु षट्स्थानपतिताः, एतच्चानन्तरमेव दर्शितं, तच्च षट्स्थापतितत्त्वपरिणामित्वमन्तरेण न भवति, तच्च परिणामित्वं यथोक्तलक्षणस्यद्रव्यस्यैतत् द्रव्यतस्तुल्यत्वमभिहितं, तथा न कृणदिपर्यायैरेव पर्यायवान् जीवः किं तु तत्तत्क्षेत्रसकोचविकोचधर्मतयाऽपि तथा तत्तदध्यवसायस्थानयुक्ततयाऽपीति ख्यापनार्थं क्षेत्रकालाभ्यां चतुःस्थानपतितत्वमुक्तमिति कृतं प्रसङ्गेन । तदेवमवसितं नैरयिकाणां पर्यायानन्त्यं, इदानीमसुरकुमारेषु पर्यायाग्रं विप्रच्छिष्टपुराह—

मूलम्—असुरकुमाराणां भन्ते ! केवइया पज्जवा पन्नत्ता ? गोयमा ! अणन्ता पज्जवां पन्नत्ता, से केशट्ठेणं भन्ते ! एवं बुच्चइ—असुरकुमाराणां अणं ता पज्जवा पन्नत्ता ?, गोयमा ! असुरकुमारे असुरकुमारस्स दव्वइयाए तुल्ले पए सइयाए तुल्ले ओगाहणइयाए चउट्ठाणवडिइठिईए चउट्ठाणवडिए कालवन्नपज्जवेहिं छट्ठाणवडिए एवं नीलवन्नपज्जवेहिं लोहियवन्नपज्जवेहिं

नालिहवन्नपज्जवेहिं सुक्किल्लवन्नपज्जवेहिं पज्जवेहिं
 सुब्बिमगंधपज्जवेहिं दुब्बिमगंधपज्जवेहिं तित्त-
 रसपज्जवेहिं कडुयरसपज्जवेहिं कसायरसपज्जवेहिं अंबि-
 त्तरसपज्जवेहिं महुररसपज्जवेहिं कक्खडफासपज्जवेहिं
 मउयफासपज्जवेहिं गरुयफासपज्जवेहिं लहुयफास-
 पज्जवेहिं सीयफासपज्जवेहिं उसिणफासपज्जवेहिं निद्ध-
 फास पज्जवेहिं लुक्खफासपज्जवेहिं आभिणिवोहि-
 यणाणपज्जवेहिं सुयणाणपज्जवेहिं ओहिनाणपज्जवेहिं
 अइअन्नाणपज्जवेहिं सुवअन्नाणपज्जवेहिं विभंगनाण-
 पज्जवेहिं चक्खुदंसणपज्जवेहिं अचक्खुदंसणपज्जवेहिं
 ओहिदंसणपज्जवेहिं छडाणवट्टिए, से एएणट्ठेणं
 गोयमा ! एवं वुच्चइ-असुरकुमाणं अणंतापज्जवा
 पन्नत्ता एवं जहा नेरइया, जहा असुरकुमारा तह
 नागकुमाराणि ज व थस्सियकुमारा (सूत्र १०५) ॥

-पुढविकाइयाणं भंते ! केवइया पज्जवा पन्नत्ता ?,
 गोयमा ! अणंता पज्जवा पन्नत्ता, से केएणट्ठेणं भंते !
 एवं वुच्चइ पुढविकाइयाणं अणंता पज्जवा पन्नत्ता ?,
 गोयमा ! पुढविकाइए पुढविकाइयस्य दन्वयट्ठाए
 तुल्ले पएसट्ठयाए तुल्ले ओगाहणट्ठयाए सिय हीणे
 सिय तुल्ले सिय अट्ठिभहिए, जइहीणे असंखिज्ज-

भागहीणे वा संखिज्जभागहीणे वा संखिज्जगुणहीणे
 वा असंखिज्जगुणहीणे वा, अह अब्भहिए अमं
 खिज्जइभागअब्भहिए वा संखिज्जइभागअब्भहिय वा
 संखिज्जगुणअब्भहिए वा असंखिज्जगुणअब्भहिए वा
 ठिईए तिहाणवडिए सिय हीणे सिय तुल्ले सिय
 अब्भहिए, जइ हीणे असंखिज्जभागहीणे वा संखिज्ज-
 भागहीणे वा संखिज्जगुणहीणे वा अह अब्भहिए असं-
 खिज्जइभागअब्भहिए वा संखिज्जइभागअब्भहिए वा
 वन्नेहिं गंधेहिं रसेहिं फासेहिं मइअन्नाणपज्जवेहिं
 सुयअन्नाणयज्जवेहिं अचक्खुदंसणपज्जवेहिं छट्ठाण-
 वडिए ॥ आउकाइयाणं भंते ! केवइया पज्जवा
 पन्नता ?, गोयमा ! अणंता पज्जवा पन्नता, से केण-
 ट्ठेण भंते ! एवं बुच्चइ आउकाइयाणं अणंता पज्जवा
 पन्नता ?, गोयमा ! आउकाइए आउकाइयस्स
 दव्वइयाए तुल्ले पएसइयाए तुल्ले ओगाहणाइयाए
 चउट्ठाणवडिए ठिईए तिहाणवडिए वन्नगंधरसकास-
 मइअन्नाणसुअअन्नाणअचक्खुदंसणयज्जवेहिं छट्ठाण-
 वडिए ॥ तेउकाइयाणं पुच्छा गोयमा ! अणंता
 पज्जवा पन्नता, से केणट्ठेण भंते ! एवं बुच्चइतेउ-
 काइयाणं अणंता पज्जवा पन्नता ?, गोयमा ! तेउ-

काइए तेउकाइयस्स दव्वइयाए तुल्ले पएसइयाए
तुल्ले ओगाहणइयाए चउट्टाणवडिए, ठिईए तिट्ठाण-
वडिए, वन्नगंधरसफासमइअन्नाणसुयअन्नाण

अचक्खदंसणपज्जवेहिं यत्थुत्ताणवडिए ॥ वाउकाइयाणं
पुच्छा गोयमा ! वाउकाइयाणं अणंतापज्जवापन्नत्ता,
से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चइवाउकाइयाणं अणंता

पज्जवा पन्नत्ता ? गोयमा ! वाउकाइए वाउकाइ-
यस्सइयाए तुल्ले पएसइयाए तुल्ले अ गाहणइयाए चउ-
दव्वइयाणवडिए ठिईए तिट्ठाणवडिए वन्नगंधरसफास-
मइअन्नाणसुयअन्नाणअचक्खदंसणपज्जवेहिं यत्थुत्ताणवडि-
ए ॥ वणस्सइकाइयणं पुच्छा गोयमा ! अणंता
पज्जवा पन्नत्ता, से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चइ -
वणस्सइकाइयाणं अणंता पज्जवा पन्नत्ता ? गोयमा !
वणस्सइकाइएवणस्सइकाइयस्स दव्वइयाए तुल्ले
पएसइयाए तुल्ले ओगाहणइयाए चउट्टाणवडिए
ठिईए तिट्ठाणवडिए वन्नगंधरसफासमइअन्नाणसुयअ-
न्नाणअचक्खदंसणपज्जवेहिं यत्थुत्ताणवडिए, से एएण-
ट्ठेणं गोयमा ! एवं वुच्चइ-वणस्सइकाइयाणं अणंता
पज्जवा पन्नत्ता ॥ (सूत्र १०६)

-वेइंदियाणं पुच्छा गोयमा ! अणंता पज्जवा पन्नत्ता,
से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चइ-वेइंदियाणं अणंता

पज्जवा पन्नत्ता, गोयमा ! वेइंदिए वेइंदियस्स दब्ब-
 डयाए तुल्ले पएसडयाए तुल्ले ओगाहणडयाए सिय-
 हीणे सिय तुल्ले सिय अब्भहिए, जइ हीणे असांखि-
 ज्जइभागहीणे वा सांखिज्जइभागहीणे वा सांखिज्जइ-
 गुणहीणे वा असांखिज्जइगुणहीणे वा, अह अब्भ-
 हिए असांखिज्जभागअब्भहिए वा सांखिज्जइभाग-
 अब्भहिए वा सांखिज्जगुणमब्भहिए वा असांखिज्ज-
 इगुणमब्भहिए वा, ठिईए तिट्ठाणवडिए वन्नगंधरस-
 फांस अभिणिवोहियनाणसुयनाणमइअन्नाण सुय-
 अन्नाण अचक्खुदंसणपज्जवेहि य छट्ठाणवडिए,
 एवं तेइंदियावि, एवं चउरिंदियावि नवरं दो दंसणा
 चक्खुदंसणं अचक्खुदंसणं सूत्र १०७)

लम्-पंचिंदियतिरिक्खजोणियाणं पज्जवा जहा नेरइयाणं
 तहा भाणियव्वा सूत्र १०८)

लम्-मणुस्साणं भंते ! केवइया पज्जवा पन्नत्ता ? गोयमा !
 अणंता पज्जवा पन्नत्ता, से केषट्ठेणं भंते ! एवं बुच्चइ-
 मणुस्साणं अणंता पज्जवा पन्नत्ता ? गोयमा ! मणूस्से
 मणूस्स दब्बडयाए तुल्ले पएसट्ठयाए तुल्ले ओगाहणडयाए
 चउट्ठाणवडिए ठिईए चउट्ठाणवडिए वन्नगंधरसफ स-
 आभिणिवोहियनाणसुयनाणओहिनाणमणपज्जव-

नाशकेवलनाशपञ्जवेहिं तुल्ले तिहिं दंसरोहिं छडा-
णावडिए केवलदंसणापञ्जवेहिं तुल्ले (सूत्र १०६)

मूलम्- वाशमंतरा आगाहणादयाए ठिईए चउडाणावडिया
वणराईहिं छडाणावडिया जोईसिया वेमाणियावि
एवं चैव नवरं ठिईए तिडाणावडिया (सूत्र ११० ॥

टीका—‘असुरकुमाराणं भन्ते ! केवइयां पज्जवा यन्नरा ?’

इत्यादि, उक्त एवार्थः प्रायः सर्वेष्वप्यसुरकुमारादिषु, ततः सक-
त्रमपि चतुर्वेरातेदण्डं नूत्रं प्राग्वद् भवतीयं, यस्तु विरोधः स उप-
दर्श्यते, तत्र यत्पृथिवीकायिकादीनामवगाहनया अङ्गुलासंख्येय-
भागप्रमाणया अपि चतुःस्थानतत्त्वं तदङ्गुलासंख्येयभागप्रमा-
णस्य संख्येय भेदभिन्नत्वादवसेयं, स्थित्या हीनत्वमभ्यवि-
क्त्व च त्रिस्थानपतितं न चतुःस्थानपतितं, असंख्येयगुण-
वृद्धिर्वा योरसंभवात्, कथं तयोरसंभव इति चेत्, उच्यते,
इह पृथिव्यादीनां सर्वजघन्यमायुः क्षुल्लकभवग्रहणं, क्षुल्लक-
भवग्रहणस्य च परिमाणमावलिकानां द्वे शते षट्पञ्चाशदधिके,
मुहूर्त्ते च द्विघटिकाप्रमाणे सर्वसंख्यया क्षुल्लकभवग्रहणानां
पञ्चषष्टिः सङ्ख्याणि पञ्चशतानि षट्त्रिंशदधिकानि ६५५३६,
उक्तं च—‘दोन्निस्सयाइं नियमा छप्पन्नाइ पमाणओ हुंति ।
आवलियपमाणेण खुड्डागभवगहणमेयं ॥ १ ॥ पन्नद्विसहस्साइं
पंचेस्सयाइं तह य छत्तीसा । खुड्डागभवगहणं भवंति एते

मुद्रुत्तण ॥ २ ॥ पृथिव्यादीनां च स्थितिरुत्कर्षतोऽपि संख्ये-
यवर्षप्रमाणा ततो नासंख्येयगुणवृद्धिहान्योः संभवः, शेषवृद्धि-
हानित्रिकभावनात्वेवंप्रकृत्य किं पृथिवीकायस्य स्थितिः परिपू-
र्णानिद्वाविंशतेवर्षसहस्राणि अपरस्य तान्येवसमयन्यूनानि तत
समयन्यूनद्वविंशतिवर्षसहस्रस्थितिकः परिपूर्णद्वविंशतिवर्षसहस्र-
स्थितिकापेक्षयाऽसंख्येयभागाहीनः तदपेक्षया त्वितरोऽसंख्येयभा-
गाधिकः, तथैकस्य परिपूर्णानि द्वाविंशतिवर्षसहस्राणि स्थितिर-
परस्य तान्येवान्तर्मुहूर्त्तादिनोनानि, अन्तर्मुहूर्त्तादिकं (च) द्वाविं-
शतेवर्षसहस्राणां संख्येयतमो भागः, ततोऽन्तरर्मुहूर्त्तादिन्यूनद्व-
विंशतेवर्षसहस्रस्थितिकः परिपूर्णद्वविंशतेवर्षसहस्रस्थितिकापे-
क्षया संख्येयभागाहीनः तदपेक्षया परिपूर्णद्वविंशतिवर्षसहस्र-
स्थितिकः संख्येयभागाभ्यधिकः, तथैकस्य द्वाविंशतिवर्षसहस्राणि
स्थितिरपरस्यान्तर्मुहूर्त्तं मासो वर्षं वर्षसहस्रं वा, अन्तर्मुहूर्त्ता-
दिकं (च) नियतपरिमाणया संख्येयया गुणितं द्वाविंशतिवर्षसह-
स्रप्रमाणं भवति तेनान्तर्मुहूर्त्तादिप्रमाणस्थितिकः परिपूर्णद्वविं-
शतिवर्षसहस्रस्थितिकापेक्षया संख्येयगुणहीनः तदपेक्षया तु परि-
पूर्णद्वविंशतिवर्षसहस्रस्थितिकः संख्येयगुणाभ्यधिकः, एवमप्रा-
यिकादीनामपि चतुरिन्द्रियपर्यायानां स्वस्वोत्कृष्टस्थित्यनुसारेण
स्थित्या त्रिस्थानपतितत्वं भावनीयम् । तिर्यक्पञ्चेन्द्रियाणां मनु-
ष्याणां च चतुःस्थानपतितत्वं, तेषां ह्युत्कर्षतस्त्रीणिपञ्चोत्तमानि

स्थितिः, पर्यायपदं चासंख्येयवर्षसहस्रप्रमाणमतोऽसंख्येयगुणवृ-
द्धिद्वान्योरपितंभवादुपपद्यते चतुःस्थानपतितत्वं, एवं व्यान्तराणा-
मपि तेषां जघन्यतो दशवर्षसहस्रस्थितिकत्वादुत्कषेतः पर्याय-
मन्थितः (तेः), ज्योतिष्कवैमानिकानां पुनःस्थित्या त्रिस्थानप-
तितत्वं, यतो ज्योतिष्काणां जघन्यमायुः पर्यायमाष्टभाग-
उत्कृष्टं वर्षलक्षाधिक पर्यायपदं, वैमानिकानां जघन्यं पर्यायपदम-
उत्कृष्टं त्रयस्त्रिंशत्सागरोपमाणि, दशकोटीकोटीसंख्येयपर्याय-
पदप्रमाणां च सागरोपममतस्तेषामप्यसंख्येयगुणवृद्धिद्वान्यसंभा-
वात् स्थितिस्त्रिस्थानपतिता, शेषसूत्रभावना तु सुगमत्वात् स्वयं
भावनीया ॥ तदेवं सामान्यतो नैरयिकादीनां प्रत्येकं पर्यायान-
न्त्य प्रतिपादितं, इदानीं जघन्याद्यवगाहनाद्यधिकृत्य तेषामेव
प्रत्येकं पर्यायान् प्रतिपादयिषुराह—

मूलम्—जहन्नोगाहणपणं भंते ! नेरइयाणं केवइया पज्जवा
पन्नत्ता ? गोयमा ? अणत्ता पज्जवा पन्नत्ता, से
केणट्ठेणं भंते ! एवं बुच्चइ ? गोयमा ! जहन्नो-
गाहणए नेरइए जहन्नोगाहणस्स नेरइयस्स दव्व-
ट्ठयाए तुल्ले पएसट्ठयाए तुल्ले ओगाहणट्ठयाए
तुल्ले ठिईए चउट्ठाणवडिए वन्नगंधरसफासपज्जवेहिं
तिहिं अन्नाणेहिं तिहिं दंसणेहिं छट्ठाणवडिए
उक्कोसोमाहणगणं भंते ! नेरइयाणं केवइया

पज्जवा पन्नत्ता ?, गोयमा ! अणंता पज्जवा पन्नत्ता
 से केणट्ठेणं भंते ! एवं बुच्चइ उक्कोसोगाहणयाणं
 नेरइयाणं अणंता पज्जवा पन्नत्ता ?, गोयमा !
 उक्कोसोगाहणए नेरइए उक्कोसोगाहणस्स नेरइय-
 स्स दव्वट्ठयाए तुल्ले पएसट्ठयाए तुल्ले ओगा-
 हणट्ठयाए तुल्ले, ठिईए सिय हीणे सियतुल्ले सिय
 अब्भहिए, जइ हीणे असंखिज्जभागहीणे वा संखि-
 ज्जभागहीणे वा अह अब्भहिए असंखिज्जभागअब्भ-
 हिए वा संखिज्जभागअब्भहिए वा, वन्नगंधरस-
 फासपज्जवेहिं तिहिं नाणेहिं तिहिं अन्नाणेहिं तिहिं
 दंसणेहिं छट्ठाणवडिए, अजहन्नमणुक्कोसोगाहणयाणं
 नेरइयाणं केवइया पज्जवा पन्नत्ता ?, गोयमा !, अणंता
 पज्जवा पन्नत्ता, से केणट्ठेणं भंते ! एवं बुच्चइ अज-
 हन्नमणुक्कोसोगाहणयाणं अणंता पज्जवा पन्नत्ता ?,
 गोयमा ! अजहन्नमणुक्कोसोगाहणए नेरइए
 अजहन्नमणुक्कोसोगाहणस्स नेरइयस्स दव्वट्ठयाए
 तुल्ले पएसट्ठयाए तुल्ले ओगाहणट्ठयाए सियहीणे
 सिय तुल्ले सिय अब्भहिए जइ हीणे असंखिज्जभाग-
 हीणे वा संखिज्जभागहीणे वा संखिज्जगुणहीणे वा
 असंखिज्जगुणहीणे वा अह अब्भहिए असंखिज्जभाग-

अब्भहिण वा संखिज्जभागअब्भहिण वा संखिज्ज-
गुणअब्भहिण वा असंखिज्जगुणअब्भहिण वा,
ठिईण सिय हीणे सियतुल्ले सियअब्भहिण, जइहीणे
असंखिज्जभागहीणे वा संखिज्जभागहीणे वा सं-
खिज्जगुणहीणे वा असंखिज्जगुणहीणे वा अह
अब्भहिण असंखिज्जभागअब्भहिण वा संखिज्ज-
भागअब्भहिण वा संखिज्जगुणअब्भहिण वा असं-
खिज्जगुणअब्भहिण वा वन्नगंधरसफासपज्जवेहिं
तिहिं नाणेहिं तिहिं अन्नाणेहिं तिहिं दंसणेहिं
छट्ठाणवडिण, से एएणट्ठेणं गोयमा !, एवं
बुच्चइ--अजहन्नमणुक्कोसोगाहणाणं नेरइयाणं
अणंता पज्जवा पन्नत्ता । जहन्नठिइयाणं भंते !
नेरइयाणं केवइया पज्जवा पन्नत्ता ? गोयमा ! अणंता
पज्जवा पन्नत्ता, से केणट्ठेणं भंते ! एवं बुच्चइ
जहन्नठिइयाणं नेरइयाणं अणंता पज्जवा पन्नत्ता ?
गोयमा ! जहन्नठिइए नेरइए जहन्नठिइयस्स नेर-
इयस्स दव्वट्ठयाए तुल्लेपएसट्ठयाए तुल्ले ओगा-
हणट्ठयाए चउट्ठाणवडिण ठिईए तुल्ले वन्नगंध-
रसफासपज्जवेहिं तिहिं नाणेहिं तिहिं अन्नाणेहिं तिहि
दंसणेहिं छट्ठाणवडिण एवं उक्कोसठिइएवि,

जैनगमों से म्याद्वाद

अजहन्नमणुक्कोसठिइएवि, नवरं सट्ठानेचउट्ठाण-
वडिए । जहन्नगुणकालगोणं भंते ! नेरइयाणं
केवइया पज्जवा पन्नत्ता ? गोयमा ! अणता
पज्जवा पन्नत्ता, से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चइ-
जहन्नगुणकालगोणं नेरइयाणं अणता पज्जवा
पन्नत्ता ? गोयमा ! जहन्नगुणकालए नेरइए जहन्न-
गुणकालगस्स नेरइयस्स दव्वट्ठयाए तुल्ले पएसड-
याए तुल्ले ओगाहणट्ठयाए चउट्ठाणवडिए ठिइए
चउट्ठाणवडिए कालवन्नपज्जवेहिं तुल्ले अवसेसेहिं वन्न-
गंधरसफासपज्जवेहिं तिहिं नाणेहिं तिहिं अन्नाणेहिं तिहिं
दंसणेहिं छट्ठाणवडिए, से एएणट्ठेणं गोयमा ! एवं
इ जहन्नगुणकालगोणं नेरइयाणं अणता पज्जवा पन्नत्ता,
एवं उवक्कोसगुणकालएवि, अजहन्नमणुक्कोसगुण-
कालएवि एवं चैव नवरं कालवन्नपज्जवेहिं छट्ठाण-
वडिए, एवं अवसेसा चत्तारि वन्ना दो गंधा पंच-
रसा अट्ठफासा भाणियव्वा । जहन्नाभिणिवोहियना-
णीणं भंते ! नेरइयाणं केवइया पज्जवा पन्नत्ता ?
गोयमा ! जहन्नाभिणिवोहियनाणीणं नेरइयाणं
अणता पज्जवा पन्नत्ता, से केणट्ठेणं भंते ! एवं
वुच्चइ जहन्नाभिणिवोहियनाणीणं नेरइयाणं अणता

पञ्जवा पन्नत्ता ?; गोयमा ! जहन्नाभिणिबोहियनाणी
 नेरइए जहन्नाभिणिबोहियस्स नाणिस्स नेरइयस्स-
 दव्वट्ठयाए तुल्ले पएसट्ठयाए तुल्ले ओगाहण-
 ट्ठयाए चउट्ठाणवडिए ठिईए चउट्ठाणवडिए
 वन्नगंधरसफाम पञ्जवेहिं छट्ठाणवडिए आभिणि-
 बोहियनाणपञ्जवेहिं तुल्ले सुयनाण० ओहिनाण-
 पञ्जवेहिं छट्ठाणवडिए तिहिं दंसणेहिं छट्ठाण-
 वडिए, एवं उक्कोसाभिणिबोहियनाणीवि, अज-
 हन्नमणुक्कोसभिणिबोहियनाणीवि एवं चेव, शवरं
 अभिणिबोहियनाणपञ्जवेहिं सट्ठाणे छट्ठाणवडिए,
 एवं सुयनाणी ओहिनाणीवि, नवरं जस्स नाणा-
 तस्स अन्नाणा नत्थि, जहा नाणा तहा अन्नाणावि
 भाणियव्वा, नवरं जस्स अन्नाणा तस्स नाणा न
 भवंति । जहन्नचक्खुदंसणीणं भंते ! नेरइयाणं
 केवइया पञ्जवा पन्नत्ता ?, गोयमा ! अणंता
 पञ्जवा पन्नत्ता, से केषट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चइ
 जहन्नचक्खुदंसणीणं नेरइयाणं अणंता पञ्जवा
 पन्नत्ता ?, गोयमा ! जहन्नचक्खुदंसणीणं नेरइए
 जहन्नचक्खुदंसणिस्स नेरइयस्स दव्वट्ठयाए तुल्ले
 पएसट्ठयाए तुल्ले ओगाहणट्ठयाए च उट्ठाण-

वडिए ठिईए चउट्टाणवडिए वन्नगंधरसफास पज्ज-
वेहिं तिहिं नाणेहिं तिहिं अन्नाणेहिं छट्टाणवडिए
चक्खुदंसणापज्जवेहिं तुल्ले अचक्खुदंसणापज्जवेहिं
ओहिंदंसणापज्जवेहिं छट्टाणवडिए, एवं उक्कोस-
चक्खुदंसणीवि, अजहन्नमणुक्कोसचक्खुदंसणीवि
एवं चेव, नवरं सट्ठाणो छट्टाणवडिए, एवं अचक्खु-
दंसणीवि ओहिंदंसणीवि । (सूत्र १११) ॥

टीका—‘जहन्नोगाहणाणं भंते !’ इत्यादि, सुगमं नवरं
‘ठिईए चउट्टाणवडिए’ इति जघन्यावगाहनो हि दशवर्षसहस्र-
स्थितिकोऽपि भवति रत्नप्रभायां उत्कृष्टस्थितिकोऽपि सप्तमनरक-
पृथिव्यां, तत उत्पद्यते स्थित्या चतुः स्थानपतितता, ‘तिहिं नाणेहिं
तिहिं अन्नाणेहिं’ति इह यदा गर्भव्युत्क्रान्तिकसंज्ञिपञ्चेन्द्रियो नरके-
पूत्पद्यते तदा स नारकायुः संवेदनप्रथमसमय एव पूर्वगृहीतौदारिक-
शरीरपरिशाटं करोति तस्मिन्नेव समये सभ्यगृह्ण्टेस्त्रीणि ज्ञानानि
मिथ्यादृष्टेस्त्रीण्यज्ञानानि समुत्पद्यन्ते, ततोऽविग्रहेण विग्रहेण वा
गत्वा वैक्रियशरीरसंवातं करोति, यस्तु संमूर्च्छिमासंज्ञिपञ्चेन्द्रियो
नरकेपूत्पद्यते तस्य तदानीं विभंगज्ञानं नास्तीति जघन्यावगाहन-
स्यास्याज्ञानानि भजनयाद्रष्टव्यानि द्वे त्रीणि वेति, उत्कृष्टावगाहन-
सूत्रेस्थित्या हानौ वृद्धौ च । द्विस्थानपतितत्वं तद्यथा—असंख्येय-
भागहीनत्वं वा संख्येयभागहीनत्वं वा, तथा असंख्येयभागाधिक-

त्वं वा संख्येयभागाधिकत्वं वा न तु संख्येयासंख्येयगुणवृद्धिहानी,
 कस्मादिति चेत्, उच्यते, उत्कृष्टावगाहना हि नैरयिकाः पञ्चधनुः-
 शतप्रमाणाः, ते च सप्तमनरकृष्टव्या, तत्र जघन्या स्थितिं
 द्वाविंशतिः सागरोपमाणि उत्कृष्टा त्रयस्त्रिंशत्सागरोपमाणि, ततो-
 ऽसंख्येयसंख्येयभागहानिवृद्धी एव घटेते न त्वसंख्येयसंख्येयगुण-
 हानिवृद्धी, तेषां चोत्कृष्टावगाहनानां त्रीणि ज्ञानानि त्रीण्यज्ञानानि
 वा नियमाद्वेदितव्यानि, न भजनया, भजनाहेतोःसंमूर्च्छिमासं-
 ज्ञिपञ्चेन्द्रियोत्पादस्य तेषामसंभवात्, अजघन्योत्कृष्टावगाहनसूत्रे
 यदवगाहनया चतुःस्थानपतितत्वं तदेवं—अजघन्योत्कृष्टावगाहनो
 हि सर्वजघन्याङ्गुलासंख्येयभागात्परतो मनाक् वृहत्तराङ्गुलस्या
 संख्येयभागादारभ्य यावदङ्गुलासंख्येयभागन्यूनानि पञ्चधनुःशता-
 नि तावदवसेयः, ततःसामान्यनैरयिकसूत्रे इवात्राप्युपपद्यते अवगा-
 हनातश्चतुःस्थानपतितता. स्थित्या चतुःस्थानपतितता सुप्रतीता,
 दशवर्षसहस्रेभ्यः आरभ्योत्कर्षतस्त्रयस्त्रिंशत्सागरोपमाणामपि
 तस्यां लभ्यमानत्वात्, जघन्यस्थितिसूत्रे अवगाहनया चतुःस्थान-
 पतितत्वं तस्यावगाहनायां जघन्यतोऽङ्गुलासंख्येयभागादारभ्यो-
 त्कर्षतः सप्तानां धनुषामवाप्यमानत्वात्. अत्रापि त्रीण्यज्ञानानि
 केषांचित्कादाचित्कतया द्रष्टव्यानि, संमूर्च्छिमासंज्ञिपञ्चेन्द्रिये-
 भ्यउत्पन्नानामपर्याप्तावस्थायां विभङ्गस्याभावात्, उत्कृष्टस्थिति-
 चिन्तायावगाहनया चतुःस्थानपतितत्वमुत्कृष्टस्थितिकस्यावगाह-

नाया जघन्यतोऽङ्गुलासंख्येयभागादारभ्योत्कर्षतः पञ्चानां वनुः—
 शतानामवाप्यमानत्वात्, 'अजहन्नुक्कोमठिइएवि एव चेव'
 इत्यादि, अजघन्योत्कृष्टस्थितावपि तथा वक्तव्यं यथा जघन्यस्थिति-
 सूत्रे उत्कृष्टस्थिति सूत्रे च नवरमयं विशेषः—जघन्यस्थितिसूत्रे उत्-
 कृष्टस्थितिसूत्रे च स्थित्या तुल्यत्वमभिहितं अत्र तु स्वस्थानेऽपि
 स्थितावपि चतुःस्थानपतित इति वक्तव्यं, समयाधिकदशवर्षसह-
 स्रेभ्य आरभ्योत्कर्षत समयात्रयस्त्रिंशत्सागरोपमाणांमवाप्य-
 मानत्वात्, जघन्यगुणकालकादिसूत्राणि सुप्रतीतानि नवरं
 'जस्स नाणा तस्स अन्नाणा नत्थि'त्ति यस्य ज्ञानानि तस्या ज्ञानानि
 न संभवन्तीति यतः सम्यग्दृष्टेर्ज्ञानानि मिथ्यादृष्टेरज्ञानानि,
 सम्यग्दृष्टित्वं च मिथ्यादृष्टित्वोपमर्देन भवति मिथ्यादृष्टित्वमपि
 सम्यग्दृष्टित्वोपमर्देन भवति, ततो ज्ञानसद्भावेऽज्ञानाभावः एवम-
 ज्ञानसद्भावे ज्ञानाभावः, तत उक्तं—'जहा नाणा तहा अन्नाणावि
 भाणियव्वा, नवरं जस्स अन्नाणा तस्स अन्नाणा न संभवति'
 इतिशेषं पाठं सिद्धं ।

मूलम्—जहन्नोगाहणगाणं भते ! असुरकुमाणं केवइया
 पज्जवा पन्नता ?, गोयमा ! अणंता पज्जवा
 पन्नता, से केणट्ठेणं भते ! एवं बुच्चइ जहन्नोगाह-
 णगाणं असुरकुमाराणं अणंता पज्जवा पन्नता ?,
 गोयमा ! जहन्नोगाहणं असुरकुमारे जहन्नोगाह-

एस्स असुरकुमारस्स दव्वट्ठयाए तुल्ले पएस याए
तुल्ले ओगाहणत्थयाए तुल्ले ठिईए चउट्ठाणवडिए
चणईहिं छट्ठाणवडिए आभिरिबोहियनाण० सुयनाण
अ हिनाणपजवेहिं तिहिं अन्नाणेहिं तिहिं दंसणेहिं
य छट्ठाणवडिए, एवं उक्कोसोगाहणएवि, एवं अज-
हन्नमणुक्कोसोगाहणएवि, नवर उक्कोसोगाहणएवि
अनुत्तुमारं ठिईए चउट्ठाणवडिए, एवं जाव थणिय
कुमारा । सूत्र ११२ ।

-जहन्नोमाहणार्णं भंते ! पुढविकाइयाणं केवइया
पज्जवा पन्नत्ता ? गोयमा ! अणंता पज्जवा पन्नत्ता,
से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चइ जहन्नोमाहणार्णं पुढ-
विकाइयाणं अणंता पज्जवा पन्नत्ता ? गोयमा !
जहन्नोमाहणए पुढविकाइए जहन्न गाहणास्स पुढ-
विकाइयस्स दव्वट्ठयाए तुल्ले पएसट्ठयाए तुल्ले
ओगाहणट्ठयाए तुल्ले ठिईए तिट्ठाण वडिए वन्न-
गंधरसफासपज्जवेहिं दोहिं अन्नाणेहिं अचक्खदंसण-
पज्जवेहिं य छट्ठाणवडिए, एवं उक्कोसोगाहणएवि
अजहन्नमणुक्कोसोगाहणएवि एवं चेव, नवरं
मट्ठाणे चउट्ठाणवडिए, जहन्नठिइयाणं पुढवि-
काइयाणं पुच्छा गोयमा ! अणंता पज्जवा पन्नत्ता,

से केणट्ठेण भंते ! एवं वुच्चइ जहन्नठिइयाणं पुढ-
विकाइयाणं अणंता पज्जवा पन्नत्ता ? गोयमा !
जहन्नठिइए पुढविकाइए जहन्नठिइयस्स पुढविकाइयस्स
दव्वट्ठयाए तुल्ले पएसट्ठयाए तुल्ले ओगाहणट्ठयाए
चउट्ठाणवडिए ठिईए तुल्ले वन्नगंधरसफासपज्जवेहिं
मतिअन्नाणं सुयअन्नाणं अचक्खुदंसणपज्जवेहिं
छट्ठाणवडिए एवं उक्कोसठिइएवि, अजहन्नमणु-
क्कोसठिइएवि एव चेव नवरं सट्ठाणे तिट्ठाणवडिए,
जहन्नगुणकालयाणं भंते ! पुढविकाइयाणं पुच्छा
गोयमा ! अणंता पज्जवा पन्नत्ता, से केणट्ठेण
भंते ! एवं वुच्चइ जहन्नगुणकालयाणं पुढविकाइयाणं
अणंता पज्जवा पन्नत्ता, गोयमा ! जहन्नगुणकालए
पुढविकाइए जहन्नगुणकालमस्स पुढविकाइयस्स
दव्वट्ठयाए तुल्ले पएसट्ठयाए तुल्ले ओगाहणट्ठयाए
चउट्ठाणवडिए ठिईए तिट्ठाणवडिए कालवन्नपज्जवेहिं
तुल्ले अब्बेसेहिं वन्नगंधरसफासपज्जवेहिं छट्ठाणवडिए
दोहिं अन्नाणेहिं अचक्खुदंसणपज्जवेहिं य छट्ठाण-
वडिए, एवं उक्कोसगुणकालएवि, अजहन्नमणुक्को-
सगुणकालएवि, एवं चेव, नवरं सट्ठाणे छट्ठाणवडिए,
एवं पंच वन्ना दो गथा पंच रसा अट्ठफासा भाणि-

यत्वा । जहन्नमतिअन्नाणीणं भंते ! पुढविकाइयणं
पुच्छा गोयमा ! अणंता पज्जवा पन्नत्ता, से केणट्ठेण
भंते ! एवं वुच्चइ जहन्नमतिअन्नाणीणं पुढविकाइकाणं
अणंता पज्जवा पन्नत्ता ? गोयमा ! जहन्नमतिअन्ना-
णी पुढविकाइए जहन्नमतिअन्नाणिस्स पुढविकायस्स
दव्वट्ठयाए तुल्ले पएसट्ठयाए तुल्ले आगाहणट्ठयाए
चउट्ठाणवडिए ठिईए तिट्ठाणवडिए नन्नगंधरसफास
पज्जवेहिं छट्ठाणवडिए मइअन्नाणपज्जवेहिं तुल्ले सुय-
अन्नाणपज्जवेहिं अचक्खुदंसणपज्जवेहिं छट्ठाणवडिए,
एवं उक्कोसमइअन्नाणीवि, अजहन्नमणुकोसमइ-
अन्नाणीवि एवं चेव, नवरं सट्ठाणे छट्ठाणवडिए,
एवं सुयअन्नाणीवि अचक्खुदंसणीवि एवं चेव जाव
वणप्फइकाइया । (सूत्र ११३) ॥

—जहन्नोगाहणगाणं भंते ! वेइंदियाणं पुच्छा गोयमा !
अणंता पज्जवा पन्नत्ता, से केणट्ठेणं भंते ! एवं
वुच्चइ जहन्नोगाहणगाणं वेइंदियाणं अणंता पज्जवा
पन्नत्ता ? गोयमा ! जहन्नोगाहणाए वेइंदिए जह-
न्नोगाहणस्स वेइंदियस्स दव्वट्ठयाए तुल्ले पएसट्ठ-
याए तुल्ले ओगाहणट्ठयाए तुल्ले ठिईए तिट्ठाणवडिए
वन्नगंधरसफासपज्जवेहिं दोहिं नानेहिं दोहिं अन्ना-

नैनागसों मे स्याद्वाद

शेहिं अचक्खुदंसणपज्जवेहिं य छट्ठाणवडिए, एवं
 उक्कोसोमाहणएवि, शवरं खाणा शत्थि, अजहन्न-
 मणुक्क सोमाहणए जहा जहन्नोमाहणए, शवरं
 सहणे आमाहणए चउट्ठाणवडिए, जह नठिइयाणं
 भंते ! वेइंदियाणं पुच्छा गोयमा ! अणंता पज्जवा
 पन्नत्ता. से केणट्ठेणं भंते ! एव बुच्चइ जहन्नठियाणं
 वेइंदियाणं अणंता पज्जवा पन्नत्ता ?, गोयमा !
 जहन्नठिए वेइंदिए जहन्नठियस्स वेइंदियस्स
 दव्वट्ठयाए तुल्ले आमाहणट्ठयाए चउट्ठाणवडिए
 ठितीए तुल्ले वन्नगंधरसफासपज्जवेहिं दोहिं अन्ना-
 शेहिं अचक्खुदंसणपज्जवेहिं य छट्ठाणवडिए, एव
 उक्कोसठिएवि, नवरं दो खाणा अब्भहिया,
 अजहन्नमणुक्कोसठिए जहा उक्कोसठिए शवर
 ठिए तिट्ठाणवडिए । जहन्नगुणकालगाणं वेइंदियाण
 पुच्छा गोयमा ! अणंता पज्जवा पन्नत्ता, से केण-
 ट्ठेणं भंते ! एवं बुच्चइ-जहन्नगुणकालगाणं वेइंदि-
 याणं अणंता पज्जवा पन्नत्ता ?, गोयमा ! जहन्न-
 गुणकालए वेइंदिए जहन्नगुणकालस्स वेइंदियस्स
 दव्वट्ठयाए तुल्ले पएसट्ठयाए तुल्ले आमाहणट्ठयाए
 छट्ठाणवडिए ठिइए तिट्ठाणवडिए कालवन्नपज्जवेहिं

तुल्ले अवसेरेहिं वन्नगंधरसफासपज्जवेहिं दोहिं
 नाणेहिं दोहिं अन्नाणेहिं अचक्खुदंसणापज्जवेहिं य
 छट्ठाण वडिए एवं उक्कोसगुणकालएवि, अजन्नमणु-
 क्कोसगुणकालएवि, एवं चेव, एवरं रुद्धाणे छट्ठाणा-
 वडिए, एवं पच वन्ना दो गंधापचरसा अट्ठफासा
 भाणियत्वा, जहन्नाभिणिवाहियनाणीणं भंते ! बेइंदि-
 याणं केवइद्या पज्जवा पन्नत्ता ?, गोयमा ! अणंता
 पज्जवा पन्नत्ता, से केणाटठेणं भंते ! एव वुच्चइ—
 जहन्नाभिणिवाहियनाणीणं बेइंदियाणं अणंता पज्जवा
 पन्नत्ता ?, गोयमा ! जहन्नाभिणिवाहियणाणी बेइंदिए
 जहन्नाभिणिवाहियणाणिस्स बेइंदियस्स दव्वट्ठयाए
 तल्ले पएमट्ठयाए तुल्ले ओगाहण्हयाए. चउट्ठाण-
 वडिए ठिईए तिट्ठाणवडिए वन्नगंधरसफासपज्जवेहिं
 छट्ठाणवडिए आभिणीवाहियणाणपज्जवेहिं तल्ले
 सुयणाणपज्जवेहिं छट्ठाणवडिए अचक्खुदंसणापज्ज-
 वेहिं छट्ठाणवडिए, एवं उक्कोसाभिणिवाहियनाणीदि
 अजन्नमणुक्कोसभिणिवाहियणाणीवि एवं चेव नवर
 मट्ठाणे छट्ठाणवडिए, एवं सुयनाणीवि सुयअन्ना-
 णीवि अचक्खुदंसणीवि, एवरं जत्थ णाणा तत्थ
 अन्नाणा नत्थि जत्थ अन्नाणा तत्थ णाणा नत्थि,

जैनागमों में स्थावराद

जत्थ दंसणं तत्थ णणवि अन्नाणावि, एव तेइंदिया-
णवि, चउरिदियाणवि एवं चेव णवरं चक्खदंसणं
अब्भहिंयं (सू० ११४ ॥)

-जहन्नो गाहणगाणं भंते ! पंचिंदियतिरिक्खजोणिकाणं
केवइया पज्जवा पन्नत्ता, गोयमा ! अणंता पज्जवा
पन्नत्ता, से से केणट्ठेणं भंते ! एवं बुच्चइ-अहन्नो-
गाहणगाः पंचिंदियतिरिक्खजोणियाणं अणंता पज्जवा
पन्नत्ता ? गोयमा ! जहन्नो गाहणाए पंचिंदियति-
रिक्खजोणिए जहन्नो गाहणयस्स पंचिंदियतिरिक्ख-
जोणियस्स दव्वट्ठयाए तुल्ले पएसट्ठयाए तुल्ले
ओगाहणट्ठयाए तुल्ले टिईए तिट्ठाणवडिए वन्नगध-
फासपज्जवहिं दाहिं नाणेहिं दोहिं अन्नाणंहिं दोहिं
दसणेहिं छट्ठाणवडिए, उक्कासो गाहणएवि एव चेव
णवरं तिहिं नाणेहिं तिहिं दंसणेहिं छट्ठाणवडिए,
जहा उक्कासो गाहणए तहा अजहन्नमणुक्कोसो गाह-
णएवि, णवरं ओगाहणट्ठयाए चउट्ठाणवडिए,
जघन्नठिइयाणं भंते ! पंचिंदियतिरिक्खजोणियाणं
केवइया पज्जवा पन्नत्ता ? गोयमा ! अणंता पज्जवा
पन्नत्ता, से केणट्ठेणं भंते ! एवं बुच्चइ जहन्नठिइयाणं

पञ्चिदियतिरिक्खजोशियाणं अणंता पज्जवा पन्नत्ता ?
 गोयमा ! जहन्नठिइए पञ्चिदियतिरिक्खजोशिए
 जहन्नठिइयस्स पञ्चिदियतिरिक्खजोशियस्स दब्ब-
 दयाए तुल्ले पएसदयाए तुल्ले ओगाहणदयाए चउ-
 द्दाणवडिए ठिईए तुल्ले वन्नगंधरसफामपज्जवेहिं
 दोहिं अन्नाणेहिं दोहिं दंसणेहिं छद्दाणवडिए
 उक्कामठिइएवि एवं चेव णवरं दो नाणादोअन्नाणा
 दो दंसणा, अजहन्नमणुक्कोसठिइएवि, एवं चेव,
 नवरं ठिइए चउद्दाणवडिए तिन्नि णाणा तिन्नि
 अन्नाणा तिन्नि दंसणा । जहन्नगुणकालाणं भंते !
 पञ्चिदियतिरिक्खजोशियाणं पुच्छा गोयमा ! अनन्ता
 पज्जवा पन्नत्ता, से केषट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चइ ?,
 गोयमा ! जहन्नगुणकालए पञ्चिदियतिरिक्खजोशिए
 जहन्नगुणकालगस्स पञ्चिदियतिरिक्खजोशियस्स
 दब्बट्ठयाए तुल्ले पएसट्ठयाए तुल्ले ओगाहण-
 ट्ठयाए चउट्ठाणवडिए ठिईए चउद्दाणवडिए काल-
 वन्नपज्जवेहिं तुल्ले अवसेसेहिं वन्नगंधरसफासपज्जवेहिं
 तिहिं नाणेहिं तिहिं अन्नाणेहिं तिहिं दंसणेहिं छद्दाण-
 वडिए, एवं उक्कोसगुणकालएवि अजहन्नमणु-
 क्कोसगुणकालएवि, एवं चेव नवरं सडाणे छद्दाण-

वडिए, एवं पंच वन्ना दो गंधा पंच रसा अट्ट फासा,
जहन्नभिणिवोहियणाणीणं भंते ! पंचिदियतिरिक्ख-
जोणियाणं केवइया पज्जवा पन्नत्ता ?, गायमा !
अण्णंता पज्जवा पन्नत्ता, से केशट्ठेणं भंते ! एवं
बुच्चइ ? गायमा ! जहन्नभिणिवोहियणाणिस्स पंचि-
दियतिरिक्खजोणियस्स दव्वट्ठयाए तुल्ले पएसट्ठ-
याए तुल्ले अगाहणट्ठयाए चउट्ठाणवांडए वन्न-
गंधरसफासपज्जवेहिं छट्ठाणवडिए आभिणिवोहिय-
नाणपज्जवेहिं तुल्ले सुयनाणपज्जवेहिं छट्ठाणवडिए
चक्खुदंसणपज्जवेहिं छट्ठाणवडिए अचक्खुदंराण-
पज्जवेहिं छट्ठाणवडिए, एवं उक्कोसाभिणिवोहिय-
नाणीवि, णवरं ठिईए तिट्ठाणवडिए, तिन्नि नाणां
तिन्नि दंसणा सट्ठाणे तुल्ले सेरेसु छट्ठाणवडिए,
अजहन्नमणुक्कोसाभिणिवोहियनाणी जहा उक्कोमा-
भिणिवोहियनाणी णवरं ठिईए चउट्ठाणवडिए,
सट्ठाणे छट्ठाणवडिए, एवं सुयनाणीवि, जहन्नोहिना-
णीणं भंते ! पंचिदियतिरिक्खजोणियाणं पुच्छा
गायमा ! अण्णंता पज्जवा पन्नत्ता, से केशट्ठेणं
भंते ! एवं बुच्चइ ?, गायमा ! जहन्नोहिनाणी पंचि-
दियतिरिक्खजोणिए जहन्नोहिनाणिस्स पंचिदियति-

रिक्खजोणियस्स दव्वट्ठयाए तुल्ले पएसट्ठयाए
तुल्ले ओगाहणट्ठयाए चउट्ठाणवडिण्णि ठिईए तिट्ठाण-
वडिण्णि वज्जगंधरसफ सपज्जवेहिं आमिणिवोहिय-
नाणासुयनाणपज्जवेहिं छट्ठाणवडिण्णि ओहिनाणपज्ज-
वेहिं तुल्ले, अन्नाणा नत्थि, चक्खुदंसणपज्जवेहिं
अचक्खुदंसणपज्जवेहिं य ओहिदंसणपज्जवेहिं
छट्ठाणवडिण्णि, एवं उक्कं ओहिनाणीवि अजहन्नो-
क्कं ओहिनाणीवि एवं चेव, शवरं सट्ठाणे छट्ठाण-
वडिण्णि, जहा आमिणिवोहियनाणी तहा भइअन्नाणी
सुयअन्नानी य जहा ओहिनाणी तहा विभंगना-
णीवि, चक्खुदंसणी अचक्खुदंसणी य जहा आमि-
णिवोहियनाणी, ओहिदंसणी जहा ओहिनाणी,
जत्थ नाणा तत्थअन्नाणा नत्थि जत्थ अन्नणा
तत्थनाणा नत्थि, जत्थ दंसणा तत्थणाणावि अन्ना-
णावि अत्थित्ति भाणियव्वं सू० ११५)

-जहन्नोगाहणगाणं भंते ! मणुस्साणं केवइया पज्ज-
वा पन्नत्ता ?, गोयमा ! अणंता पज्जवा पन्नत्ता,
से केणट्ठेणं भंते ! एवं बुच्चइ-जहन्नोगाहणगाणं
मणुस्साणं अणंता पज्जवा पन्नत्ता ?, गोयमा !
जहन्नोगाहणए मणुस्से जहन्नोगाहणगस्स मणुस्स-

दध्वट्याए तुल्ले पएसट्ठयाए तुल्ले ओगाहणट्ठयाए
तुल्ले ठिईए तिङ्गाणवडिए वन्नगंधरसफासपज्जवेहिं
तिहिं नाणेहिं दोहिं अन्नाणेहिं तिहिं दंसणेहिं
छट्ठाणवडिए, उक्कोसोगाहणएवि एवं चेव, नवरं
ठिईए सिय तुल्ले सिय अब्भहिं, जइ हीणे असां-
खिज्जइ भागहीणे अह अब्भहिं असांखेज्जइभाग-
अब्भहिं, दो नाणा दो अन्नाणा दो दंसणा, अज-
हन्नमणुक्कोसोगाहणएवि एवं चेव, एवरं ओगाहण-
ट्ठयाए चउट्ठाणवडिए, ठिईए चउट्ठाणवडिए आइ-
ल्लेहिं चउहिं नाणेहिं छट्ठाणवडिए, केवलनाणएपज्ज-
वेहिं तुल्ले, तिहिं अन्नाणेहिं तिहिं दंसणेहिं छट्ठाण-
वडिए, केवलदंसणपज्जवेहिं तुल्ले, जहन्नठिइयाण
भंते ! मणुस्माणं केवइया पज्जवा पन्नचा ?,
गोयमा ! अणंता पज्जवा पन्नचा, से कणट्ठेणं
भंते ! एवं वुच्चइ ?, गोयमा ! जहन्नठिइए मणुस्से
जहन्नठिइयस्स मणुस्सस्स दध्वट्याए, तुल्ले पए-
सट्ठयाए तुल्ले ओगाहणट्ठयाए चउट्ठाणवडिए
ठिईएतल्ले वन्नगंधरसफासपज्जवेहिं दोहिं अन्नाणेहिं
दोहिं दंसणेहिं छट्ठाणवडिए, एवं उक्कोसठिइएवि,
नवरं दो नाणा दो अन्नाणा दो दंसणा, अजहन्न-

मणुक्कोसठिइएवि, एवं चैव, नवरं ठिईए चउट्टाण-
वडिए ओगाहणट्ठयाए चउट्टाणवडिए आइल्लेहिं
चउहिं नाणेहिं छट्टाणवडिए केवलनाणपज्जवेहिं तुल्ले
तिहिं अन्नाणेहिं तिहिं दंसणेहिं छट्टाणवडिए केवल
दंसणपज्जवेहिं तुल्ले । जहन्नगुणकालयाणं भंते !
मणुस्साणं केवइया पज्जवा पन्नत्ता ?, गोयमा !
अणंता पज्जवा पन्नत्ता, से केणट्ठेणं भंते ! एवं
बुच्चइ ?, गोयमा ! जहन्नगुणकालए मणुस्से जहन्न-
गुणकालगस्स मणुस्सस्स दव्वट्ठयाए तुल्ले पएसट्ठ-
याए तुल्ले ओगाहणट्ठयाए चउट्टाणवडिए ठिईए-
चउट्टाणवडिए कालवन्नपज्जवेहिं तुल्ले अवसेसेहिं
वन्नगंधरसफासपज्जवेहिं छट्टाणवडिए चउहिं नाणेहिं
छट्टाणवडिए केवलनाणपज्जवेहिं तुल्ले तिहिं अन्ना-
णेहिं तिहिं दंसणेहिं छट्टाणवडिए केवल दंसणपज्ज-
वेहिं तुल्ले, एवं उक्कोसगुणकालएवि, अजहन्नमणु-
क्कोसगुणकालएवि एवं चैव, नवरं सट्टाणे छट्टाण-
वडिए, एवं पंचवन्मा दो मंधा पंच रसा अट्ठफासा
भाणियव्वा । जहन्नाभिखिबोहियनभेणीणं मणुस्साणं
केवइया पज्जवा पन्नत्ता ?, गोयमा ! अणंता पज्जवा
पन्नत्ता, से केणट्ठेणं भंते ! एवं बुच्चइ ?, गोयमा !

जहन्नाभिणिबोहियणाणी मणुस्से जहन्नाभिणिबोहिया-
 णाणिस्स मणुस्सस्स दब्बट्ठयाए तुल्ले पएसट्ठ-
 याए तुल्ले ओगाहणट्ठयाए चउट्ठाणवडिए ठिईए
 चउट्ठाणवडिए वन्नगंधरसफासपज्जवेहिं छट्ठाणवडि-
 ए आभिणिबोहियणाणपज्जवेहिं तुल्ले सुयणाणपज्ज-
 वेहिं दोहिं दंसणेहिं छट्ठाणवडिए, एवं उक्कोसाभिणि-
 बोहियणाणीवि नवरं आभिणिबोहियणाणपज्जवेहिं
 तुल्ले ठिईए तिहाणवडिए तिहिं नाणेहिं तिहिं दंसणे-
 हिं छट्ठाणवडिए, अजहन्नमणुक्कोसाभिणिबोहियणाणी
 जहा उक्कोसाभिणिबोहियणाणी, नवरं ठिईए चउ-
 ट्ठाणवडिए सट्ठाणे छट्ठाणवडिए, एवं सुयणाणीवि,
 जहन्नोहिनाणीणं भंते ! मणुस्साणं केवइया पज्जवा
 पन्नत्ता ?, गोयमा ! अणंता पज्जवा पन्नत्ता, से
 केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चइ ?, गोयमा ! जहन्नोहि-
 नाणी मणुस्से जहन्नोहिनाणिस्स मणुस्सस्स दब्बट्ठ-
 याए तुल्ले पएसट्ठयाए तुल्ले ओगाहणट्ठयाए
 तिहाणवडिए ठिईए तिहाणवडिए वन्नगंधरसफास-
 पज्जवेहिं दोहिं नाणेहिं छट्ठाणवडिए ओहिनाणपज्ज-
 वेहिं तुल्ले मणुणाणपज्जवेहिं छट्ठाणवडिए तिहिं दंस-
 णेहिं छट्ठाणवडिए, एवं उक्कोसोहिनाणीवि, अजहन्न-

मणुक्कोसोहिनाशी एवं चेव, नवरं ओगाहणट्ठयाए
चउट्ठाणवडिए, सट्ठाणे छट्ठाणवडिए, जहा ओहि-
नाशी तहा मणपज्जवनाणीवि भाणियव्वे, नवरं
ओगाहणट्ठयाए तिट्ठाणवडिए, जहा आभिणिबोहि-
यणाशी तहा मइअन्नाणी सुयअन्नाणीवि भाणियव्वे,
जहा ओहिनाणा तहा विभंगनाणिवि भाणियव्वे
चक्खदंसणी अचक्खदंसणी य जहा आभिणिबोहि-
यणाणी ओहिदंसणी जहा ओहिना । । जत्थ नाणा
तत्थ अन्नाणा नत्थि जत्थ अन्नाणा तत्थ नाणा
नत्थि, जत्थ दंसणी तत्थ णाणावि अन्नाणावि ।
केवलनाणीणं भंते ! मणुस्साणं केवइया पज्जवा
पन्नत्ता ?, गोयमा ! अअंता पज्जवा पन्नत्ता, से
केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चइ-केवलनाणीणं मणुस्साणं
अणंता पज्जवा पन्नत्ता ?, गोयमा ! केवलनाणी
मणुसे केवलनाणिस्स मणुस्स दव्वट्ठयाए तुल्ले
पएसट्ठयाएतुल्ले ओगाहणट्ठयाए चउट्ठाणवडिए
ठिईए तिट्ठाणवडिए वन्नगंधरसफासपज्जवेहिं छट्ठाण-
वडिए केवलनाणपज्जवेहिं केवलदंसणपज्जवेवगाहना
तुल्ले एवं केवलदंसणीवि मणुसे स्थित्या त्रिस्थान-
(सूत्र ११६) स्थित्या त्रिस्थानपतताः

मूलप्र-वाणमंतरा जहा असुरकुमारा । एवं जोहभियवेमा-
 णिया, नवरं सट्ठाणे ठिइए तिट्ठाणावेडिए भाणियव्वे,
 सेतं जीवपज्जवा (सूत्र ११७) ॥

टीका—एवमसुरकुमारादिमुत्राण्यपि भावनीयानि प्रायः
 समानगमत्वात्, जघन्यावगाहनादिपृथिव्यादि सूत्रे स्थित्या त्रिस्थान-
 पतितत्वं संख्येयवर्षायुष्कत्वात्, एतच्च प्रागेव सामान्यपृथिवी-
 कायिकसूत्रे भावितं, पर्यायचिन्तायामज्ञाने एव सत्यज्ञानश्रुताज्ञान-
 लक्षणो वक्तव्ये न तु ज्ञाने, तेषां सम्यक्त्वस्य तेषु मध्ये सम्यक्त्व-
 सहितस्य चोत्पादासंभवात् 'उभयाभावो पुढवाइएसु' इति वचनाद्
 अत एवैतदेवोक्तमत्र 'दोहिं अन्नाणेहिं' इति जघन्यावगाहनद्वीन्द्रिय-
 सूत्रे 'दोहिं नाणेहिं दोहिं अन्नाणेहिं' इति द्वीन्द्रियाणां हि केषांचिद-
 पर्याप्तावस्थायां सास्वादनसम्यक्त्वमवाप्यते सम्यग्गृष्टेश्च ज्ञाने
 इति द्वे ज्ञाने लभ्येते शेषाणामज्ञाने तत उक्तं द्वाभ्यां ज्ञानाभ्यां
 द्वाभ्यामज्ञानाभ्यामिति, उत्कृष्टावगाहनायां त्वपर्याप्तावस्थाया अभा-
 वात् सास्वादनसम्यक्त्वं नावाप्यते ततस्तत्र ज्ञाने न वक्तव्ये, तथा-
 चाह—'एवं उक्कोसितोगाहणार वि नवरं नाणा नटि'ति, तथा
 'जघन्योत्सृष्टावगाहना किल प्रथमसमयादूर्ध्वं भवति—इत्यपर्या-
 प्तावस्थाभ्यामपि, तस्याः सम्भवात् सास्वादनसम्यक्त्ववतां ज्ञाने
 अन्येषां चाज्ञाने इति ज्ञाने चाज्ञाने च वक्तव्ये तथाचाह—'अज-

हन्तुमशुक्कोसोगाहणः जहा जहन्मोगाहणः इति, तथा जघन्य-
स्थितिं सूत्रं द्वे अज्ञाने एव वक्तव्ये, न तु ज्ञाने, अतः सर्वजघन्य-
स्थितिको लब्ध्यपर्याप्तको भवति नच लब्ध्यपर्याप्तकेषु मध्ये
सास्वादनसम्यग्दृष्टित्वयते, किं कारणमिति चेत्, उच्यते,
लब्ध्यपर्याप्तको हि सर्वसंक्षिप्तः सास्वादनसम्यग्दृष्टिश्च मनाक्
शुभपरिणामस्ततः स तेषु मध्ये नोत्पद्यते तेनाज्ञाने एव लभ्येते न
ज्ञाने, उत्कृष्टस्थितिषु पुनर्मध्ये सासादनसम्यक्त्वसहितोऽप्युत्प-
द्यते इति तत्सूत्रे ज्ञाने अज्ञाने च वक्तव्ये, तथाचाह—‘एवं उक्कोस-
ठिइएवि, नवरं दो नाणा अम्महिआ’ इति, एवमेवाजघन्योत्कृष्ट-
स्थितिसूत्रमपि वक्तव्यं, भावसूत्राणि पाठसिद्धानि, एवं त्रीन्द्रियचतु-
रिन्द्रिया अपि वक्तव्याः, नवरं चतुरिन्द्रियाणां चक्षुर्दर्शनं अधिकं
अन्यथा चतुरिन्द्रियत्वायोगादिति । तेषां चक्षुर्दर्शनविषयमपि सूत्रं
वक्तव्यं, जघन्यावगाहनतिर्यक्पञ्चेन्द्रियसूत्रे ‘ठिईए तिहाणवडिइ’
इति, इह तिर्यक्पञ्चेन्द्रियः संख्येयवर्षायुष्क एव जघन्यावगाहनो
भवति, नासंख्येयवर्षायुष्कः, किं कारणमिति चेत्, उच्यते, असं-
ख्यवर्षायुरो हि महाशरीराः कङ्ककुक्षिपरिणामत्वात् पुष्टाहाराप्रवज-
धान्त्वचयाः तन्तत्तेषां भूयान् शुक्रनिषेको भवति उक्रनिषेकापुसारेण
च तिर्यग्मनुष्याणामुत्पत्तिसमयेऽवगाहनेति न तेषां जघन्यावगाहना
लभ्यते किं तु संख्येयवर्षायुषां, संख्येयवर्षायुषश्च स्थित्या त्रिस्थान-
पतिताः, अतश्च भावितं आह, तत उक्तं स्थित्या त्रिस्थानपतिताः

इति, 'दोहिं नारोहिं दोहिं अन्नारोहिं' इति जघन्यावगाहनोहि-
तिर्यक्पञ्चेन्द्रियः संख्येयवर्षायुष्कोऽपर्याप्तो भवति सोऽपि चात्प-
कायेषु मध्ये समुत्पद्यमानस्ततस्तस्यावधिविभंगज्ञानासंभवात् द्वे
ज्ञाने द्वे अज्ञाने उक्ते, यस्तु विभंगज्ञानसहितो नरकादुद्धृत्य संख्ये-
यवर्षायुष्केषु तिर्यक्पञ्चेन्द्रियेषु मध्येसमुत्पद्यमानो वक्ष्यते स महा-
कायेषूपद्यमानो द्रष्टव्यः नाल्पकायेषु, तथास्वाभाव्यान्, अन्यथा-
ऽधिकृतसूत्रविरोधः उत्कृष्टावगाहनतिर्यक्पञ्चेन्द्रियसूत्रे 'तिहिं नारोहि
तिहिं अन्नारोहिं' इति, त्रिभिर्ज्ञानैस्त्रिभिरज्ञानैश्च षट् स्थानपतिताः,
तत्र त्रीणि अज्ञानानि कथमिति चेन्, उच्यते, इह यस्य योजन-
सहस्रं शरीरावगाहना स उत्कृष्टावगाहन, स च संख्येयवर्षायुष्क-
एव भवति पर्याप्तश्च, तेन तस्य त्रीणि ज्ञानानि त्रीण्यज्ञानानि च
सम्भवन्ति, स्थित्याऽपि चासावुत्कृष्टावगाहनः त्रिस्थानपतितः,
संख्येयवर्षायुष्कत्वात्, अजघन्योत्कृष्टावगाहनसूत्रे स्थित्या चतुःस्था-
नपतितः, यतोऽजघन्योत्कृष्टावगाहनोऽसंख्येयवर्षायुष्कोऽपि लभ्यते,
तत्रोपपद्यते प्रागुक्तयुक्त्या चतुःस्थानपतितत्वं, अजघन्यस्थितिकति-
र्यक्पञ्चेन्द्रियसूत्रे द्वे अज्ञाने एव वक्तव्ये न तु ज्ञाने, यतोऽसौ
जघन्यस्थितिको लब्धपर्याप्तक एव भवति नच तन्मध्यसासादन-
सम्बन्धेऽदृष्टे हत्पाद इति, उत्कृष्टस्थितिको हि तिर्यक्पञ्चेन्द्रियसूत्रे
'दो नाणा दो अन्नाणा' इति उत्कृष्टस्थितिको हि तिर्यक्पञ्चेन्द्रिय-

त्रिपत्यौपमस्थितिको भवति, तस्य च द्वे अज्ञाने तावन्नियमेन यदा पुनः षण्मासावशेषायुर्वैमानिकेषु बद्धायुष्को भवति तदा तस्य द्वे ज्ञाने लभ्येते अत उक्तं द्वे ज्ञाने द्वे अज्ञाने इति, अजघन्योत्कृष्ट-
 स्थितिकतिर्यक्पञ्चेन्द्रियसूत्रे 'ठिईए चउट्टाणवडिए' इति, अज-
 घन्योत्कृष्टस्थितिको हि तिर्यक्पञ्चेन्द्रियः संख्येयवर्षायुष्कोऽपि
 लभ्यते, असंख्येयवर्षायुष्कोऽपि समयोनत्रिपत्यौपमस्थितिकः
 ततश्चतुःस्थानपतितः, जघन्याभिनिबोधिकतिर्यक्पञ्चेन्द्रियसूत्रे 'ठिईए
 चउट्टाणवडिए' इति, असंख्येयवर्षायुषोऽपि हि तिर्यक्पञ्चेन्द्रियस्य
 स्वभूमिकानुसारेण जघन्ये अभिनिबोधिकश्रुतज्ञाने लभ्येते ततः
 संख्येयवर्षायुषोऽसंख्येयवर्षायुषश्च जघन्याभिनिबोधिकश्रुत ज्ञान-
 सम्भवाद् भवन्ति स्थित्या चतुःस्थानपतिताः, उत्कृष्टाभिनिबोधिक-
 ज्ञानसूत्रे स्थित्या च त्रिस्थानपतिता वक्तव्याः, यत इह यस्योत्कृष्टे
 आभिनिबोधिकश्रुतज्ञाने स नियमात् संख्येयवर्षायुष्कः संख्येय-
 वर्षायुष्कश्च स्थित्याऽपि त्रिस्थानपतित एव यथोक्तं प्राक्, अवधि-
 सूत्रे विभंगसूत्रेऽपि स्थित्या त्रिस्थानपतितः, किं कारणमिति चेत्
 उच्यते, असंख्येयवर्षायुषोऽवधिविभंगासंभवात्, आह च—
 मूलटीकाकारः 'ओहिविभंगेषु नियमा तिट्ठाणवडिए, किं कारणं?',
 भन्नइ, ओहिविभंगा असंखेज्जवासाउयस्स नत्थि'ति, जघन्याव-
 गाहनमनुष्यसूत्रे 'ठिईए तिट्ठाणवडिए' इति, तिर्यक्पञ्चेन्द्रियवत्
 मनुष्योऽपि जघन्यावगाहनो नियमात् संख्येयवर्षायुष्कः, संख्येय

वर्षायुष्कश्च स्थित्या त्रिस्थानपतित एवेति 'तिहिं नाणेहि' इति,
यदा कश्चित् तीर्थकरोऽनुत्तरोपपातिकदेवो वा अप्रतिपतितेनावधि-
ज्ञानेन जघन्यायामवगाहनायामुत्पद्यते तदाऽवधिज्ञानमपि लभ्यते
इतीह त्रिभिज्ञानैरित्युक्तं, विभङ्गज्ञानसहितस्तु नरकादुद्धृतो जघ-
न्यायामवगाहनायां नोत्पद्यते तथास्वाभाव्यात् अतो विभङ्गज्ञानं न
लभ्यते इति द्वाभ्यामज्ञानाभ्यामित्युक्तं, उत्कृष्टावगाहनमनुष्यनृते
ठिईए सिय हीणे सियतुल्ले सिय अब्भहिए जइ हीणे असंखेज्ज-
भागहीणे जइ अब्भहिए असंखेज्जभागअब्भहिए'
इति उत्कृष्टावगाहना हि मनुष्यास्त्रिगव्युतोच्छ्रयाः त्रि-
गव्युतानां च स्थितिर्जन्यतः पल्योपमासंख्येयभागहीनानि त्रीणि
पल्योपमानि उत्कर्षतस्तान्येव परिपूर्णानि त्रीणि पल्योपमानि उक्तं
च जीवाभिगमे—'उत्तरकुरुदेवकुराएमणुस्साणं भंते ! केवइयं
कालं ठिई पुन्नत्ता ? गोयमा ! जहन्नेणं तिन्नि पलिओवमाइ'
पलिओवमन्साखिज्जइभागहीणाइं उक्कोसेणं तिन्नि पलिओवमाइ'
त्रिपल्योपमासंख्येयभागश्च त्रयाणां पल्योपमानां संख्येयतमो भाग
इति पल्योपमासंख्येयभागहीनपल्योपमत्रयस्थितिकः परिपूर्णपल्यो-
पमत्रयस्थितिकापेक्षयाऽसंख्येयभागहीनः , इतरस्तु तदपेक्षया
ऽसंख्येयभागाधिकः शेषा वृद्धिदानयोर्न लभ्यन्ते , 'दो नाणा दो
अन्ताणा' इति, उत्कृष्टावगाहना हि असंख्येयवर्षायुषः
असंख्येयवर्षायुषां चावधिविभंगासंभवः, तथास्वाभाव्यात् अतो द्वे
एव ज्ञाने द्वे अज्ञाने इति, तथा ऽजघन्योत्कृष्टावगाहनः संख्येयवर्षा-

युष्कोऽपि भवति असंख्येयवर्षायुष्कोऽपि भवति, असंख्येयवर्षायुष्को-
 ऽपि गव्यूतद्विगव्यूतोच्छ्रयः ततोऽवगाहनतयाऽपि चतुःस्थानपतितत्वं
 स्थित्याऽपि तथा, आद्यैश्चतुर्भिर्मतिश्रुवावधिमनः पर्यायरूपैर्ज्ञानैः
 षट्स्थानपतिताः, तेषां चतुर्णामपि ज्ञानानां तत्तद्वद्रव्यादिसापेक्षतया
 क्षयोपशमवैचित्र्यतस्तारतम्यभावान्, केवलज्ञानपर्यवैस्तुल्यता,
 निशेषस्वावरणक्षयतः प्रादुर्भूतस्य केवलज्ञानस्य भेदाभावान्,
 शेषं सुगमं, जघन्यस्थितिकमनुष्यसूत्रे 'दोहिं अन्नाणेहिं' इति द्व्यभ्या-
 सज्ञानाभ्यामत्यज्ञानश्रुताज्ञानरूपाभ्यां षट्स्थानपतितता वक्तव्याः,
 न तु ज्ञानाभ्यां कस्मादिति चेत्, उच्यते, जघन्यस्थितिका
 मनुष्याः संमूर्च्छिमाः, संमूर्च्छिममनुष्याश्च नियमतो मिथ्यादृष्टयः,
 ततस्तेषामज्ञाने, एव न तु ज्ञाने उत्कृष्टस्थितिकमनुष्यसूत्रे 'दो नाणा दो
 अन्नाणा' इति, उत्कृष्टस्थितिकाहि मनुष्यास्त्रिपल्योपमायुषः, तेषां च
 तावदज्ञाने नियमेन यदा पुनः षण्मासावशेषायुषो वैमानिकेषु वद्धा-
 युषस्तदा सम्यक्त्वलाभात् द्वे ज्ञाने लभ्येते अवधिविभङ्गौ चासं-
 ख्येयवर्षायुषां न स्त इति त्रीणि ज्ञानानि त्रीण्यज्ञानानि इति नोक्तं,
 अजघन्योत्कृष्टस्थितिकमनुष्यसूत्रमजघन्योत्कृष्टावगाहनमनुष्यसूत्र-
 मिव भावनीयं, जघन्याभिनिबोधिकमनुष्यसूत्रे द्वे ज्ञाने वक्तव्ये
 द्वे दर्शने च, किं कारणं इति चेत्, उच्यते, जघन्याभिनिबोधिको
 हि जीवो नियमादवधिमनः पर्यवज्ञानविकलः, प्रबल ज्ञानावरण
 कर्मोदयसद्भावात्, अन्यथा जघन्याभिनिबोधिकज्ञानत्वायोगात्

ततः शेषज्ञानदर्शनासंभवादाभिनिबोधिकज्ञानपर्यवैस्तुत्यः श्रुतज्ञान-
 पर्ययैर्द्वाभ्यां दर्शनाभ्यां च षट्स्थानपतितोक्ता, उत्कृष्टाभिनिबोधि-
 कसूत्रे 'ठिईए तिट्ठाणवडिए' इति उत्कृष्टाभिनिबोधिको हि नियमान्
 संख्येयवर्षायुः, असंख्येयवर्षायुषः तथाभवस्वाभाव्यात् सर्वोत्कृष्टा-
 भिनिबोधिकज्ञानासंभवात्, संख्येयवर्षायुषश्च प्रागुक्तयुक्तेः स्थित्या
 त्रिस्थानपतिता इति, जघन्यावधिसूत्रे उत्कृष्टावधिसूत्रे चावगाहनया
 त्रिस्थानपतितो वक्तव्यः, यतः सर्वजघन्योऽवधिर्यथोक्तस्वरूपो
 मनुष्याणां पारमविको न भवति, किन्तु तद्भवभावी, सोऽपि च
 पर्याप्तावस्थायां, अपर्याप्तावस्थायां तद्योग्यविशुद्धयभावात्, उत्कृष्टो-
 ऽप्यवधिर्भावतश्चारित्रिणः, ततो जघन्यावधिरुत्कृष्टावधिर्वाऽवगाहन-
 यात्रिस्थानपतितः, अजघन्योत्कृष्टस्त्ववधिः पारमविकोऽपि संभवति
 ततोऽपर्याप्तावस्थायामपि तस्य संभवात् अजघन्योत्कृष्टावधिख-
 गाहनया चतुःस्थानपतितः, स्थित्या तु जघन्यावधिरुत्कृष्टावधिर-
 जघन्योत्कृष्टावधिर्वा त्रिस्थानपतितः, असंख्येयवर्षायुषामवधेर-
 संभवात्, संख्येयवर्षायुषां च त्रिस्थानपतितत्वात्, जघन्यमनः
 पर्यवज्ञानी उत्कृष्टमनःपर्यवज्ञानी अजघन्योत्कृष्टमनः पर्यवज्ञानी च
 स्थित्या त्रिस्थानपतितः, चारित्रिणामेव मनःपर्याय ज्ञानमद्भावात्,
 चारित्रिणां च संख्येयवर्षायुष्कत्वात्, केवलज्ञानसूत्रे तु 'ओगा-
 हण्हयाए चड्ढाए वडिए' इति केवलसमुद्धातं प्रतीत्य, तथाहि—
 केवलसमुद्धातगतः केवली शेषकेवलिभ्योऽसंख्येयगुणाधिकाव-

गाहनः, तदपेक्षया शेषाः केवलिनोऽसंख्येयगुणाहीनावगाहना,
स्वस्थाने तु शेषाः केवलिनस्त्रिस्थानपतिता इति स्थित्या त्रिस्थान-
पतितं, संख्येयवर्षायुष्कत्वात् ॥ व्यन्तरा यथाऽसुरकुमाराः, ज्यो-
तिष्कवैमानिका अपि तथैव, नवरं ते स्थित्यात्रिस्थानपतिता वक्तव्या,
एतच्च प्रागेव भावितं ! उपसंशारमाह—[ग्रन्थाग्र ५०००] 'सेतां
जीवपञ्जवा' एते जीवपर्यायाः । सम्प्रत्यजीवपर्यायान् पृच्छति—

मूलम्—अजीवपञ्जवा णं भंते ! कइविहा पन्नत्ता ? गोयमा !
दुविहा पन्नत्ता, तं जहा—रूविअजीवपञ्जवा य
अरूविअजीवपञ्जवा य, अरूविअजीवपञ्जवा णं भंते !
कइविहा पन्नत्ता ? गोयमा ! दशविहा पन्नत्ता,
तंजहा—धम्मत्थिकाए धम्मत्थिकायस्स देसे धम्मत्थि-
कायस्सपएसा अहम्मत्थिकाए अहम्मत्थिकायस्स
देसे अहम्मत्थिकायस्स पएसा आगासत्थिकाए
आगासत्थिकायस्स देसे आगासत्थिकायस्स पएसा
अद्दासमए सूत्र ११८)

मूलम्—रूविअजीवपञ्जवा णं भंते ! कइविहा पन्नत्ता ?
गोयमा ! चउविहा पन्नत्ता, तंजहा—खंधा खंधदेसा
खंधपएसा परमाणुपुग्गला, तेणं भंते ! किं संखेज्जा
असंखेज्जा अणंता ? गोयमा ! नो संखेज्जा नो

जैनागमा मे म्याद्वाद

संखेज्जा नो असंखेज्जा अणंता, से केशट्ठेणं भंते !
 एवं बुच्चइ-नो संखेज्जा नो असंखेज्जा अणंता ?,
 गोयमा ! अणंता परमाणुपुग्गला अणंता दुपएसिया
 खंधा जाव अणंता दसपएसिया खंधा अणंता सं-
 खिज्जपएसिया खंधा अणंता असंखिज्जपएसिया
 खंधा अणंता अणंतपएसिया खंधा, से तेषट्ठेणं
 गोयमा ! एवं बुच्चइ ते णं नो संखिज्जा नो असं-
 खिज्जा अणंता । सूत्र ११६)

-परमाणुपोग्गलाणं भंते ! केवइया पज्जवा पन्नत्ता ?,
 गोयमा ! परमाणुपोग्गलाणं अणंता पज्जवा पन्नत्ता,
 से केशट्ठेणं भंते ! एवं बुच्चइ-परमाणुपुग्गलाणं
 अणंता पज्जवा पन्नत्ता ?, गोयमा ! परमाणुपुग्गले
 परमाणुपोग्गलस्स दव्वट्ठयाए तुल्ले पएसट्ठयाए
 तुल्ले अंगाहणट्ठयाए तुल्ले ठिईए सिय हीणे सिय
 तुल्ले सिय अब्भहिए जइ हीणे असंखिज्जइभागहीणे
 वा संखिज्जइभागहीणे वा संखिज्जइगुणहीणे वा
 असंखिज्जइगुणहीणे वा अह अब्भहिए असंखिज्जइ-
 भागअब्भहिए वा संखिज्जइभागअब्भहिए वा सं-
 खिज्जइभागअब्भहिए वा संखिज्जइगुणअब्भहिए वा
 असंखिज्जइगुणअब्भहिए वा, कालवन्नपज्जवेहिं सिय

हीणे सिय तुल्ले सिय अब्भहिए जइ होणे अणंत-
 भागहीणे वा असंखिज्जइभागहीणे वा संखिज्जइ
 भागहीणे वा संखिज्जगुणहीणे वा असंखिज्जगुण-
 हीणे वा अणंतगुणहीणे वा अह अब्भहिए अणंत-
 भागअब्भहिए वा असंखिज्जइभागअब्भहिए वा सं-
 खिज्जभागअब्भहिए वा अणंतगुणमब्भहिए वा एवं
 अवसेसवन्नगंधारसफामपज्जवेहिं छट्ठाणवडिए फासाणं
 सियउसिणनिद्धलुक्खेहिं छट्ठाणवडिए, से तेणट्ठेणं
 गोयमा ! एवं बुच्चइ-परमाणुपामलाणं अणंता
 पज्जवा पन्नत्ता दुपएसियाणं पुच्छा गोयमा ! अणंता
 पज्जवा पन्नत्ता ?, से केणट्ठेणं भंते ! एवं बुच्चइ ?,
 गोयम ! दुपएसिए दुपएसियस्स दव्वडयाए तुल्ले
 पएसद्वयाए तुल्ले ओगाहणट्ठयाए सिय हीणो सिय
 तुल्ले सिय अब्भहिए जइ हीणो पएसहीणो अह
 अब्भहिए पएसमब्भहिए ठिईए चउट्ठाणवडिए
 वच्चाईहिं उवरिल्लेहिं चउफासेहिं य छट्ठाणवडिए, एवं
 तिपएसेवि, नवरं ओगाहणद्वयाए सिय हीणे सिय
 तुल्ले सिय अब्भहिए जइ हीणो पएसहीणो वा दुप-
 एसोहीणो वा, अह अब्भहिए पएसमब्भहिए वा

दुपएसमम्भहिए वा, एवं जाव दसपएसिए, नवरं
 ओगाहणाए पएसपरिवुड्ढी कायव्वा जाव दसपए-
 मिए, शवरं नवपएसहीणत्ति, संखेज्जपएसियाणां
 पुच्छा, गोयमा ! अणंता पज्जवा पन्नत्ता, से केणट्ठेणं
 भंते ! एवं बुच्चइ-गोयमा ! संखेज्जपएसिएसंखेज्ज-
 पएसियस्स दव्वड्डयाए तुल्ले पएसट्ठयाए मिय
 हीणे मिय तुल्ले मिय अब्भहिए, जइ हीणे संखेज्ज-
 भागहीणे वा संखिज्जगुणहीणे वा अह अब्भहिए
 एवं चेव ओगाहणड्डयाएवि दुट्ठाणवडिए ठिईए
 चउट्ठाणवडिए वएणाइउवरित्तलचउक्कासपज्जवेहि य
 छट्ठाणवडिए, असंखिज्जपएसियाणां पुच्छा गोयमा !
 अणंता पज्जवा पन्नत्ता, से केणट्ठेणं भंते ! एवं
 बुच्चइ-गोयमा ! असंखिज्जपएसिए खंधे असंखिज्ज-
 पएसियस्स खंधस्स दव्वड्डयाए तुल्ले पएसड्डयाए चउ-
 ट्ठाणवडिए ओगाहणड्डयाए चउट्ठाणवडिए ठिईए
 चउट्ठाणवडिए वएणाइउवरित्तल चउक्कासेहि य छट्ठाण-
 वडिए, अणंतपएसियाणां पुच्छा गोयमा ! अणंता
 पज्जवा पन्नत्ता, से केणट्ठेणं भंते ! एवं बुच्चइ ?,
 गोयमा ! अणंतपएसिए खंधे अणंतपएसियस्स खंध-

स्स दव्वट्ठयाए तुल्ले पएसट्ठयाए छट्ठाणवडिए ओगा-
हणट्ठयाए चउट्ठाणवडिए ठिईए चउट्ठाणवडिए वन्न-
गंधरसफासपज्जवेहिं छट्ठाणवडिए ॥ एगपएसोगा-
हाणं पोग्गलाणं पुच्छा, गोयमा ! अणंता पज्जवा
पन्नत्ता, से केणट्ठेणं भंते ? एवं बुच्चइ ?, गोयमा !
एगपएसोगाढे पोग्गले एगपएसोगाढस्स पोग्गलस्स
दव्वट्ठयाएतुल्ले पएसट्ठया छट्ठाणवडिए ओगाहण-
ट्ठयाए तुल्ले ठिईए चउट्ठाणवडिए वण्णाइउव-
रित्तलचउफासेहिं छट्ठाणवडिए, एवं दुपएसोगाहेवि,
संखेज्जपएसोगाहाणं पुच्छा गोयमा ! अणंता पज्जवा
पन्नत्ता, से केणट्ठेणं भंते ! एवं बुच्चइ ?, गोयमा !
संखेज्जपएसोगाढे पोग्गले संखेज्जपएसोगाढस्स
पोग्गलस्स दव्वट्ठयाए तुल्ले पएसट्ठयाए छट्ठाण-
वडिए ओगाहणट्ठयाए दुट्ठाणवडिए ठिईए चउट्ठा-
वडिए वण्णाइउवरित्तलचउफासेहिं य छट्ठाणवडिए,
असंखेज्जपएसोगाहाणं पुच्छा, गोयमा ! अणंता
पज्जवा पन्नत्ता, से केणट्ठेणं भंते ! एवं बुच्चइ ?,
गोयमा ! असंखेज्जपएसोगाढे पोग्गले असंखेज्जप-
एसोगाढस्स पोग्गलस्स दव्वट्ठयाए तुल्ले पएसट्ठ-
याए छट्ठाणवडिए ओगाहणट्ठयाए चउट्ठाणवडि

जैनागसों म स्याद्वाद

ठिईए चउट्ठाणवडिए वण्णाइअट्ठफासेहिं छट्ठाणवडिए । एगसमयठियाणं पुच्छा गोयमा ! अणंता पज्जवा पन्नत्ता, से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चइ ?, गोयमा ! एगसमयठिइए पोग्गले एगसमयठियम्म पोग्गलस्स दव्वट्ठयाए तुल्ले पएसट्ठयाए छट्ठाणवडिए ओगाहणट्ठयाए चउट्ठाणवडितेठितीए तुल्ले वण्णाइअट्ठफासेहिं छट्ठाणवडिए एवं जाव दससमयठिइए, संखेज्जममयठिइयाणं एवं चेव, एवर ठिईए दुट्ठाणवडिए, असंखेज्जसमयठिइयाणं एवं चेव, नवरं ठिईए चउट्ठाणवडिए, एकगुणकालगाणं पुच्छा, गोयमा ! अणंता पज्जवा पन्नत्ता, से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चइ ?, गोयमा ! एकगुणकालए पोग्गले एकगुणकालगस्स पोग्गलस्स दव्वट्ठयाए तुल्ले पएसट्ठयाए छट्ठाणवडिए ओगाहणट्ठयाए चउट्ठाणवडिए ठिईए चउट्ठाणवडिए कालवन्नपज्जवेहिं तुल्ले अवसेसेहिं वन्नगंधरसफासपज्जवेहिं छट्ठाणवडिए अट्ठफासेहिं छट्ठाणवडिए, एवं जाव दसगुणकालए, संखेज्जगुणकालएवि एवं चेव, नवरं सट्ठाणे दुट्ठाणवडिए, एवं असंखिज्जगुणकालएवि नवरं प्रट्ठाणे चउट्ठाणवडिए, एवं अणंतगुणकालएवि नवरं

सद्योने छट्ठाणवडिए, एवं जहा कालवन्नस्स वत्तव्वया
 भाणिया तहा सेसाणवि वन्नगंधरसफासाणां वत्तव्वया
 भाणियव्वा जाव अणंतगुणलुक्खे ! जहन्नोगाहण-
 गाणं भंते ! दुपएसियाणं पुच्छा, गोयमा ! अणंता
 पज्जवा पन्नत्ता, से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चइ ?,
 गोयमा ! जहन्नोगाहणए दुपएसिए खंधे जहन्नो-
 गाहणस्स दुपएसियस्स खंधस्स दव्वट्ठयाए तुल्ले
 पएसट्ठयाए तुल्ले ओगाहणट्ठयाए तुल्ले ठिईए चउ-
 ट्ठाणवडिए कालवन्नपज्जवेहिं छट्ठाणवडिए सेसवन्न-
 गंधरसपज्जवेहिं छट्ठाणवडिए सोउसिणणिद्धलुक्ख-
 फासपज्जवेहिं छट्ठाणवडिए, से तेणट्ठेणं गोयमा !
 एवं वुच्चइ—जहन्नोगाहणाणं दुपएसियाणं पोगालाणं
 अणंता पज्जवा पन्नत्ता, उक्कोसागाहणाएवि एवं
 चेव, अजहन्नमणुक्कोसागाहणओ नत्थि, जहन्नो-
 गाहणायाणं भंते ! तिपएसियाणं पुच्छा, गोयमा !
 अणंता पज्जवा पन्नत्ता से केणट्ठेणं भंते ! एवं
 वुच्चइ ?, गोयमा ! जहा दुपएसिए जहन्नोगाहणए उक्को-
 सोगाहणाएवि एवं चेव, एवं अजहन्नमणुक्कोसो-
 गाहणाएवि, जहन्नोगाहणायाणं भंते ! चउपएसियाणं

जैनगामों में स्याद्वाद

पुच्छा, गोयमा ! जहा जहन्नोगाहणए दुपएसिए
तहा जहन्नोगाहणए चउप्पएसिए एवं जहा उक्कोसो-
गाहणए दुपएसिए तहा उक्कोसोगाहणए चउप्पए-
सिएवि, एवं अजहन्नमणुक्कोसोगाहणएवि चउ-
प्पएसिए, शवरं ओगाहणट्ठाए सिय हीणे सिय
तुल्ले सियसम्भहिए जइ हीणे पएसहीणे अह अम्म-
हिए पएसअम्महिए एवं जाव दसपएसिए शेयव्वं,
शवरं अजहन्नमणुक्कोसोगाहणए पएसपरिवुड्ढी
कायव्वा जाव दसपएसियस्स सच्च पएससा परिवड्ढि-
ज्जति, जहन्नोगाहणगाणं भंते ! संखिज्जपएसि-
याणं पुच्छा, गोयमा ! अणंता पज्जवा पन्नत्ता,
से केणट्ठेणं भंते ! एवं बुच्चइ ? गोयमा ! जहन्नो-
गाहणए संखेज्जपएसिए जहन्नोगाहणगस्स संखि-
ज्जपएसियस्स दव्वट्ठयाए तुल्ले पएसट्ठयाए
दुट्ठाणवडिए ओगाहणट्ठयाए तुल्ले ठिईए चउट्ठाण-
वडिए वग्गाइचउफासपज्जवेहि य छट्ठाणवडिए एव
उक्कोसोगाहणएवि, अजहन्नमणुक्कोसोगाहणएवि
एवं चेव, शवरं सट्ठाणे दुट्ठाणवडिए, जहन्नोगाहण-
गाणं भंते ! असंखिज्जपएसियाणं पुच्छा, गोयमा !
अणंता पज्जवा पन्नत्ता, से केणट्ठेणं भंते ! एवं

वुच्चइ ? गोयमा ! जहन्नोगाहणए असंखिज्जपए-
 सिए खंधे जहन्नोगाहणगस्स असंखिज्जपएसियस्स
 खंधस्स दब्बट्ठयाए तुल्ले पएसट्ठयाए चउट्ठाण-
 वडिए ओगाहणट्ठयाए तुल्ले ठिईए चउट्ठाणवडिए
 वएणाइउवरिल्लफासेहि य छट्ठाणवडिए, एवं उक्को
 सोगाहणएवि, अजहन्नमणुक्कोसोगाहणायवि, एवं
 चेव, नवरं सट्ठाणे चउट्ठाणवडिए । जहन्नोगाहणमाणं
 भंते ! अणंतपएसियाणं पुच्छा, गोयमा ! अणंता
 पज्जवा पन्नत्ता, से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चइ ?,
 गोयमा ! जहन्नोगाहणए अणंतपएसिए खंधे जह-
 न्नोगाहणगस्स अणंतपएसियस्स खंधस्स दब्ब-
 ट्ठयाए तुल्ले पएसट्ठयाए छट्ठाणवडिए ओगाहणो-
 ट्ठयाए तुल्ले ठिईए चउट्ठाणवडिए वएणाइउवरिल्ल
 चउफासेहि छट्ठाणवडिए उक्कोसोगाहणएवि एवं
 चेव, नवरं ठिईएवि तुल्ले, अजहन्नमणुक्कोसो-
 गाहणमाणं भंते ! अणंतपएसियाणं पुच्छा, गोयमा !
 अणंता पज्जवा पन्नत्ता, से केणट्ठेणं भंते ! एवं
 वुच्चइ ?, गोयमा ! अजहन्नमणुक्कोसोगाहणए अणंत-
 पएसिए खंधे अजहन्नमणुक्कोसोगाहणस्स अणंत-

जैनागमों में स्याद्वाद

पएसियस्स खंधस्स दब्बट्ठयाए तुल्ले पएसट्ठयाए
 छट्ठाणवडिए ओगाहणट्ठयाए चउट्ठाणवडिए ठिईए
 चउट्ठाणवडिए वण्णोइअट्ठफासेहिं छट्ठाणवडिए,
 जहन्नठिइयाणं भंते ! परमाणुपुग्गलाणां पुच्छा,
 गोयमा ! अणंता पज्जवा पन्नत्ता, से केणट्ठेणं
 भंते ! एव बुच्चइ ?, गोयमा ! जहन्नठिइए परमाणु-
 पोग्गले जहन्नठियस्स परमाणुपोग्गलस्स दब्ब-
 ट्ठयाए तुल्ले पएसट्ठयाए तुल्ले ओगाहणट्ठयाए
 तुल्ले ठिईए तुल्ले वण्णाइ दुफासेहि य छट्ठाणवडिए,
 एव उक्कोसठिइएवि, अजहन्नमणुवकोसठिइए वि
 एवं चेव मवरं ठिईए चउट्ठाणवडिए, जहन्नठिइयाणं
 दुपएसियाणं पुच्छा, गोयमा ! अणंता पज्जवा
 पन्नत्ता, से केणट्ठेणं भंते ! एवं बुच्चइ ?, गोयमा !
 जहन्नठिइए दुपएमिए जहन्नठियस्स दुपएसियस्स
 दब्बट्ठयाए तुल्ले पएसट्ठयाए तुल्ले ओगाहण-
 ट्ठयाए सिय हीणे सिय तुल्ले सिय अब्भहिए जइ
 हीणे पएसहीणे अह अब्भहिए पएसअब्भहिए ठिईए
 तुल्ले वण्णाइ चउफासेहि य छट्ठाणवडिए, एवं
 उक्कोसठिइएवि अजहन्नमणुवकोसठिइएवि एवं चेव

नवरं ठिईए चउट्टाणवडिए, एवं जाव दसपएसिए,
नवरं पएसपरिवुड्ढी कायव्वा, ओगाहणद्वयाए
तिसुवि गमएसु जाव दसपएसिए एवं पएसो परि-
वडिदज्जंति, जहन्नठिइयाणं भंते ! संखिज्जपएसियाणं
पुच्छा, गोयमा ! अणंता पज्जवा पन्नत्ता, से केण-
ट्ठेणं भंते ! एवं बुच्चइ ?, गोयमा ! जहन्नठिइए
संखिज्जपएसिए खंधे जहन्नठिइयस्स संखिज्जपए-
सियस्स खंधस्स दव्वट्ठयाए तुल्ले पएसट्ठयाए दुट्ठा-
णवडिए ओगाहणट्ठयाए दुट्ठाणवडिए ठिईए
तुल्ले वणणाइ चउफासेहि य छट्ठाणवडिए, एवं
उक्कोसठिइएवि, अजहन्नमणुक्कोसठिइएवि एवं चेव,
नवरं ठिईए चउट्टाणवडिए, जहन्नठिइयाणं असंखि-
ज्जपएसियाणं पुच्छा, गोयमा ! अणंता पज्जवा पन्नत्ता,
से केणट्ठेणं भंते ! एवं बुच्चइ ?, गोयमा ! जहन्न-
ठिइए असंखिज्जपएसिए जहन्नठिइयस्स असंखिज्जपए-
मियस्स दव्वट्ठयाए तुल्ले पएसट्ठयाए चउट्टाण-
वडिए ओगाहणद्वयाए चउट्टाणवडिए ठिईए तुल्ले
वणणाइ उवरित्ठचउफासेहि य छट्ठाणवडिए,
एवं उक्कोसठिइएवि, जहन्नमणुक्कोसठि-
इएवि, एवं चेव नवरं ठिईए चउट्टाणवडिए

जैनागमों में स्याद्वाद

जहन्नठिइयाणं अणंतपएसियाणं पुच्छा, गोयमा !
 अणंत पज्जवा पन्नत्ता, से केशट्ठेणं भंते ! एवं
 बुच्चइ ?, गोयमा ! जहन्नठिइए अणंतपएसिए जहन्न-
 ठिइयस्स अणंतपएसियस्स दब्बट्ठयाए तुल्ले पए-
 सट्ठयाए छट्ठाणवडिए ओगाहणट्ठयाए चउट्ठाण-
 वडिए ठिईए तुल्ले वएणाइ अट्ठफासे हि य छट्ठाण-
 वडिए, एवं उक्कोस विठइएवि, अजहन्नमणुक्कोस-
 ठिइएवि एवं चेव, नवरं ठिईए चउट्ठाणवडिए
 जहन्नगुणकालयाणं परमाणुपुग्गलाणं पुच्छा, गोयमा
 अणंत पज्जवा पन्नत्ता, से केशट्ठेणं भंते ! एवं
 बुच्चइ ?, गोयमा ! जहन्नगुणकालए परमाणुपुग्गले
 जहन्नगुणकालगस्स परमाणुपुग्गलस्स दब्बट्ठयाए
 तुल्ले पएसट्ठयाए तुल्ले आगाहणट्ठयाए तुल्ले
 ठिईए चउट्ठाणवडिए कालवन्नवजवेहिं तुल्ले अवसेमाहि
 वएणा नत्थि, मंधरसदुफामपज्जवेहिं य छट्ठाणवडिए,
 एव उक्कासगुणकालएवि, एवमजहन्नमणुक्कोस-
 गुणकालएवि, शवरं सट्ठाणोछट्ठाणवडिए, जहन्नगुण-
 कालयाणं भंते ! दुपएसियाणं पुच्छा, गोयमा !
 अणंता पज्जवा पन्नत्ता, से केशट्ठेणं भंते ! एवं

बुद्धिः ? गोयमा ! जहन्नगुणकालए दुपएसिए
जहन्नगुणकालयस्स दुपएमियस्स दब्बट्ठयाए तुल्ले
पएसइयाए तुल्ले ओगाहणट्ठयाए सिय हीणे सिय
तुल्ले सिय अब्भहिए जइ हीणे पएसहीणे अह अब्भ-
हिए पएसअब्भहिए ठिईए चउट्ठाणवडिए कालवन्न-
पज्जवेहिं तुल्ले अवसेसवण्णाइउवरिल्लचउफासेहि य
छट्ठाणवडिए, एव उक्कोसगुणकालएवि, अजहन्न-
मगुक्कोसगुणकालएवि, एवं चेव, नवरं सट्ठाणे
छट्ठाणवडिए, एवं जाव दसपएसिए नवरं पएसपरि-
बुड्ढी ओगाहणाए तद्देव, जहन्नगुणकालयाणं भते !
संखिज्जपएसियाणं पुच्छा, गोयमा ! अणंता पज्जवा
पन्नचा से केणट्ठेणं भंते ! एवं बुद्धिः, गोयमा ! जह-
न्नगुणकालए संखिज्जपएसिए जहन्नगुणकालयस्स
संखिज्जपएमियस्य दब्बट्ठयाए तुल्ले पएसट्ठयाए
दुट्ठाणवडिए ओगाहणट्ठयाए दुट्ठाणवडिए ठिईए
चउट्ठाणवडिए कालवन्नपज्जवेहिं तुल्ले अवसेसेहिं
वण्णाइ उवरिल्लचउफासेहि य छट्ठाणवडिए, एवं
उक्कोसगुणकालएवि एवं अजहन्नमगुक्कोसगुणकाल-
एवि, नवरं सट्ठाणे छट्ठाणवडिए, जहन्नगुणकालयाणं

जनागमो म स्याद्वाद

भंते ! असंखिज्जपएसियाणं पुच्छा, गोयमा ! अणंत
 पज्जवा पन्नत्ता, से केणट्ठेणं भंते ! एवं बुच्चइ ?,
 गोयमा ! जहन्नगुणकालए असंखिज्जपएसिए
 जहन्नगणकालगस्स असंखिज्जपएसियस्स दब्बट्ठयाए
 तुल्ले पएसट्ठयाए चउट्ठाणवडिए ठिईए चउट्ठाण -
 वडिए कालवन्नपज्जवेहि तुल्ले अवसेसेहि वण्णादि-
 उवरिल्लजचउप्पासेहि य छट्ठाणवडिए, आगाहणट्ठयाए
 चउट्ठाणवडिए, एवं उक्कोसगुणकालएवि, अजहन्न-
 मणुक्कोसगणकालएवि एवं चेव, नवरं सट्ठाणे
 छट्ठाणवडिए, जहन्नगुणकालयाणं भंते ! अणंतपए-
 मियाणं पुच्छा, गोयमा ! अणंता पज्जवा पन्नत्ता
 से केणट्ठेणं भंते ! एव बुच्चइ ? , गोयमा ! जहन्न-
 गुणकालए अणंतपएसिए जहन्नगणकालयस्स अणंत-
 पएसियस्स दब्बट्ठयाए तुल्ले पएसट्ठयाए छट्ठाण-
 वडिए आगाहणट्ठयाए चउट्ठाणवडिए ठिईए चउ-
 ट्ठाणवडिए, कालवन्नपज्जवेहि तुल्ले अवसेसेहि वन्नादि
 अट्ठप्पासेहि य छट्ठाणवडिए, एवं उक्कोसगुणकालएवि
 अजहन्नमणुक्कोसगणकालएवि, एवं चेव, नवरं
 सट्ठाणे छट्ठाणवडिए एवं नीललोहियहालिदसुविकल्ल-
 दुब्धिगंधदुब्धिगंधतित्तकडुकसायअंविलमहुररस पज्ज-

वेहि य वत्तच्चया भाणियव्वा, नवरं परमाणुपोग्गलस्स
 दुब्भिमगंधस्स दुब्भिमगंधो न भण्णइ दुब्भिमगंधस्स
 सुब्भिमगंधो न भण्णइ. तित्तस्स अवसेसे न भण्णचि
 एवं कडुयादीणवि, अवसेसां त चेव, जहन्नगुणक-
 कखडाणं अणंतपएसियाणं संधाणं पुच्छा, गोयमा !
 अणंता पज्जवा पन्नत्ता, से केष्हणं भंते ! एवं
 बुच्चइ ?, गायमा ! जहन्नगुणककखडे अणंतपएसिए
 जहन्नगुणककखडस्स अणंतपएसियस्स दव्वट्ठयाए
 तुल्ले पएसट्ठयाए छट्ठाणवडिए ओगाहणट्ठयाए
 चउट्ठारवडिए ठिईए चउट्ठाणवडिए वन्नगंधरसेहिं
 छट्ठाणवडिए ककखडफासपज्जवेहिं तुल्ले अवसेसेहिं
 मत्तफासपज्जवेहिं छट्ठाणवडिए, एवं उक्कोसगुणककख-
 डेवि, जहन्नमणुक्कोसगुणककखडेवि एवं चेव; नवरं
 सट्ठाणे छट्ठाणवडिए, एवं भट्टयगुरुपल्लहुएवि भाणि-
 यच्चे, जहन्नगु सीयाणं भंते ! परमाणुपोग्गलाणं
 पुच्छा, गोयमा ! अणंता पज्जवा पन्नत्ता, से केष-
 ट्ठेणं भंते ! एवं बुच्चइ ?, गोयमा ! जहन्नगुणसीय
 परमाणुपोग्गले जहन्नगुणसीतस्स परमाणुपुग्गलस्स
 दव्वट्ठयाए तुल्ले पएसट्ठयाए तुल्ले ओगाहणट्ठ-

जैनागमो म स्याद्वाद

याए तुल्ले ठिईए चउट्टाणवडिए वन्नगंधरसेहिं छट्ठाण-
वडिए सीयफासपज्जवेहिं य तुल्ले उसिणफामो न
भणत्ति निद्धलक्खफासपज्जवेहिं य छट्ठाणवडिए एव
चेव, नवरं सट्ठाणं छट्ठाणवडिए, जहन्नगुणसीताणं
दुपदेसियाणं पुच्छा, गोयमा ! अणंता पज्जवा
पन्नत्ता, से केषट्ठेणं भंते ! एवं बुच्चइ ? गोयमा !
जहन्नगुणसीते दुपएसिए जहन्नगुणसीतस्स दुपदे-
सियस्स दब्बट्ठयाए तुल्ले पएसट्ठयाएतुल्ले आगाहण-
ट्ठयाए सिय हीणे सिय तुल्ले सिय अब्भहिए जइ
हीणे पएसहीणे (अह) अब्भहिए पएसअब्भहिए
ठिईए चउट्टाणवडिए वन्नगंधरसपज्जवेहिं छट्ठाणवडिए
सीयफासपज्जवेहिं तुल्ले उसिणनिद्धलक्खफासपज्ज-
वेहिं छट्ठाणवडिए, एवं उक्कोसगुणसीतेवि, अजहन्न-
मणुक्कोसगुणसीतेवि एवं चेव, नवरं सट्ठाणं छट्ठाण-
वडिए, एवं जाव दसपएसिए, शवरं ओगाहणट्ठ-
याए पएसपरिवुड्ढी कायव्वा, जाव दसपएसियस्स
नवपएसा बुडिदज्जंति, जहन्नगुणसीयाणं संखेज्जपए-
सियाणं पुच्छा, गोयमा ! अणंता पज्जवा पन्नत्ता,
पे केषट्ठेणं भंते ! एवं बुच्चइ ? गोयमा ! जहन्न-
गुणसीते संखिज्जपएसिए जहन्नगुणसीतस्स संखि-

ज्जपएसियस्स दव्वट्ठयाए तुल्ले पएसट्ठयाए
 दुट्ठाणवडिए ओगाहणट्ठयाए दुट्ठाणवडिए ठिईए
 चउट्ठाणवडिए वणणादीहिं छट्ठाणवडिए सीयफास-
 पज्जवेहिं तुल्ले उसिणनिद्धलवस्सेहिं छट्ठाणवडिए.
 एवं उक्कोसगुणसीतेवि, अजहन्नमणुक्कोसगुणसीतेवि
 एवं चेव, नवरं सट्ठाणे छट्ठाणवडिए, जहन्नगुणसी-
 याणं असंखिज्जपएसियाण पुच्छा, गोयमा ! अणंता
 पज्जवा पन्नत्ता, से केणट्ठेणं भते ! एवं बुच्चइ ?,
 गोयमा ! जहन्नगुणसीते असंखिज्जपएसिए जहन्न-
 गुणसीयस्स असंखिज्जपएसियस्स दव्वट्ठयाए तुल्ले
 पएसियाए चउट्ठाणवडिए ओगाहणट्ठयाए चउट्ठाण-
 वडिए ठिईए चउट्ठाणवडिए वणणाइ पज्जवेहिं
 छट्ठाणवडिए सीयफासपज्जवेहिं तुल्ले उसिणनिद्ध-
 लवस्सफामपज्जवेहिं छट्ठाणवडिए, एवं उक्कोसगुण-
 सीतेवि, अजहन्नमणुक्कोसगुणसीतेवि एवं चेव, न-
 वरं सट्ठाणे छट्ठाणवडिए जहन्नगुणसीताणं अणंत-
 पएसियाणं पुच्छा, गोयमा ! अणंता ! पज्जवा
 यन्नत्ता, से केणट्ठेणं भते ! एवं बुच्चइ ?, गोयमा !
 जहन्नगुणसीते अणंतपएसिए जहन्नगुणसीतस्स अणंत-
 पएसियस्स दव्वट्ठयाए तुल्ले पएसट्ठयाए छट्ठाण-

वडिए ओगाहणट्ठयाए चउट्ठाणवडिए
 ठिईए चउट्ठाणवडिए वणणाइ पज्जवेहिं
 छट्ठाणवडिए सीयफासपज्जवेहिं तुल्ले अवसेसेहिं
 सत्ताफासपज्जवेहिं छट्ठाणवडिए, एवं उक्कोसगुण-
 सीतेवि अज्जहन्नमणुक्कोसगुणसीतेवि एवं चेव, नवरं
 मट्ठाणे छट्ठाणवडिए, एवं उसिणनिद्धलक्खे जहा सीते
 परमाणुपोग्गलस्स तद्देव पडिवक्खो सव्वेसिं न भणणइ
 चि भाणियव्वं ॥ सूत्र १२०)

—(साम्प्रत सामान्यसूत्रभारभ्यते) जहन्नपएसियाणं
 भंते । खंधाणं पुच्छा, गोयमा ! अणंता, से केणट्ठेणं
 भंते ! एवं वुच्चइ ?, गोयमा ! जहन्नपएसिए खंधे
 जहन्नपएसियस्स खंधस्स दव्वट्ठयाए तुल्ले पएसट्ठ-
 याए तुल्ले ओगाहणट्ठयाए सिय हीणे सिय तुल्ले
 सिय अब्भहिए जइ हीणे पएसहीणे अइ अब्भहिए
 पएसमब्भहिए ठिईए चउट्ठाणवडिए वन्नगंधरस-
 उवरिल्लचचउफासपज्जवेहिं छट्ठाणवडिए उक्कोस-
 पएसियाणं भंते ! खंधाणं पुच्छा, गोयमा ! अणंता०,
 से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चइ ?, गोयमा !
 उक्कोसपएसिए खंधे उक्कोसपएसियस्स खंधस्स

दक्वद्वयाए तुल्ले पएसद्वयाए तुल्ले ओगाहणद्वयाए च-
उट्ठाणवडिए ठिईए चउट्ठाणवडिए वणणाइ अट्ठफास-
पज्जवेहि य छट्ठाणवडिए, अजहन्नमणुकोसपएसियाणं
भंते ! खंधाणं केवइया पज्जवा पन्नत्ता, गोयमा !
अणंता०, से केणट्ठेणं० ? गोयमा ! अजहन्नमणु-
कोसपएसिए खंधे जहन्नमणुकोसपएसियस्स खंधस्स
दक्वद्वयाए, तुल्ले पएसद्वयाए छट्ठाणवडिए ओगा-
हणद्वयाए चउट्ठाणवडिए ठिईए चउट्ठाणवडिए
वणणाइ अट्ठफासपज्जवेहि य छट्ठाणवडिए ! जहन्नो-
गाहणमाणं भंते ! पोग्गलाणं पुच्छा, गोयमा !
अणंता०, से केणट्ठेणं० ? गोयमा ! जहन्नोगाह-
णाए पोग्गले जहन्नागाहणगस्स पोग्गलस्स दक्व-
द्वयाए तुल्ले पएसद्वयाए छट्ठाणवडिए ओगाहण-
द्वयाए तुल्ले ठिईए चउट्ठाणवडिए वणणाइ उव-
रिल्लफासेहि य छट्ठाणवडिए, उक्कोखोगाहणाएवि एवं
चेव, नवरं ठिईए तुल्ले, अजहन्नमणुक्कोसोगाहण-
माणं भंते ! पोग्गलाणं पुच्छा, गोयमा ! अणंता०,
से केणट्ठेणं० ? गोयमा ! अजहन्नमणुक्कोसोगाह-
णाय पोग्गले अजहन्नमणुक्कोसोगाहणगस्स पोग्ग-
लस्स दक्वद्वयाए तुल्ले पएसद्वयाए छट्ठाण-

जैनागमों में स्याद्वाद

वडिए ओगाहणट्ठयाए चउट्ठाणवडिए
 ठिईए चउट्ठाणवडिए वएणाइ अट्ठफास-
 पज्जवेहि य छट्ठाणवडिए, जहन्नठिइयाणं भते !
 पोग्गलाणं पुच्छा, गोयमा ! अणंता०, से केणट्ठेण
 गोयमा ! जहन्नठिइए पोग्गले जहन्नठिइयस्स पोग्ग-
 लस्स दब्बट्ठयाए तुल्ले पएसट्ठयाए छट्ठाणवडिए
 ओगाहणट्ठयाए चउट्ठाणवडिए ठिईए तुल्ले वएणाई
 अट्ठफासपज्जवेहि य छट्ठाणवडिए, एव उक्कोसठि-
 इएवि, अजहन्नमणुक्कोसठिइएवि एवं चेव, नवर
 ठिइएवि चउट्ठाणवडिए, जहन्नगुणकालयाणं भते !
 पोग्गलाणं केवइया पज्जवा पन्नत्ता ?, गोयमा !
 अणंता०, से केणट्ठेण ?, गोयमा ! जहन्नगुणकालए
 पोग्गले जहन्नगुणकालयस्स पोग्गलस्स दब्बट्ठयाए
 तुल्ले पएसट्ठयाए छट्ठाणवडिए ओगाहणट्ठयाए
 चउट्ठाणवडिए ठिईए चउट्ठाणवडिए कालवन्नपज्जवेहि
 तुल्ले अवसेसेहि वन्नगंधरसफासपज्जवेहि य छट्ठाण-
 वडिए, से तेणट्ठेण गोयमा ! एवं बुच्चइ-जहन्नगुण-
 कालयाणं पोग्गलाणं अणंता पज्जवा पन्नत्ता, एवं
 उक्कोसगुणकालएवि, अजहन्नमणुक्कोसगुणकालय-
 वि एवं चेव, नवरं सट्ठाणे छट्ठाणवडिए, एवं जहा

काजवन्नपज्जवाणं वत्तज्जयां भणिया तहा सेसाणवि
वण्णगंधरसफासाणं वसव्वया भाणियव्वा जाव अज-
हवमणुक्कोसलुक्खे सट्ठाणे छट्ठाणवडिए । सेत्तं रुवि-
अजीव पज्जवा, सेत्तं अजीवपज्जवा । (सूत्र १२१)

टीका—‘अजीवपज्जवाणं’इत्यादि, ‘रुविअजीवपज्जवा य
अरूवीअजीवपज्जवा य’इति रूपमिति उपलक्षणमेतत् गंधरसस्पर्शाच्च
विदन्ते येषां ते रूपिणः ते च ते अजीवाश्च रूप्यजीवाः तेषां
पर्यायाः रूप्यजीवपर्यायाः (पुद्गलपर्याया) इत्यर्थः, तद्विपरीता अरू-
रूप्यजीवपर्यायाः अमूर्त्तजीवपर्याया इति भावः, ‘धम्मस्तिक्काय’
इत्यादि, धर्मास्तिकाय इति परिपूर्णमवयवि द्रव्यं, धर्मास्तिकायस्य
देशः—तस्यैवाद्यादिरूपो विभा १ः, धर्मास्तिकायस्य प्रदेशाः—तस्यैव
निर्विभा १ः भागाः, एवं त्रिकमधर्मास्तिकाये आकाशास्तिकाये च
भावनाथं, एतावता चान्योऽन्यानुगमात्मकावयवावयविविभ्वरूपं
धर्मास्तिकायादिकं वस्त्विति प्रतिपादितं, दशमोऽङ्गासमयः, न. वत्र
पर्याया वत्तुमुपकान्तास्तत्कथं द्रव्यमात्रोपन्यासकृतः १, उच्यते,
पर्यायपर्यायिणोः कथंचिदभेदरूपापनार्थः, एवमुत्तरोऽपि ग्रन्थः,
आह च मूलटीकाकारः—‘अत्र सर्वत्र पर्यायपर्यायिणोः कथंचिद-
भेदरूपापनार्थमित्थं सूत्रोपन्यास’ इति, परमार्थतत्त्वेतदुद्गृह्यं—
धर्मास्तिकायत्वं धर्मास्तिकायदेशत्वं धर्मास्तिकायप्रदेशत्वं इत्यादि,

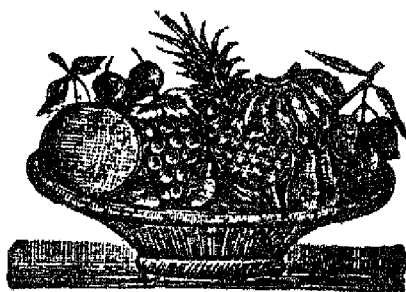
ते एणं भंते ! किं संखेज्जा' इत्यादि, ते स्कन्धादयः प्रत्येकं किं संख्येया असंख्येया अनन्ता भगवानाह—अनन्ताः, एतदेव भावयति—'केणह्वेणं भंते ! इत्यादि पाठसिद्धं । सम्प्रतिदण्डक-
क्रमेण परमाणुपुद्गलादीनां पर्यायाश्चिन्तनीयाः, दण्डकक्रमश्चाथ—
प्रथमतः सामान्येन परमाणवादयश्चिन्तनीयाः तदनन्तरं ते एव
एकप्रदेशाद्यवगाढाः तत एक समयादिस्थितिकाः तदनन्तरमेकमेक-
गुणकालकादयः ततो जघन्याद्यवगाहनाप्रकारेण तदनन्तरं जघन्य-
स्थित्यादिभेदेन ततो जघन्यगुणकालकादिक्रमेण तदनन्तरं जघन्य
प्रदेशादिना भेदेनेति, उक्तं च—'अणुमाइओहियाणं खेत्तादि-
पएससंगयाणं च जहन्नवगाहणाइणं चैव जहन्नादिदेसाणं ॥१॥'
अस्याक्षरगमनिका—प्रथमतोऽएवादीनां—परमाण्वादीनां चिन्ता
कर्तव्या, तदनन्तरं क्षेत्रादिप्रदेशसङ्गतानां, अत्रादिशब्दात्कालभाव-
परिग्रहः, ततोऽयमर्थः—प्रथमतः क्षेत्रप्रदेशैरेकादिभिः संगतानां
चिन्ता कर्तव्या, तदनन्तरं कालप्रदेशैः—एकादिसमयैस्ततो भाव-
प्रदेशैः—एकगुणकालकालादिभिरिति, तदनन्तरं जघन्यावगाहनादीना-
मिति, अत्रादिशब्देन मध्योत्कृष्टावगाहनाजघन्यमध्यमोत्कृष्ट स्थिति-
जघन्यमध्योत्कृष्टगुणकालकादिवर्णपरिग्रहः, ततो जघन्यादिप्रदेशान्त
—जघन्यप्रदेशानामुत्कृष्टप्रदेशानामजघन्योत्कृष्टप्रदेशानामिति
त्रयं प्रथमतः क्रमेण परमाण्वादीनां चिन्तां कुर्वन्नाह—'परमाणु
पोगालाणं भंते !' इत्यादि, स्थित्या चतुर्भ्यानयतितत्त्वं, परमाणो

उभयादाभ्योत्कर्षतोऽसंख्येयकालमवस्थानमावान्, कालादिवरणप-
रायैः षट्स्थानपतिरत्रैकस्यापि परमाणोः पर्यायानन्त्याविरंध्य त
ननु परमाणुप्रदेशो गीयते ततः कथं पर्यायानन्त्याऽविरोधः ?
पर्यायान्त्ये नियमतः सप्रदेशत्वप्रसक्तः, तदुक्तं, वस्तुतत्त्वापरि-
ज्ञानात्, परमाणुर्हि अप्रदेशो गीयते द्रव्यरूपतया सांशो न
भवतीति, न तु कालभावाभ्यामिति, 'अप्यसौदब्बद्वयाए' इति
वचतात्, तत्र कालभावाभ्यां सप्रदेशत्वेऽपि न कश्चिदोषः, तथा
परमाण्वदीनामसंख्यातप्रदेशस्कन्धपर्यन्तानां केषांचिदनन्तप्रादे-
शिकानामपि स्कन्धानां तथैकप्रदेशावगाढानां यावत् संख्यातप्रदे-
शावगाढानां शीतोष्णास्निग्धरूक्षरूपाश्चत्वार एव स्पर्शा इति तैरेव
परमाण्वदीनां षट्स्थानपतिता वक्तव्याः, न शेषैः, द्विप्रदेशस्कन्ध-
सूत्रे — 'ओगाहणद्वयाए सिय हीणे सिय तुल्ले सिय अन्निमहेए'
इत्यादि, यदा द्वावपि द्विप्रदेशिकौ स्कन्धौ द्विप्रदेशावगाढावेक-
प्रदेशावगाढौ वा भवतस्तदा तुल्यावगाहनौ, यदा त्वेकोद्विप्रदेशा-
वगाढौ वा भवतस्तदा तुल्यावगाहनौ, यदा त्वेको द्विप्रदेशावगाढो
ऽपरस्त्वेकप्रदेशावगाढस्तदा एकप्रदेशावगाढो द्विप्रदेशावगाढा-
पेक्षया प्रदेशहीनो द्विप्रदेशावगाढस्तु तदपेक्षया (प्रदेशा) ऽभ्याधिकः
शेषं प्राग्वत्, त्रिप्रदेशस्कन्ध सूत्रे "ओगाहणद्वयाए सिय हीणे
इत्यादि, यदा द्वावपि त्रिप्रदेशिकौ स्कन्धौ त्रिप्रदेशावगाढौ द्विप्रदे-
शावगाढौ एकप्रदेशावगाढौ वा तदा तुल्यौ यदा त्वेकमित्रप्रदे-

आवगाढो वा त्रिप्रदेशावगाढो वा अपरस्तु द्विप्रदेशावगाढ-
 एक प्रदेशावगाढो वा तदा द्विप्रदेशावगाढैकदेशावगाढौ यथा-
 क्रमं त्रिप्रदेशावगाढद्विप्रदेशावगाढापेक्षया एक प्रदेशादीनौ त्रिप्र-
 देशावगाढद्विप्रदेशावगाढौ तु तदपेक्षया एक प्रदेशाभ्यधिकौ यदा-
 त्वेकत्रिप्रदेशावगाढोऽपि एक देशावगाढस्तदा एकप्रदेशावगाढ-
 त्रिप्रदेशावगाढापेक्षया द्विप्रदेशादीनः त्रिप्रदेशावगाढस्तु तदपेक्षया
 द्विप्रदेशाभ्यधिकः, एतमेकैकप्रदेशपरिवृद्ध्या चतुःप्रदेशादिषु स्कन्धे-
 ष्ववगाहनामधिकृत्यहानिर्वृद्धिर्वा तावद् वक्तव्या यावद् दश प्रदेश-
 स्कन्धः तस्मिन् दशप्रदेशके स्कन्धे एव वक्तव्यः 'जइ हीणे पएस-
 हीणे वा दुपएसहीणे वा जाव नवपएसहीणे वा अह अब्भहिए
 पएसमब्भहिए वा दुपएसमब्भहिए वा जाव नवपएसमब्भहिए वा'
 इति भावना पूर्वोक्तानुसारेण स्वयं कर्तव्या, संख्यातप्रादेशिक-
 स्कन्धसूत्रे 'ओगाहणट्टयाए णट्टाणवडिए' इति संख्येयभागेन संख्येय-
 गुणेन चेति, असंख्यातप्रदेशकस्कन्धे 'ओगाहणट्टयाए चउट्टाण-
 वडिए' इति असंख्यातभागेन संख्यातभागेन संख्यातगुणेनासंख्यात
 गुणेनेति, अनन्तप्रादेशि तस्कन्धेऽवगाहनार्थतया चतुःस्थानपतिता
 अनन्तप्रदेशावगाहनाया असंभवतोऽनन्तभागानन्तगुणाभ्यां वृद्धि-
 हान्यसम्भवात्, 'एपएसोगाढाणं पोणत्ताणं मंते?', इत्यादि,
 अत्र 'दव्वट्टयाए तुल्ले पएसट्टयाए छट्टाणवडिए' इति, इदमपि विव-
 क्षितैकप्रदेशावगाढं परमाश्वादिकं द्रव्यं इदमप्यपरैकप्रदेशावगाढ

द्विप्रदेशादिवं द्रव्यमिति द्रव्यार्थतया तुल्यता प्रदेशार्थतया पद-
स्थानपतिता. अनन्तप्रदेशकस्यापि स्कन्धस्यैकमिन्नाकाशप्रदेशो-
ऽवगाहनासम्भवात्, शेषं, सुगमं, एवं स्थितिभावाश्रयाण्यपि
सूत्राण्युपयुज्य भावनीयानि । 'अहन्नोगाहराणां भेदे । दुप-
न्याणं' इत्यादि. जघन्यप्रदेशकस्य स्कन्धस्थावगाहना एक देशा-
त्मिका उत्कृष्टा द्विप्रदेशात्मिका अत्रापान्तरालं नास्तीति मध्यमा
न लभ्यते तत्र उक्तं — 'अजहन्नमणुकोसोगाहराणां नस्ति' इति,
त्रिप्रदेशकस्य स्कन्धस्य जघन्यवगाहना एकप्रदेशस्था मध्यमा
द्विप्रदेशस्था उत्कृष्टा त्रिप्रदेशात्मिका चतुःप्रदेशस्थ जघन्या एक-
प्रदेशस्था उत्कृष्टा चतुःप्रदेशात्मिका मध्यमाद्विधा द्विप्रदेशा-
त्मिका त्रिप्रदेशात्मिका च, एवं च सति मध्यमावगाहनश्चतुः प्रदेश-
को मध्यमावगाहनचतुःप्रदेशाकापेक्षया यदिहीनहिं प्रदेशतो हीनो
भवति अगम्यधिकस्ततः प्रदेशतोऽभ्यधिकः, एवं पंचप्रदेशादिषु
स्कन्धेषु मध्यमावगाहनामधिकृत्य प्रदेशपरिवृद्ध्या वृद्धिर्हानिश्च
तावत् वक्तव्या वावदशप्रदेशे ते स्कन्धे सप्तप्रदेशपरिवृद्धिः, सा चैवं
वक्तव्या — 'अजहन्नमणुकोसोगाहराणां दशपणसिण्णं अजहन्नमणु-
कोसोगाहराण्यस्य दशपणसिण्यस्त स्कन्धस्य ओगाहराण्यस्य सिण्य
द्वयो सिण्य तुल्ये सिण्य अब्भहिण् जइ हीणे पणसहीणे दुपणसहीणे
जाव सत्तपणसहीणे अह अब्भहिण् पणसअब्भहिण् दुपणसअब्भ-
हिण् जाव सत्तपणसअब्भहिण्' इति शेषं सूत्रं स्वयमुपयुज्य परिभाष-

नायम् सुगमत्वात् नवरमनन्तप्रदेशोत्कृष्टावगाहनाचिन्ताया
 ठिईएवि तुल्ले'इति उत्कृष्टावगाहनः किलानन्तप्रदेशकः स्कन्धः स
 उच्यते यः समस्तलोकव्यापी स चाचित्तमहास्कन्धः केवलिसमुद्-
 वातकर्मस्कन्धो वा तयोश्चोभयोरपि दण्डकपाटमन्थान्तरपूरणलक्ष-
 चतुःसमयप्रमाणेति तुल्यकालता, शेषं सूत्रमापदपरिसमाप्ते-
 प्रागुक्तभावनाऽनुसारेण स्वयमुपयुज्य परिभावनीयं सुगमत्वान्,
 नवरं जवन्यप्रदेशकाः स्कन्धाः द्विप्रदेशका उत्कृष्टप्रदेशकाः सर्वो-
 त्कृष्टानन्तप्रदेशाः ॥ इति श्रीमलयगिरिविरचितायां प्रज्ञापना-
 टीकायां विशेषारव्यं पदं समाप्तम् ॥



अथ परिशिष्टो भागः ॥

मूलम्-सिद्धिः स्याद् वादात् ॥ १।१।१॥

स्यादित्यवयवमेनेकान्तद्योतकं, ततः स्याद्वादोऽनेकान्तवादः
नित्यानित्याद्येकधर्मशबलैकवस्त्वश्रुयगम इति यावेत् ततः सिद्धि-
निष्पत्तिर्ज्ञानिर्वा प्राकृतानां शब्दानां वेदितव्या, एकस्थैवहि ह्रस्व-
दीर्घादिविधयोऽनेककारकसंनिपातः सामानाधिकरण्य विशेषण-
विशेष्यभावादयश्च, स्याद्वादमन्तरेणनोपपद्यन्ते, सर्वपाषदत्वाच्च,
शब्दानुशासनस्य सकलदशतसमूहात्मकस्याद्वादसमाश्रयणमति-
रमणीयम् । यदबोचामस्तुतिषु—अन्योऽन्यपक्षप्रतिपक्षभावाद्,
यथा वरेमत्सरिणः श्रवादाः । नयानशेषानविशेषमिच्छन् न पक्ष-
पाती समयस्तथाते ॥ स्तुतिकारोऽप्याह—‘नयास्तवस्यात्पदजाब्जना
इमे रसोपविद्धा इवलोहधातवः । भवंत्यभिप्रेतफलायतस्ततो भवंत-
सार्याः प्रणताहिलैषणः ॥ १ ॥ इति, अथवा वादात् विविक्कशब्द-
प्रयोगात् सिद्धिः सम्यग्ज्ञानतद्द्वारेण च निःश्रेयसं स्याद् भवेदिति
शब्दानुशासनमिदमारभ्यत इत्यभिध्येय प्रयोजनपरतयापीदं
न्याख्येयम् ॥ २ ॥

न्यासः—सिद्धिः स्याद्वादात् ॥ दशधा सूत्राणि—लंघा १

परिभाषा २ अधिकार, ३ विधि, ४ प्रतिषेध ५ नियम ६ विकल्प ७ समुच्चय ८ अतिदेश ९ अनुवाद १० रूपाणि तत्र औदन्ताः स्वराः इति १ “प्रत्ययः प्रकृत्यादेः” इति २ । “घुटि”, इति ३ । नाम्यन्तस्था कवर्गात्—इति ४ “न स्तं मत्वर्थे”, इति ५ “नाम सिद्धय व्यञ्जने” इति ६ । “सौनवेत्तौ” इति ७ । “शमोऽन्ता” इति ८, “इदितो वा”, इति ९ । “तयोः समूहवच्च बहुषु” १० इत्यादीनि सूत्राणि प्रत्येकं ज्ञातव्यानि, एतेषां मध्ये इदमधिकारसूत्रमाशास्त्र परिसमाप्तेः ॥ स्यादित्यव्ययमिति विभक्त्यन्ताभत्वेन स्वरादित्वाद्वाऽनेकान्तं द्योतयति वाचकत्वेनेत्यनेकान्तद्योतकम् । अनेकान्तवाद इति, अमति गच्छति धर्मिणमिति “दम्यमि” इति तेऽन्तो धर्मः । न एकोऽनेकः । अनेकोऽन्तोऽस्यास्तवनेकान्तः तस्य वदनं याथातथ्येन प्रतिपादनम् तच्चाभ्युपगतस्यैव भवति इति, नित्यानित्यादीति । आदिशब्दात् सदसदात्मकत्वसामान्यविशेषात्मकत्वाभिलाष्यान्भिलाष्यत्वग्रहः “नेध्रुवे” इति त्याचि, नित्यमुभयाद्यन्तापरिच्छिन्नसत्ताकं वस्तु । तद्विपरीतमनित्यम् । आदीयते-गृह्यते ऽर्थोऽस्मादिति’ उपसर्गाद् दः किः इति कौ आदिः । धरन्ति-धर्मिणो धर्मिरूपतामिति धर्माः वस्तुपर्यायाः ते च सहस्रभुवः सामान्यादयः क्रमभुवश्च नव पुराणादयः पर्यायाः । धर्ममन्तरेण धर्मिणः स्वरूपनाशात् ॥ शाम्भति-विरुद्धैर्धर्मैर्युगपत् परिणतिमुपयाति “शमेव च”

इत्यलेशवत्तम् । एत्यभेदगच्छति “भीष्म शलि” इति के एकम् ।
वसंतिसामान्यमिशेषरूपा धर्माऽस्मिन्निति “वसेण्णद्वा” इतितुनि-
वस्तु । नित्यानित्यादिभिरनेकधर्मैः शत्रुत्वं यदेकं वस्तु तस्याभ्युपगमः
प्रमाणाविरुद्धोऽङ्गीकारः ॥ तत एव शब्दानां सिद्धिर्भवति नान्यथेत्यत
आह—एकस्य मेति । तथाहि—यस्यैव वर्णस्य ह्रस्वत्वं विधीयते तस्यैव
दीर्घत्वादिः । तस्य च सर्वात्मना नित्यत्वे पूर्वधर्मानिवृत्तिपूर्वकस्य
ह्रस्वादिविदेरसंभवः, एवमनित्यत्वेऽपि जन्मानन्तरमेव विनाशात्कस्य
ह्रस्वादिविधिरिति वर्णरूपसामान्यात्मनानित्यो ह्रस्वादिवर्मात्मनात्व-
नित्य इति ॥ तत्रा द्रव्याणां स्वपराश्रयसमवेतक्रियानिर्वर्तकं सामर्थ्य
कारकम् । तच्च कर्त्राद्यनेक प्रकारमेकस्याप्युपलभ्यते । यथा पीयमानं
मधु मदयति, वृक्षमारुह्य ततः फलान्यवचिनोति, विषयेभ्योविभ्यद-
नात्मज्ञस्तेभ्य एवात्मानं प्रयच्छंस्तेरेव श्रवमाप्नोति इत्यादि ।
तच्च कथमेकस्य सर्वथा नित्यत्वे एकरूपां वृत्तिमवलम्बमानस्यावस्था-
न्तराभिव्यक्तरूपोपाजम्भाभावाद् घटते इति साध्यसाधनरूपकारक-
व्यवहारवत्तोपः ॥ अनित्यत्वेऽपि न घटते । तथाहि—स्वातंत्र्य
कर्तृत्वम् । तच्च इदं फलमिम्यंक्रिया करणमेतदेककमोऽव्ययोऽय-
मनुपङ्गजफलमिदं वशेयंमम ॥ अयं सुहृद अयं द्विषन् प्रकृतदेश-
काजाविभाविति प्रतिषितकथंन् प्रयतते बुधोनेतरः ॥ १ ॥ इत्येक
महत्तमं दृष्टं सामर्थ्यकारकमयोक्तृत्वज्ञानम् । तदपि नानित्यस्य
ज्ञानसात्रावस्थायित्वे नोपजननानन्तरमेव विनश्यत्युच्यते किं पुनः
कारकसंनिपात इति नित्यानित्यात्मकः स्याद्वादोऽङ्गीकर्तव्यः तथा

तमन्तरेण सामानाधिकरण्यं विशेषणविशेष्यभावोऽपि नोपपद्यते
 तथाहि—भिन्नप्रवृत्तिनिमित्तायोः शब्दयो रेकत्रार्थे वृत्तिः सामाना-
 धिकरण्यम् । तयोश्चात्यन्त भेदे घटपटयोरिव नैकप्रवृत्तिः नाप्य-
 त्यन्ताभेदे, भेदनिबन्धनत्वात्तस्य । नहि भवतिनीलं नीलमिति ।
 किञ्च नीलशब्दादेव तदर्थप्रतिपत्तौ उत्पलशब्दानर्थक्यप्रसङ्गः ।
 तथैकंवस्तु सदेवेतिनियम्यमाने विशेषणविशेष्यभावाभावः । विशेष-
 णाद्विशेष्यं कथंचिदर्थान्तरभूतमवगन्तव्यम्, अस्तिखं चेद्विशो-
 षणम् । तस्यविशेष्यंवस्तु तदेव वास्यादन्यदेववानतावत्तदेव । नहि-
 तदेव तस्य विशेषणं, भवितुमर्हति असति च विशेष्येविशेषणत्वमपि
 न स्यात् । विशेष्यं-विशि.यते येन तद्विशेषणमिति व्युत्पत्तेः । अथा-
 न्यत्तर्हि अन्यत्वाविशेषात् सर्वं सर्वस्यविशेषणं स्यात् । समवायात्
 प्रतिनियतो विशेषणविशेष्य भाव इति चेत्, न सोऽपि अविष्वग्
 भावतत्तत्तत् एवैष्टव्यः । रूपान्तरपरिकल्पनायामनवस्थाप्रसङ्गः । अतो
 नासावत्यन्तं भेदेऽभेदेवासंभवतीतिभेदाभेदतत्तत्तत्तत् स्याद्ववादो-
 ऽकामेनापि, अभ्युपगन्तव्यइति, आदिग्रहणात् स्थान्यादेशनिमि-
 त्तनिमित्ति प्रकृतिविकारभावादिग्रहः । किञ्च शब्दानुशासनामदः,
 शब्दश्चप्रतिविप्रतिपद्यते, नित्य इत्येके, अनित्य इत्यपरे नित्यानित्य
 इतिचान्ये । तत्र नित्यत्वानित्यत्वयोरन्यतरपक्षपरिमहे सर्वोपादेय-
 त्वविहः स्यादित्याह—सर्वपार्षदत्वाच्चेति । स्वेन रूपेण व्यवस्थितं
 वस्तु तत्त्वं पृणाति-पातयतीति “मः सद” इति सदिः पार्षद तत्र साध

“पर्वदोषयणौ” इति णे पाषदं साधारणमित्यर्थः, अथवा, पाषदं परिचारकं उच्यते, स च पर्वत्साधारण इत्यर्थः । पाषदत्वेन साधारणत्वं लक्ष्यते तेन सर्वेषां पाषदं सर्वसाधारणमित्यर्थः । दृश्यते तत्त्वमेकदेशेनैभिरिति दर्शनानिनयाः । समस्तदर्शनानां यः समुदायः तत्साधारणस्याद्वादस्याभ्युपगमोऽतितरां निर्दोष इत्यर्थः । अतिरमणीयमिति शिगन्ताद् ‘प्रवचनयीदयः’ इत्यनायः । एतदेव-
स्वोक्तेन द्रव्यतित्यन्योन्येत्यादि । साध्यधर्मवैशिष्ट्येन पच्यते व्यक्ती-
क्रियते हेत्वादिभिरिति । “मात्रा वदे” — इति त्रैपक्षः साध्यधर्म-
विशिष्टो धर्मोऽनित्य इत्यादि, प्रतिकूलः पक्षः प्रतिपक्षः ।
अन्योऽन्यपक्षप्रतिपक्षास्तेषां भावः, एकस्मिन् धर्मिणि परस्परविरुद्ध-
धर्मोपन्यास इत्यर्थः । ततः यथेति दृष्टान्तोपन्यासे ॥ परे भवच्छा-
सनादन्येसातिशयोक्तसरोऽतद्वनतात्येवामिति शायते मत्वर्थीये
— मत्सरिणः । प्रकर्षेणोच्यते प्रतिपाद्यते स्वाभ्युपगतोऽर्थो यैरिति
“व्यञ्जनाद् धव्” इति धञि प्रवादाः प्रवचनानि ॥ यथा परस्पर-
विरोधात् परेप्रवादामत्सरिणो न तथा त्वत्समय इति ॥ अत्रवि-
शेषणद्वारेण हेतुमाह पक्षगतीति — यतोरागनिमित्तवस्तुस्वीकाररूपं
पक्षं पातयति नाशयतीत्येवंशीतो रागस्य जीवनाशं नष्टत्वात् ।
अत्रैव हेतुमाह — नयानशेषानविशेषमिच्छन्निति । नयान् नैगमा-
दीन् समस्तान् अविशेषमभेदं यत्तन्भवत्येवमङ्गीकुर्वन् । अयं भावः
नयानां समत्वेन दर्शनाद्वागमयस्य पक्षस्य पातितत्वात् समयस्य

मत्सराभावः ॥ परेषांतु विपर्ययात् तत्सद्भावः, इति सम्यगेति-
गच्छति शब्दोऽर्थम् नेति “पुनान्नि” इति घे समयः संकेतः । यद्-
वासम्यगयान्त गच्छन्ति जीवादयः पदार्था स्वस्मिन्नरूपे प्रतिष्ठाप्राप्नु-
वत्यस्मन्निति समय आगमः । मत्सरित्वस्य विधेयत्वाद्नेनेवनञ-
सबन्धात्, पक्षपातिशब्देन वसव धात् प्रक्रमभेदाभावः । परोक्ते-
नापि दृढयति—नया इत्यादि । नीयन्ते प्राप्यन्ते जीवादयोऽर्था
एकदेशविशिष्टा अभिरिति नयाः निस्वधारणा अभिप्रायविशेषाः ।
साधुधारणस्य दुर्नयत्वात् समस्तार्थप्राप्तेस्तु प्रमाणाधीनत्वात्—ते च
नैगमादयः सप्त तवयात्पदेन चिन्हिता अभिप्रेतं फलन्ति लिङ्गाद्यच्-
अभिप्रेतं फलं येभ्य इति बहुव्रीहिर्वा ॥ प्रणता इति । प्रणन्तुमार-
ब्धवन्तः । हितैषिण इति । विशेषणद्वारेण हेतुः हितैषित्वादित्यर्थः ।
आप्तदूरान्तिकयोः, सम्यग्ज्ञानाद्यत्मकमोक्षमार्गस्यारात्, समीपं-
याताः प्राप्ताः, दूरं वा पापक्रियाभ्यो याता इत्यार्याः । ननु अस्म-
युक्तियुक्तः स्याद्वाद तदधीनत्वाच्छब्दसिद्धेः, तथापि अनभिहे-
ताभिध्येय प्रयोजनत्वात् कथमिदं प्रेक्षावत् प्रवृत्तिविषयमित्या-
शंक्याह—अथवेति, विविक्तानामसाधुत्वविमुक्तानां शब्दानां प्रयुक्तेः
सम्यग्ज्ञानरूपासिद्धिः साधुशब्दाश्चात्राभिधेयाः । यसर्थमधिकृत्य
प्रवर्ततेतत् प्रयोजनमिति सम्यग् ज्ञानमनन्तरं प्रयोजनं तद्द्वारेण तु
निःश्रेयसंपरं परमिति । यतः “द्वे ब्रह्मणी वेदितव्ये शब्द ब्रह्म परं
च यत् । शब्दब्रह्मणि निष्णातः परंब्रह्माधिगच्छति ॥१॥ व्याकरण

पद सिद्धिः पदसिद्धेरर्थनिर्णयो भवति, अर्थात् तत्त्वज्ञानं तत्त्वज्ञानात् परं श्रेय इति ॥१॥ सम्बन्धस्त्वभिधेयप्रयोजनयोः साध्यसाधनभावः, शब्दानुशासनाभिधेययोस्तु अभिधानाभिधेयरूपः । सच तयोरेवानुभूतत्वात् पृथग् नोपदर्शित इति ॥२॥ (श्रीहेमशब्दानुशासनम् । (बृहदवृत्तिः) लघुन्यासः) ॥

सूत्र-सिद्धिरनेकान्तात् ॥ १ ॥

प्रकृत्यादिविभागेन व्यवहाररूपा श्रोत्रग्राह्यतया परमार्थतोपेता प्रकृत्यादिविभागेन च शब्दानां सिद्धिं अनेकान्ताद्भवतात्पर्याधिकार आशास्त्रपरिसमाप्ते वेदितव्यः । अस्तित्वनास्तिव नित्यत्वसामान्यमानाधिकारणविशेषणविशेष्यादिकोऽनेकः अन्तः स्वभावः यस्मिन्भावे सोऽयमनेकान्तः अनेकात्मा इत्यर्थः । तस्यावग्रहेहाध्यायधारणात्मकं प्रत्यक्षं तद्व्यवहारान्यथानुपपत्तेरितीदमनुमानं-च साधकम् । अथास्तित्वनास्तित्वदीनां परस्परविरुद्धानां कथमैक्याधिकारण्यमसङ्कीर्णरूपता च यथा भवतामेकत्र हेतौ अन्वयव्यतिरेकयोः जनकयोरपि वा जन्यमानरूपरसापेक्षयोः सहकारित्वासहकारित्वयोः अथ हेतौ सपक्षविपक्षापेक्षया रूपद्वय एवे च सभागासभागकार्यपेक्षया अत्रापि तर्हि स्वरूपपररूपापेक्षया स्तित्वनास्तित्वे । द्रव्यपक्षानेक्षया च नित्यत्वनित्यत्वे । द्रव्यपक्षेययोश्चान्वयव्यतिरेकाभ्यां सिद्धिरित्यास्तां तावदेतत् । अनेकान्तादितीदमेव ज्ञापकं हेतौ

कापि भवति । तेनानित्यः शब्दः कृतकत्वादित्यादि सिद्धम् । उत्तरसूत्रैकदेशाद्याचापोधिकारः (?) इति वक्ष्यति । सस्थानक्रियं स्वमिति एतच्च वस्तुना साधर्म्यवैधर्म्यात्मकेऽनेकान्ते सत्युपपद्यते । तथाहि - अकाराकारयोः ह्रस्वदीर्घकाजभेदेन वैधर्म्येऽपि तुल्यस्थानकारणत्वेन साधर्म्यमस्तीति स्वसंज्ञाव्यवहारः सिद्धयति । यदि हि साधर्म्यमवस्थात् तदास्तित्वेनेवान्यैरपि धर्मैः साधर्म्यं सर्वमेकं प्रसज्येत । यदि च वैधर्म्यमेव तदा कस्यचिदस्तित्वमपरास्य नास्तित्वमन्यस्य चान्यन् । अधुमृदिति अन्वयव्यतिरेकाभ्यामथ वृद्धवृद्धरूपं मृत्संज्ञकमनेकान्तात् सिद्धयति । तथाहि विभक्त्यन्तस्य च शब्दस्य प्रयोऽपार्थं ज्ञानमुत्पद्यत इति संज्ञाता अनेन्तो दृष्टाः । तदवयवानामप्यन्वयव्यतिरेकः । अभ्यामर्थवत्ता जायते । वृत्तावित्यत्र विसर्जनीयाभावादेकत्वार्थो निवृत्तः । श्रौकारभावाद् द्वित्वं जातम् । अकारान्तवृत्तशब्दान्वयाज्जातिरन्वयिनी प्रतीयते । अन्वयव्यतिरेकौ च भावावेकान्तवादेनस्तः । तथाह्यपाये ध्रुवमपादानमित्यादि षट्कारकी नित्यक्षणिकपक्षयोर्नोपपद्यते व्यपायघोष्याद्यभावात् । उक्तञ्च—इदं फलमियं क्रिया करणमेतदेष क्रमो, व्ययोऽयमनुषङ्गजं फलमिदं दशेयं मम । अयं रूढदयं द्विषत् प्रयतदेशकालाविभाविति प्रतिवितर्कयन् प्रयतते बुधो नेतरः ॥ (जिनेन्द्रव्याकरणम्—महावृत्तिः)

आदीपमाव्योमसमस्वभावं स्याद्वादमुद्रानतिभेदिवस्तु ।
तन्नित्यमेवैकमनित्यमन्यदितित्वदाज्ञा द्विषतांप्रजापः ॥५॥

— स्याद्वादमञ्जरीकारिका ॥ ५ ॥

टीका—आदीपं—दीपादारम्भ्य आव्योम—व्योममर्यादी-

कृत्य, सर्ववस्तुपदार्थस्वरूपं समस्वभावं-समः-तुल्यः, स्वभावः—
स्वरूपं यस्य तत्तथा । किञ्च वस्तुनः स्वरूपंद्रव्यपर्यायात्मकत्वमिति-
ब्रूमः । तथा च वाचकमुख्यः—“उत्पादव्ययधौव्ययुक्तं सत्” इति,
समस्वभावत्वं कुतः ? इति विशेषणद्वारेण हेतुमाह—स्याद्वाद-
मुद्रानतिभेदि—स्यादित्यव्ययमनेकान्तद्योतकम् । ततः स्याद्वाद—
अनेकान्तवादः, नित्यानित्याद्यनेकधर्मशवलैकवस्त्वभ्युपगम इति-
यावत् । तस्यमुद्रा—मर्यादा—तां,—नातिभिनत्ति-नातिक्रामतीति
स्याद्वादमुद्रानतिभेदि । यथा हि न्यायैकनिष्ठेराजनिराज्यश्रियं
शासति सति सर्वाः प्रजास्तन्मुद्रां नातिवर्तितुमीशते, तदतिक्रमे-
तासां सर्वार्थहानिभावात् एवं विजयिनि निष्कण्टके स्याद्वादमहा-
नरेन्द्रे, तदीयमुद्रांसर्वेऽपि पदार्था नातिक्रामन्ति तदुल्लंघने तेषां
स्वरूपव्यवस्थाहानिप्रसक्तेः ॥ सर्ववस्तूनां समस्वभावत्वकथनञ्च
पराभीष्टस्वैकं वस्तु व्योमादि नित्यमेव अन्यच्च प्रदीपादि अनित्य-
मेव इति वादस्य प्रतिक्षेप बीजम् सर्वे हि भावा—द्रव्यार्थिकनया-
पेक्षया नित्याः, पर्यायार्थिकनयादेशात् पुनरनित्याः । तत्रैकान्ता-

नित्यतया परैरङ्गीकृतस्य प्रदीपस्य तावन्नित्यानित्यत्व व्यवस्थापने
 दिङ्मात्रमुच्यते, तथाहि—प्रदीपपर्यायापन्नास्तैजसाः परमाणव
 स्वरसतस्तैलक्ष्यात् वाताभिघाताद् वा ज्योतिषपर्यायं परित्यज्य
 तमोरूपं पर्यायान्तरमाश्रयन्तोऽपि नैकान्तेनानित्याः पुद्गलद्रव्यरूप-
 तथावस्थितत्वात् तेषाम् । नह्येतावतैवानित्यत्वं यावतापूर्वपर्यायस्य-
 विनाशः, उत्तरपर्यायस्यचोत्पादः । न खलु मृद्द्रव्यस्थासककोश
 कुशूलशिवकघटाद्यवस्थान्तराण्यापद्यमानमप्येकान्ततो विनष्टम्,
 तेषु मृद्द्रव्यानुगमस्याबालगोपालप्रतीतत्वात् । न च तमसः पौ-
 ण्ड्रलिकत्वमसिद्धं चालुषत्वान्यथानुपपत्तेः प्रदापालोकवत् ॥ अथ
 यश्चालुषंतत्सर्वं स्वप्रतिभासे आलोकमपेक्षते । नचैवं तमः । तत्
 कथं चालुषं । नैवम् । उलूकादीनामालोकमन्तरेणापि तत् प्रति-
 भासात् । यैस्त्वस्मदादिभिरन्यश्चालुषं घटादिकमालोकं विनानाप-
 लभ्यते तैरपि तिमिरमालोकयिष्यते, विचित्रत्वाद् भावानाम् ।
 कथमन्यथा पीतश्वेतादयोऽपि स्वर्णमुक्ताफलाद्या आलोकापेक्ष-
 दशनाः प्रदीपचन्द्रादयस्तु प्रकाशान्तरनिरपेक्षाः । इतिसिद्धं तमश्चा-
 लुषम् ॥ रूपवत्त्वाच्चस्पर्शवत्त्वमपि प्रतीयते, शीतस्पर्शप्रत्ययजनक-
 त्वात् । यानि त्वनिबिडावयवत्वमप्रतिधातित्वमनुद्भूतस्पर्शविशेष-
 त्वमप्रतीयमानखण्डावयविद्रव्यप्रविभागत्वमित्यादीनि तमसः पौद्ग-
 लिकत्वनिषेधाय परैः साधनान्युपन्यस्तानि तानिप्रदीप प्रभादृष्टान्ते
 नैव प्रतिषेध्यानि, तुल्ययोगक्षेमत्वात् । नच वान्यं तैजसाः परमा

एवः कथंतमस्त्वेन परिणमन्त इति । पुद्गलानां तत्तत्सामग्रीसह-
 दृतानां विसदृशकार्योत्पादकत्वस्यापिदर्शनात् । दृष्टो ह्यार्द्रेन्धन-
 संयोगवशाद् भास्वरूपस्यापि बन्धेरभास्वरूपधूमकार्योत्पादः ।
 इति सिद्धो नित्यानित्यः प्रदीपः यदापि निर्वाणादवाग् देदीप्यमानो-
 दीपस्तदापि नव नव पर्यायोत्पादविनाशभाक्त्वात् प्रदीपान्वयाच्च
 नित्यानित्य एव ॥ एवं व्योमापि उत्पादव्ययध्रौव्यात्मकत्वाद् नित्या-
 नित्यमेव । तथाहि—अवगाहकानां जीव पुद्गलानामवगाहदानोप-
 ग्रहपवतलक्षणम् । “अवकाशइसाकाशम् ॥ इतिवचनात् । यदा-
 चावगाहका जीवपुद्गलाः प्रयोगतो विम्रसातो वा एकस्मान्नम
 देशान् प्रदेशान्तरमुपसर्पन्ति तदा तस्य व्योम्नस्तैरवगाहकैः
 सममेकस्मिन् प्रदेशे विभागः उत्तरस्मिंश्च प्रदेशे संयोगः । संयोग-
 विभागौच परस्परं विरुद्धौ धर्मौ । तद्विभेदे चावयवधर्मिणोभेदः ।
 तथाचाहुः—“अयमेवविभेदो भेदहेतुर्वा, यद् विरुद्धधर्माध्यासः
 कारणभेदश्चेति ॥ ततश्च तदाकाशं पूर्वसंयोगविनाशजक्षणपरि-
 णामपन्था विजष्टम् , उत्तरसंयोगोत्पादोऽख्य परिणामानुभवाच्चो-
 त्पन्नम् । उभयत्राकाशव्यस्यानगतत्वाच्चोत्पादव्यययोरेकाधि-
 करणत्वम् ॥ तथाच यद् “अप्रच्युतानुत्पन्नस्थिरैकरूपंनित्यम्” इति
 नित्यलक्षणमाचक्षते । तदपास्तम् । एवंविधस्य कस्यचिद् वस्तुनो
 ऽभावान् । “तदभावाव्ययं नित्यम्” । इति तु सत्यं नित्यजक्षणम्
 उत्पादविनाशयोः सद्भावेऽपि तदभावाद् अन्वयिरूपाद् यन्नव्यं

तन्नित्यामति तदर्थस्य घटमानत्वात् यदि हि अयम्युतादिजलार्ण-
 नित्यमिष्यते तदोत्पादव्यययोर्निर्धारत्वप्रसङ्गः । नच तयोर्योगे-
 नित्यत्यहानिः । “इदं पर्यायवियुतं पर्यायाः द्रव्यवर्जिताः क-
 कदाकेन किंरूपाः दृशमानेनकेनवा ॥ इतिवचनात् । लौकिकानाम-
 पिघटाकाशं पटाकाशमिति व्यवहारप्रसिद्धाकाशस्य नित्यानित्य-
 त्वम् । घटाकाशमपि हि यदा घटापरामं, पेटनाक्रान्तं तदा पटा-
 काशमिति व्यवहारः । नचायमौपचारिकत्वादप्रमाणमेव । उपचार-
 स्यापि किञ्चित् साधर्मद्वारेण मुख्यार्थं परिशिष्टान् । नमताहि यन्
 किल सर्वव्यापकत्वं मुख्यं परिमाणं तन् तदाधेयघटपटादिसम्बन्धि-
 नियतपरिमाणवशात् कल्पितभेदं सन्प्रतीतिरतदेश व्यापितया
 व्यवहियमाणं घटाकाशपटाकाशदि तत्तदव्यपदेशनिश्चयं भवति ।
 तत्तद्वटादिसम्बन्धेच व्यापकत्वेनावस्थितस्य व्योम्नोऽवस्थान्त-
 रापत्तिः, तत्तद्व्यावस्थामेदेऽवस्थावताऽपिभेदः । तामानताऽविश्वग-
 भावात् इतिसिद्धं नित्यानित्यत्वं व्योम्नः ॥ स्वार्थंभुवा—अपि हि
 नित्यानित्यमेव वस्तुप्रपञ्चाः । तथाचाहुस्तेत्रिविधः लब्धयधर्मिणः
 परिणामो धर्मलक्षणवस्थारूपः । सुवर्णधर्मि । तस्य धर्मपरिणामो
 वर्धमानरुचकादिः । धर्मस्य तु लक्षणपरिणामाऽज्ञाततत्वादिः यदा
 स्वत्वयं द्वेभकारो वर्धमानः संकृत्वाकवकमारचयति तदा वर्धमा-
 नको वर्तमानतालक्षणं हित्वा अतीततालक्षणमापद्यते । रुचकरतु
 अनागततालक्षणं हित्वा वर्तमानतालक्षणमापद्यते । वर्धमानता-

पन्न एव तु रुचकोनत्रुराणभावमापद्यमानोऽवस्थापरिणामवान्
भवति । सो ऽयं त्रिविधः परिणामो धर्मिणः । धर्मलक्षणावस्थाश्च
धर्मिणोभिन्नाश्चाभिन्नाश्च । तथा च ते धर्म्यभेदात् तन्नित्यत्वेन
नित्याः । भेदाच्चोत्पत्तिविनाशविषयत्वम् । इत्युभयमुपपन्नमिति ॥
अद्योत्तरार्धं विव्रियते । एवञ्चोत्पादव्ययध्रौव्यात्मकत्वे सर्वभावानां-
सिद्धेऽपि तद्वस्तुएकमाकाशात्मादिकं नित्यमेव, अन्यच्च प्रदीपघटा-
दिकमनित्यमेव इत्येवकारोऽत्रापिसम्बध्यते । इत्थं हि दुर्नयवादा-
पत्तिः । अनन्तधर्मात्मके वस्तुनि स्वाभिप्रेतनित्यत्वादि धर्मसमर्थन-
प्रवणाः शेष धर्म—तिरस्कारेण प्रवर्तमाना दुर्नया इति तल्लक्षणात् ।
इत्यनेनोल्लेखेन त्वदाज्ञा द्विषतां—भवत्प्रणीतं शासनविरोधिनां
प्रलापाः प्रलपितानि, असम्बद्धवाक्यानीति यावत् ॥ अत्र च प्रथम-
मादीपमिति परप्रसिद्धयानित्यपक्षोल्लेखेऽपि यदुत्तरत्र यथा-
संख्यपरिहारेण पूर्वतरं नित्यमेवैकमित्युक्तं तदेवं ज्ञापयति । यद-
नित्यं तदपिनित्यमेव कथञ्चित् । यच्चनित्यं तदप्यनित्यमेव कथ-
ञ्चित् । प्रक्रान्तवादिभिरप्येकस्यामेव पृथिव्यां नित्यानित्यत्वाऽभ्यु-
पगमात् । तथा च प्रशस्तकारः—‘सा तु द्विविधा नित्या चानित्या
च । परमाणु लक्षणानित्या, कायलक्षणात्वनित्या’ इति । न चात्र
परमाणुकार्यं द्रव्यलक्षणविषयद्वयभेदाद् नैकाधिकरणं नित्या-
नित्यत्वमिति वाच्यं । पृथिवीत्वस्योभयत्राप्यव्यभिचारात् । एव-
मबादिष्वपि इति । आकाशेऽपि संयोगविभागांगीकारात् तैरनित्यतर-

क्त्या प्रतिपन्नमेव । तथा च एवाह—शब्दकारणत्ववचनात्
 न्योगविभागौ” इति नित्यानित्यपक्षयोः संवलितत्वम् । एतच्चलेश-
 तोभावितमेवेति ॥ प्रलापप्रायत्वं च परवचनानामित्थं समर्थनीयम् ।
 वस्तुनस्तावदर्थक्रियाकारित्वंलक्षणम् । तच्चैकान्तनित्यानित्यपक्षयोः
 न घटते । अप्रच्युत्तानुत्पन्नस्थिरैकरूपोहि नित्यः, सच क्रमेणार्थ-
 क्रियां कुर्वीत अक्रमेणवा ! अन्योऽन्यव्यवच्छेदरूपाणां प्रकारान्त-
 रासंभवात् । तत्र नतावत् क्रमेण, स हि कालान्तर भाविनी क्रियाः
 प्रथमक्रियाकाल एव प्रसज्य कुर्यान्ः समर्थस्य कालक्षेपायोगात्
 कालक्षेपिणो वा अमामर्थ्यप्राप्ते समर्थोऽपि तत्रात् सहकारिसम-
 वधाने तं तमर्थं करोतीति चेत्, न तर्हि तस्य मामर्थ्यम्, अपर-
 सहकारिसापेक्षवृत्तिन्वान् । “सापेक्षमसमर्थम्” इति न्यायान् ॥
 न तेन सहकारिणोऽपेक्ष्यन्ते अपितु कार्यमेव सहकारिण्वसत्त्वमभवत्
 तानपेक्षते इति चेत् तत् किं स भावोऽसमर्थो समर्थो वा, समर्थश्चेत्,
 किं सहकारिमुख प्रेक्षणदीनानि तान्युपेक्षते न पुनर्भटिति वटयति ।
 ननु समर्थमपि बीजमिजाजलानिलादि सहकारिसहितमेवाङ्कुरं करोति
 नान्यथा । तत् किं तस्य सहकारिभिः किञ्चिदुपक्रियेत नवा यदि
 नोपक्रियेत तदा सहकारिमन्निधानात् प्रागिव, किं तदाप्यशक्रिया-
 यामुदास्ते उपक्रियेत इति चेत् सः तर्हितैरूपकारोऽभिन्नोऽभिन्नोवा
 क्रियते इति वाच्यम् । अभेदे स एव क्रियते । इति लाभमिच्छतो
 मूलक्षतिरायानाकृतकत्वेन तन्मानित्यत्वापत्तेः । भेदे तु कथं तस्यो

पकारः, किंन सह्यविन्ध्याद्वेरेपि, तत् सम्बन्धात् तस्याग्रमितिचेत्,
 उपकार्योपकारयोः कः सम्बन्धः ? न तावत् संयोगः द्रव्ययोरेव
 तस्यभावात्, अत्र तु उपकार्यं द्रव्यम्, उपकारश्चक्रियेति न
 संयोगः, नापि समवायः, तस्यैकत्वात् व्यापकत्वाच्च प्रत्यासत्तिविप्र-
 कर्षाभावेन सर्वत्रतुल्यत्वात् न नियतैः सम्बन्धिभिः संबन्धोयुक्तः ।
 नियत संबन्धिसंबन्धे चांगीक्रियमाणेतत् कृत उपकारोऽस्य सम-
 वायस्याभ्युपगन्तव्यः । तथाच सति उपकारस्यभेदाभेदकल्पनातद्
 अवस्थैव । उपकारस्यसमवायस्य समवायादभेदे समवाय एव कृतः
 स्यात् भेदेपुनरपि समवायस्य न नियतसंबन्धिसंबन्धत्वम् । तत्रै-
 कान्त नित्योभावः क्रमेणार्थक्रियां कुरुते । नाप्यक्रमेण । नह्येको-
 भावः सकलकालकलाकलापभाविनीयुगपत् सर्वाः क्रियाः करोतीति
 प्रातीतिकम् । कुरुतां वा, तथापि द्वितीयक्षणे किं कुर्यात् करणे
 वा, क्रमपक्षभावीदोषः । अकरणे स्वार्थक्रियाकारित्वोभावात्
 अवस्तुत्व प्रसंगः । इत्येकान्तनित्यात् क्रमाक्रमाभ्यां व्याप्तार्थ-
 क्रिया व्यापकानुपलब्धिवलात्, व्यापकनिवृत्तौ निवर्तमानास्वव्या-
 प्यमर्थक्रियाकारित्वंनिवर्तयति । अर्थक्रियाकारित्वञ्चनिवर्तमानं-
 स्वव्याप्यसत्त्वं निवर्तयति, इतिनैकान्तनित्यपक्षोयुक्ततमः ।
 एकान्तनित्यपक्षोऽपि न कक्षीकरणार्हः । अनित्योहिप्रतिक्षणवि-
 नाशी सच न क्रमेणार्थक्रियासमर्थः देशकृतस्य कालकृतस्य
 च क्रमस्यैवाभावात्, क्रमोहि पौर्वापर्यम्, तच्च क्षणिक-

स्यासंभवि । अवस्थितस्यैव हि नानादेशकालव्याप्तिः
देशक्रमः कालक्रमश्चाभिधीयते नचैकान्तविनाशिनिसास्ति यदाहुः—
योयत्रैवसतत्रैव यो यदैव तदैव सः । न देशकालयोर्व्याप्ति भावाना-
मेहविद्यते ॥ नच संतानापेक्षया पूर्वोत्तरक्षणानांक्रमः संभवति, संता-
नस्यावस्तुत्वात्, वस्तुत्वेऽपि तस्य यदि क्षणिकत्वं, न तर्हि क्षणोभ्यः
कश्चिद् विशेषः अथाक्षणिकत्वंतर्हि समाप्तः क्षणमर्गवाद् ॥ नाप्य-
क्रमेणार्थक्रियाक्षणिके संभवति । सह्येको बीजपूरदिक्षणो युगप-
दनेकान् रसादिक्षणान् जनयन् एकेनस्वभावेन जनयेत्, नानास्वभा-
वैर्वा ? यद्येकेनतदातेषांरसादिक्षणानामेकत्वं स्यात् एकस्वभावज-
न्यत्वात् । अथ नानास्वभावैर्जनयति किञ्चिद् रूपादिकमुपादान-
भावेन । किञ्चिद्रसादिकं सहकारित्वेन, इति चेत् तर्हि ते स्वभावा
स्तस्यात्मभूता अनात्मभूता वा ! अनात्मभूताश्चेत् स्वभावत्वहानिः,
यद्यात्मभूताः तर्हितस्यानेकत्वम् । अनेकस्वभावत्वात्, स्वभावा-
नां वा एकत्वं प्रसज्येत तदव्यतिरिक्तत्वात् तेषां तस्यचैकत्वात् ॥
अथय एव एकत्रोपादानभावः स एवान्यत्र सहकारिभाव इति न
स्वभावभेद इष्यते । तर्हि नित्यस्यैकरूपस्यापिक्रमेण नानाकार्यका-
रिणः स्वभावभेदः कार्यसांकर्यञ्च कथमिष्यते क्षणिकवादान्ना ।
अथ नित्यमेकरूपत्वादक्रमः, अक्रमाच्च क्रमिणां नानाकार्याणां
कथमुत्पात्तः इति चेत्, अहो स्वपक्षपाती देवानांप्रियः यः खलु
स्वयमेकस्माद् निरंशाद् रूपादिक्षणलक्षणात् कारणाद् युगपद-

नेकक्रियाण्यङ्गीकुर्वाणोऽपि परपक्षेनित्येऽपि वस्तुनि क्रमेण-
नानाकार्यकरणेऽपि विरोधमुद्भावयति । तस्मात्क्षणिकमपि भाव-
स्याक्रमेणार्थक्रियादुर्घटा । इत्यनित्यैकान्तादपि क्रमाक्रमयोर्व्या-
पकयोर्निवृत्तैव व्याप्यार्थक्रियापिव्यावर्तते तद्व्यावृत्तौ च
सत्त्वमपिव्यापकानुपलब्धिबलेनैव निवर्तते । इत्येकान्तानित्य-
वादोऽपि न रमणीयः ॥ स्याद्वादेतु पूर्वोत्तराकारपरिहारस्वी-
कारस्थितिलक्षणपरिणामेन भावानामर्थक्रियोपपत्तिरविरुद्धा ।
नचैकत्र वस्तुनि परस्पर विरुद्धधर्माध्यासायोगादसन् स्याद्वाद इति-
वानर्थं नित्यानित्यपक्षविलक्षणस्य पक्षान्तरस्याङ्गीक्रियमाणत्वात् ।
तथैव च सर्वैरनुभवान्, तथाचपठन्ति— भागे सिंहो नरो भागे
योऽर्थो भागद्वयात्मकः । तमभागविभागेनरसिंहं प्रचक्षते ॥ इति ॥
वैशेषिकैरपि चित्ररूपसद्वैकस्यावयविनोऽभ्युपगमात् एकस्यैवपटादे-
वलाचलरक्तारक्तावृतानावृत्तादि विरुद्धधर्माणामुपलब्धेः ।
सौगतैरपि एकत्रचित्रपटीज्ञाने नीलानीलयोर्विरोधानङ्गीकारात्,
अत्रच यद्यप्यधिष्ठितवादिनः शरीरादिकं कालान्तरावस्थितत्वात्
क्षणिकं न मन्दते तन्मते पूर्वापरतावच्छिन्नकालाः सत्ताः
भवानित्यतालक्षणात् । तथापि बुद्धिसुखादिकं तेऽपि क्षणिकतैव
प्रतिपन्नाः इति तदधिकारेऽपि क्षणिकवादचर्चानुपपन्ना । यदापि च
कालान्तरावस्थायि वस्तु तदापिनित्यानित्यमेव । क्षणोऽपि न खलु
सोऽस्ति यत्र वस्तु उत्पादव्ययध्रौव्यात्मकं नार्तीति अव्यर्थः ॥५॥